अंक-19

ISSN 0975-5217

UGC-Care list (Group-I)

वर्ष 2021

भैरवी

संगीत शोध पत्रिका

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

Scanned with OKEN Scanner

ISSN 0975-5217
UGC-Care list (Group-I)

भैरवी

(संगीत शोध-पत्रिका)

(वर्ष 2021 अंक 19)

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित कला संकाय
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (संगीत शोध-पत्रिका)

ISSN 0975-5217

UGC-Care list (Group-I)

वर्ष-2021, अंक : 19

प्रधान सम्पादक

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

मूल्य

इस अंक का मूल्य : 400/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 800/- रुपये / त्रैवार्षिक 2400/- रुपये

पंचवार्षिक 4000/- रुपये / आजीवन : 15000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 850/- रुपये / त्रैवार्षिक 2500/- रुपये

पंचवार्षिक 4500/- रुपये / आजीवन : 16000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

''भैरवी'' विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित एवं UGC-Care list (Group-1) में शामिल है। साथ ही यह Peer Reviewed Refereed Visual and Performing Arts Research Journal है।

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद-201 102

Patron

Prof. Chaman Lal Verma
Ex. Dean and Head
University Department of Music
Himachal Pradesh University, Shimla

Prof. Pt. Ritwik Sanyal
Top Grade Dhrupad Artist
Ex. Dean, Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. Pt. Sahitya Kumar Nahar
Vice-chancellor
Raja Maan Singh Tomar Sangeet Vishwavidyalaya
Gwalior, Madhya Pradesh

Editorial Board

Chief Editor

Prof. Pushpam Narain
Ex. Dean, Faculty of Fine Arts
Head, University Department of Music and Dramatics
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

Editorial/ Advisory Board

1. Prof. K. Shashi Kumar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Banaras Hindu University, Varanasi
2. Prof. Snehashish Janpriya Das
   Head. Department of Music
   Women's College Jag Chowk, Amarawati, Maharashtra
3. Dr. Ashwani Kumar Singh
   Associate Prof, Department of Music
   Faculty of Performing Arts. M.S. University, Baroda, Gujrat
4. Dr. Shobhit Kumar Nahar
   Asst. Prof. Instrumental Music
   Women's College
   Banaras Hindu University, Varanasi

Peer Review Committee

1. Prof. Om Prakash Bharti
   Head, Department of Performing Arts
   Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,
   Wardha, Maharashtra
2. Dr. Rajesh Kelkar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Maharaja Siyaji Rao University, Baroda, Gujrat
3. Prof. Umesh Kumar
   Head, Department of Hindi
   B.M.A Callege Baheri, Bihar
4. Dr. Amar Kant Kuwar
   Head, Department of Hindi
   M.L.S.M College, Darbhanga, Darbhanga, Bihar
5. Dr. Santosh Dattatrayrao Parchure
   Head, Department of Music
   S.P.H. Women's College, Malegaon, Nashik, Maharashtra
6. Dr. Shashank S. Maktedar
   Associate Prof. and Officiating Principal
   Goa College of Music, Panji, Goa
7. Dr. Ved Prakash
   University Department of Music and Dramatics
   Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar
8. Dr. Ramshankar
   Faculty of Music and Performing Arts
   B.H.U., Varanasi
9. Dr. Pallavi Shailesh Meshram
   Associate Prof. In Applied Arts
   Bharti Vidyapeeth' Collge of Fine Arts, Pune, Maharashtra

जपात्कोटि गुणं ध्यानं ध्यानात् कोटि गुणं लय।
लयात्कोटि गुणं गानं गानात् परतरं नाहि।।

(जप से करोड़ों गुणा प्रभावी ध्यान है, ध्यान से करोड़ गुणा लयात्मकता प्रभावशाली है। लय प्रधान जप से करोड़ गुणा प्रभाव गान का है और साधना के लिए गान अर्थात् संगीत से उत्तम उपाय अन्य कोई नहीं।)

'Music is the bridge of peace and love'

‘संगीत दो देशों के बीच शान्ति और प्रेम का सेतु है।’

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

संपादक की कलम से ...

शिक्षा जीवन निर्माण की कला है। सच पूछा जाए तो इसका वास्तविक स्वरूप भी यही है। यद्यपि इस स्वरूप में भौतिकी, रसायन, चिकित्सा, संगीतकला, वास्तुकला आदि की विविध जानकारियाँ भी समाविष्ट हैं पर इनका उद्देश्य जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं का समाधान कर जीवन का निर्माण करना ही है। जीवन निर्माण की यह विद्या सीखने वाला शिष्य है और सिखाने वाला गुरु। आदर्श गुरु और अनुशासित छात्र का युग्म ही इसको सार्थक समुन्नत बनाता है।

वेदों को पढ़ाने वाले को मनुस्मृति में 'आचार्य', 'उपाध्याय' तथा 'गुरु' का नाम निम्नलिखित श्लोकों के माध्यम से इस प्रकार दिया है—

उपनीय तु सः शिष्यं वेदमध्यायेद् द्विजः।
संकल्प सरहस्यं च तमाचार्य प्रचक्षते॥

अर्थात्—जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन करने के पश्चात यज्ञ विद्या तथा उपनिषद् सहित वेद पढ़ाये वह आचार्य कहलाते हैं।

एकदेशंतु वेदस्य वेदांगन्यापि वा पुनः।
योध्यापयति वत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते॥

अर्थात् जो वेद के एकांश अथवा वेदांशों को जीविका प्राप्त करने हेतु पढ़ाता है, वह उपाध्याय कहलाता है।

निषेधदीनी कर्मणि या करोति यथाविधि।
संभावयति चान्येन स विप्रो गुच्येते॥

अर्थात् जो निषेधादि कर्म पूर्णविधि से करता है अथवा संस्कारों को पूर्ण विधि से सीखता है एवं अन्य प्रकार से भी ख्याति प्राप्त करता है, वह ब्राह्मण गुरु कहलाता है।

प्राचीन काल की भारतीय परंपरा में तपस्वी, आदर्शनिष्ठ, अपरिग्रही, ऋषि स्तर के अध्यापक होते थे। वैसे ही अनुशासित, सेवाभावी, अध्यव्यवसाय वाले, स्वाध्यायशील छात्र भी होते थे। शिक्षा भी ऐसे युग्म को पाकर अपने को कृतार्थ समझती थी और अपने सारे रहस्य ऐसे सुपात्रों के समक्ष खोलने में अपने को कृतकृत्य मानती थी।

तपस्वी शिक्षकों में जहाँ शिक्षण प्रक्रिया का चरम विकास हुआ था, वहीं छात्रों में अध्ययन प्रक्रिया अपने चरम पर थी। विभिन्न विद्याओं, कलाओं में निष्णात् छात्र भी अकड़बाजी व गर्व की मदिरा में चूर होकर विनय के अमृत से सराबोर होते थे। 'विद्या ददाति विनयम्' का सूत्र सर्वत्र परिलक्षित होता था।

ऐसी परंपरा का निर्वाह भारद्वाज जैसे ऋषि किया करते थे। उनका गुरुकुल प्रयाग के पावन क्षेत्र में था, जहाँ दस हजार स्वाध्यायशील छात्र विद्या अध्ययन करते थे। उस समय शिक्षा का विकास विद्या स्तर

तक हुआ था। ज्ञातव्य है कि शिक्षा का ही सुपरिष्कृत रूप विद्या है। विद्या का लक्ष्य सत्य का अध्ययन करना है, पर आज तो स्थिति दूसरी है। विनोबा भावे ने इस संबंध में उल्लेख करते हुए कहा था, ''ऋषिकाल में विद्यालय विद्या के आलय अर्थात् आगर होते थे, पर आज के परिवेश में विद्यालय ऐसे हैं, जहाँ विद्यालय का लय अर्थात् लोप होता है।''

शिक्षक की भूमिका इतनी ही नहीं है कि मात्र विषय की जानकारी दे दें, वरन् उनका दायित्व यह भी बनता है कि वह विषय को भली प्रकार हृदयंगम भी करा दें। उनके दायित्व में अभिभावक का दायित्व भी सम्मिलित है। यद्यपि अब आवासीय विद्यालय कम है, जबकि पहले इसी स्तर के विद्यालय होते थे। बाल्मीकि रामायण में एक प्रसंग आता है, जब महर्षि विश्वामित्र अपनी शिक्षण प्रक्रिया के समय राम और लक्ष्मण को प्रोत्साहन देते हुए प्रातःकाल जगाते हुए कहते थे ''उत्तिष्ठ नरशार्दूल पूर्वा संध्या प्रवर्तते''। अर्थात् हे पुरुषों में श्रेष्ठ उठो, पहली संध्या का समय हुआ है। विश्वामित्र जैसे आचारवान और तपस्वी गुरु और राम लक्ष्मण जैसे विनयी अध्यवसाय संपन्न सुपात्रों को पाकर बला और अतिबला विद्याएँ सार्थक हुई। सेवानिवृत्त वरिष्ठ आईसीएस अधिकारी श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने अपनी पुस्तक 'दस सुमन' में अपने वार्डन तथा विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति प्रो. अमरनाथ झा के व्यक्तित्व तथा आदर्श निष्ठा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वे छात्रों के साथ पुत्रवत व्यवहार करते थे। आनेवाले छात्रों से पहली मुलाकात वे अपने घर बुलाकर ही करते थे। इस पहली मुलाकात के बाद छात्र इतने भवाविभूत हो जाते थे कि किसी समस्या, कोई उलझन को उनके सामने रखने में संकोच नहीं करते थे। प्रत्येक छात्र उनमें अपने अनुशासन प्रिय, आदर्शनिष्ठ, कर्तव्य परायण शिक्षक की जागृत मूर्ति देखने के साथ ही भावनाशील पिता की प्रतिच्छाया भी देखता था। सचमुच ऐसे शिक्षक सच्चे छात्र का निर्माण करने में सक्षम है।

बातें तो करने को बहुत है आपसे। अतः पुनः अगले अंक के सम्पादकीय में बात होगी। सभी सुधी पाठकों को बताना चाहती हूँ कि कोविड-19 की त्रासदी ने हम सबों के कई अपनों को लील लिया है। हम सभी भयभीत हैं पर मानने वाले कहाँ है? इसी कड़ी में विलम्ब से भैरवी के 18वें अंक का प्रकाशन वर्ष 2021 में करना पड़ा। अंक-19, प्रकाशन वर्ष-2021 आपके हाथ में है। आपके स्तरीय आलेख ने 'भैरवी' संगीत शोध पत्रिका को UGC CARE LIST (Group-I) में समाहित किया है। इस हेतु आप सबों एवं UGC, New Delhi को साधुवाद देती हूँ। टंकण त्रुटि हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। आपसे पुनः अगले अंक में अपनी अभिव्यक्ति निवेदित करूँगी। धन्यवाद

—प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण
संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

अनुक्रम

	संपादक की कलम से ...		7
1.	भारतीय संगीत के शिक्षण तथा प्रचार में संचार माध्यम की भूमिका : नई शिक्षा नीति के सन्दर्भ में	मेघना कुमार	13
2.	संगीत क्षेत्र में मुगल बादशाहों का योगदान	डॉ. सारिका विवेक श्रावणे	17
3.	गाथाधारित लोकनाट्यों में निहित् सामाजिक प्रतिरोधात्मक संघर्ष	डॉ. पुष्पम नारायण, हरि शंकर गुप्ता	23
4.	भैरव थाट एवं भैरव रागांग के अंतर्गत औड़व एवं षाड़व जाति के रागों का संक्षिप्त विश्लेषण	मकरन्द सुरेश पोतदार, प्रो. राजेश केलकर	26
5.	पुष्टिमार्गी मंदिरों की राग सेवा : हवेली संगीत	डॉ. रामशंकर, डॉ. पंकज शर्मा	30
6.	उत्तर हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत तथा अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली	प्रो. डॉ. अंकुश गिरी	35
7.	नाट्यशास्त्र एवं संगीत-रत्नाकर में वर्णित आंगिक अभिनय का तुलनात्मक अध्ययन	विदुषी जायसवाल, डॉ रंजना उपाध्याय	39
8.	हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्री वाद्यों का महत्व	दिव्या दत्त	44
9.	साहित्य एवं संगीत : एक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध	डॉ. देश गौरव सिंह	49
10.	विद्वान वाग्गेयकार पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग'	दीपक सिंह	52
11.	भिखारी ठाकुर के नाटकों में प्रयुक्त पारम्परिक लोक धुनों एवं छन्दों के प्रकार	मो. इब्रान, डॉ. सुरेन्द्र कुमार	56
12.	मध्य भारत की जनजाति के संस्कार गीत : एक अध्ययन	अरुण कुमार	64
13.	बनारस घराने की गायकी के संवाहक पंडित राजन मिश्र	गरुण मिश्र	69
14.	भारतीय संगीत में ध्यान : एक अध्ययन	डॉ. रामशंकर, आदित्य नाथ तिवारी	74
15.	पं. भातखंडे लिखित हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका-अनुसंधान एक अध्ययन	प्रो. विशाल विजय कोरडे	78
16.	ऊँकार - सृष्टि का सर्वोच्च संगीत	श्रीमती स्मिता उदय कोल्हटकर	81
17.	रागों का समय सिद्धान्त : एक विश्लेषण	डॉ. कुमार अम्बरीश चंचल	85

18. विभिन्न घराने के संगीतज्ञों द्वारा नवनिर्मित राग एवं ख्याल रचनायें — श्यामा कुमारी — 90

19. काफ़ी गायन शैली में कतिपय विशिष्ट कलाकारों का योगदान — ओशीन भाटिया नी दिव्या भाटिया — 96

20. काशी में वॉयलिन वादन की परम्परा — प्रशान्त मिश्र — 103

21. Jyotirindranath: In The World Of Dramatic Songs — Prof. Neera Chowdhury, Sanjay Bhattacharya — 106

22. Impact of Music and Yoga in Stress — Dr. Praveen Saini — 112

23. Understanding Gharana Tradition with Special Reference to the Musical Style of the Maihar Gharana — Dr. Supriya Shah — 117

24. Theatre as the Voice of 'Voiceless' (An In-Depth Analysis of Mahesh Dattani's Seven Steps Around the Fire) — Dr. Neelam Bhardwaj — 123

25. The message of World Peace through Rabindra Sangeet – A Study — Dr. Rajesh G. Kelkar, Bhumika Trivedi — 130

26. Dasa Ragamalika Varnam–Composition of Sri Gali Penchala Narasimha Rao – A Study — Mrs.E. Sreelakshmi, Dr. J. Sankar Ganesh — 135

27. Sharfuddin Ahmad Yahya Maneri— His Life and Spiritual Journey — Shakir Tasnim — 142

28. Creativity in Khayal — Vilina Patra, Dr. Pournima Dhumale — 147

भारतीय संगीत के शिक्षण तथा प्रचार में संचार माध्यम की भूमिका : नई शिक्षा नीति के सन्दर्भ में

मेघना कुमार

शोध सार

आधुनिक संचार माध्यमों से शिक्षण की व्यवस्था कोरोना के संक्रमण काल में सामने आई। जिस समय पूरा देश इस विभीषिका के कारण एकदम रुक सा गया था। शिक्षा जगत ने ऐसे आपदा में अवसर को खोजा। शिक्षा जगत में संगीत के शिक्षण तथा मंचीय प्रस्तुति ने नये आयाम को स्पर्श किए। इस काल में संगीत के शिक्षण तथा प्रस्तुतियों का ढंग ही बदल गया। संगीत की संगोष्ठियाँ, प्रस्तुतियां तथा शिक्षण सब कुछ संचार माध्यम से शुरू हो गये। पूरा देश संक्रमण काल में जब लॉकडाउन में फंसा था उस समय संगीत के बड़े कलाकार, विद्वान, रसिक तथा विद्यार्थी संचार माध्यम से आभासी रूप से एक जगह एकत्रित हो कर अपने विचारों का आदान-प्रदान कर रहे थे। यह क्रम अभी भी चल रहा है। भारत सरकार ने इस ओर सकारात्मक पहल करते हुए शिक्षण को ऑनलाइन भी संचालित किया जाए इस के लिए भी प्रयास कर रही है। अनेक एप्लीकेशन तथा अन्य माध्यम आभासीय शिक्षण तथा प्रस्तुतियों इत्यादि में दोनों पक्षों के मध्य सेतु का कार्य कर रहे हैं।

ऑनलाइन पद्धति द्वारा संगीत के क्षेत्र में आये हुए बदलाव तथा इस क्षेत्र में सम्भावना तथा चुनौतियों पर नई शिक्षा नीति के सन्दर्भ में विचार करना शोध पत्र लेखन का मुख्य उद्देश्य है। इस शोध कार्य को करने के लिए पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं तथा इंटरनेट के माध्यम से तथ्य सामग्री प्राप्त करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध पत्र किसी भी पत्रिका अथवा पुस्तक में पूर्ण अथवा आंशिक रूप से न तो प्रकाशित किया गया है और न ही कहीं प्रकाशन के लिए भेजा गया है।

सूचक शब्द : *चहुमुखी, गतिविधियाँ, संचरण, सूचना, प्रभावित, स्वाभाविक*

विषय प्रवेश

मानव सभ्यता में संचार की व्यवस्था प्राचीन काल से ही चली आ रही है। समय के साथ-साथ अनेक संचार माध्यम मानव ने उपयोग में लाया। अपने अंतर्मन की भावनाओं को भी संचार माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। पुरातन समय में संचार के तीव्र माध्यम न होने की स्थिति में कबूतर से अपने संदेशों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाया जाता था। धुआं कर के भी सन्देश के आदान-प्रदान की प्रथा रही है। राजनैतिक, सामाजिक, व्यवहारिक तथा शासकीय व्यवस्थाओं में संचार की अहम भूमिका है। अनेक बार ऐसे समाचार मिलते हैं कि संचार के अवरुद्ध होने से सैन्य गतिविधियाँ प्रभावित हुईं अथवा उड्डयन क्षेत्र में संचार के अवरोध से कोई विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया इत्यादि इत्यादि। कहने का तात्पर्य है कि संचार प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सशक्त उपस्थिति की अनुभूति कराता है। तकनीकी के विकास ने संचार माध्यमों को भी प्रभावित किया है। किसी समय कबूतरों तथा धुएँ से संचार करने वाला मनुष्य वर्तमान समय में तकनीकी को उन्नत करके संचार की व्यवस्था से नये आयाम को स्पर्श कर रहा है। तकनीकी की मदद से मानव निर्मित उपग्रह अन्तरिक्ष में भेजे जा रहे हैं तथा ये मशीन अन्तरिक्ष से ही सूचनाओं का संचारण पृथ्वी पर कर

मेघना कुमार : सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यायल, वाराणसी

रहे हैं और अन्तरिक्ष में घटने वाली घटनाओं से पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को अवगत करा रहे हैं। यह संचार माध्यम के उन्नति का द्योतक है। अनेक विषयों के शिक्षण, संचयन तथा सम्वर्धन में भी संचार माध्यमों ने अहम भूमिका निभाई है। यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह संचार है क्या? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमे संचार के स्वरूप को समझना पड़ेगा। संचार के मूल में 'च' धातु है जिसका अर्थ है विचरण करना अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पहुंचना। परन्तु जिस संचार की चर्चा की जा रही है उसका अभिप्राय है मानव के संदेशों का संचरण करना। ''सूचनाओं, विचारों एवं भावनाओं को लिखित, मौखिक या दृश्य-श्रव्य माध्यमों के जरिये सफलता पूर्वक एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाना ही संचार है। संचार के माध्यमों से आशय है- वे उपकरण या साधन जो हमारे सन्देश को पहुंचाते हैं यथा- समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, चलचित्र, इंटरनेट इत्यादि।[1] संचार माध्यमों में तकनीकी के प्रयोग से विश्व तथा लोक परस्पर निकट आ रहे हैं। इस शोध पत्र में संगीत के शिक्षण तथा प्रचार के सन्दर्भ में संचार माध्यमों के भूमिका की चर्चा की जाएगी। वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति 2020 में शिक्षण में तकनीकी संचार माध्यमों को उल्लेखनीय स्थान दिया है इस सन्दर्भ में भी चर्चा की जाएगी।

संगीत स्वयं संचार का माध्यम है। यह संस्कृति तथा मनोभावों का संचरण पुरातन समय से करता आ रहा है।वर्तमान समय में तकनीकी संचार क्रांति ने संगीत विषय को बहुत प्रभावित किया है। दूरदर्शन, आकाशवाणी इत्यादि ने संगीत विषय को सुदूर क्षेत्रों में बैठे हुए लोगों, जिनके पास सांगीतिक मंच तक पहुँच कर संगीत सुनने की व्यवस्था नहीं थी, के लिए सुलभ बनाया। संगीत के प्रति रूचि जागृत किया। संगीत के विकास में दूरदर्शन तथा आकाशवाणी का बहुत बड़ा योगदान है। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के साथ ग्रामोफोन भी संगीत रसिकों की संगीत श्रवण पिपासा के लिए अमृत की बूंद सरीखा था। इस युग के पश्चात् संचार के माध्यमों में यूट्यूब, फेसबुक इत्यादि ने प्रवेश किया तथा संगीत की सुलभता और बढा दी। इन ऑनलाइन पद्धतियों की आवश्यकता तब और अधिक बढ़ गई जब कोरोना के संक्रमण काल में भारत सरकार के निर्देशानुसार लॉकडाउन लगाया गया। कोरोना जैसी विभीषिका से निपटने के लिए विश्व की अनेक सरकारों ने लॉकडाउन की घोषणा की थी। भारत में भी सम्पूर्ण लॉकडाउन की घोषणा कर दी गई। ऐसी परिस्थिति में सभी प्रकार की गतिविधियां प्रभावित हुईं। इसका प्रभाव संगीत के शिक्षण तथा मंचीय प्रस्तुति पर भी पड़ा। फलस्वरूप ऑनलाइन माध्यम को विकल्प के रूप में चुना गया तथा संगीत की प्रस्तुति तथा शिक्षण ऑनलाइन माध्यम से शुरू हो गया। सरकार द्वारा सम्पूर्ण लॉकडाउन की घोषणा अवश्य की गयी थी किन्तु शिक्षा के आदान-प्रदान में अवरोध होना प्रत्यक्ष रूप से विकास को प्रभावित करता अतः ऑनलाइन पद्धति से संगीत के शिक्षण को विकल्प के रूप में देखा गया। डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव के अनुसार—''शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और सभ्य सुसंस्कृत तथा योग्य नागरिक बनाया जाता है।''[2] ऑनलाइन पद्धति से संगीत के प्रसार की बात की जाए तो पाते हैं कि मंच प्रस्तुतियां तथा अनेक प्रकार संगोष्ठियाँ, प्रतियोगिताएं इत्यादि ने सहजता से ऑनलाइन पद्धति को स्वीकार किया है। इस ऑनलाइन पद्धति में सांगीतिक दृष्टि से अनेक अवरोध होने के बाद भी संक्रमण काल में एकलौता माध्यम होने के कारण संगीत की लगभग सभी विधाओं द्वारा इसे अपनाया गया। इस ऑनलाइन पद्धति द्वारा एक तरह से भारतीय संगीत का वैश्वीकरण हो रहा है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियाँ, देश तथा विदेश के सुप्रसिद्ध कलाकार तथा संगीत चिंतक ऑनलाइन पद्धति द्वारा सर्व सुलभ हो रहे है। उच्च शिक्षण तथा संगीत के अग्र समाज द्वारा संगीत की गतिविधियों के लिए ऑनलाइन पद्धति को स्वीकार करना लोक कलाकारों की अपेक्षा सुगम है। लोक कलाकारों का निवास सामान्यतः सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में होता है यहाँ तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता ऑनलाइन पद्धति से जुड़ने के लिए अवरोध पैदा करती है। लोक कलाकारों के लिए मूल्यवान संसाधन जैसे कम्प्यूटर, मोबाईल फोन इत्यादि की सुलभता नहीं है। यदि ये संसाधन उपलब्ध हो भी गये तो

इंटरनेट की उपलब्धता बाधा उत्पन्न करेगी। हमारे देश के बड़े शहरों में इंटरनेट की चौथी पीढ़ी काम कर रही है। इंटरनेट प्रदाता इस प्रयास में हैं कि शीघ्रता से पांचवीं पीढ़ी के इंटरनेट को भारत में लाया जाए। किन्तु यह भी सच है कि भारत के सुदूर स्थित गांव इंटरनेट की पहुँच से दूर ही हैं। ऐसे में लोक कलाकारों का ऑनलाइन माध्यम से अपनी सांगीतिक गतिविधियों को जारी रखना एक चुनौती है। इसके साथ ही गांव में रहने वाले विद्यार्थियों के लिए भी इंटरनेट की अनुपलब्धता एक बड़ी चुनौती है। ''हमारा देश लोकगीतों का देश है। भिन्नता में एकता के दर्शन केवल भारत में ही हो सकते हैं। विभिन्न संस्कृतियों के दर्पण व भिन्न-भिन्न रागों की छटा बिखेरते लोक गीत ही भारत की पहचान माने जाते हैं। वास्तव में भारतीय सांस्कृतिक जीवन का तो जन्म से ले कर मरण तक के कोई क्षेत्र ऐसे नहीं हैं, जो गीतों से दूर हों। जहाँ सावन भर कजरियां गई जाती हैं उसी तरह फागुन भर फाग की धूम रहती है।[3] यह सोचनीय विषय है कि जिन लोक गीतों का गायन गावों में समूह में बैठ के होता है। ऑनलाइन पद्धति में उनका सम्वर्धन किस प्रकार हो सकेगा। ऑनलाइन माध्यम से शिक्षण को विकल्प के रूप में रखने के लिए भारत सरकार ने विशेष ध्यान दिया। भारत सरकार ने ऑनलाइन पठन-पाठन को प्रोत्साहित करने तथा इसे सुगम बनाने के लिए 'स्वयं' नाम की योजना को प्रारम्भ किया। 9 जुलाई 2017 को माननीय राष्ट्रपति जी द्वारा इस योजना का शुभारम्भ किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को निश्चित पाठ्यक्रम अनुसार निःशुल्क ऑनलाइन शिक्षण प्रदान करना है। इसी प्रकार ई पुस्तकालय इत्यादि के द्वारा ऑनलाइन माध्यम से पठन-पाठन को सर्वसुलभ बनाने के प्रयास तेज हो गये हैं। ऑनलाइन शिक्षण व्यवस्था के लिए अनेक एप्लीकेशन हैं जो विद्यार्थी तथा शिक्षक के मध्य सेतु का कार्य कर रहा है। जिनमें प्रमुख हैं–फेसबुक (Facebook), इन्स्टाग्राम (Instagram), यूट्यूब (Youtube), स्काईप (Skype), गूगलमीट (Googlemeet), गूगल ड्यूओ (Google Duo), झूम (Zoom), वोट्सएप (Whatsapp) इत्यादि। संगीत के ऑनलाइन माध्यम से शिक्षण में अनेक कठिनाइयाँ हैं। संगीत के ऑनलाइन माध्यम से शिक्षण में एक चुनौती यह है कि कहीं ऐसा ना हो की संगीत की शास्त्रीयता इस ऑनलाइन माध्यम पर आ कर प्रभावित हो जाए। संगीत के सभी शिक्षकों तथा चिंतकों के लिए यह एक चिंता का विषय है। ऑनलाइन शिक्षण पद्धति से अनेक लाभ दृष्टिगोचर होते हैं। ऑनलाइन पद्धति में विद्यार्थी अपने पसंद के शिक्षक से सुलभता से शिक्षा ग्रहण कर सकेगा। संगीत के शिक्षण हेतु समय का निर्धारण गुरु एवं शिष्य के सुविधानुसार हो सकेगा। इस पद्धति से यातायात से होने वाली असुविधा तथा खर्च से बचा जा सकता है। ऑनलाइन पद्धति बच्चों तथा महिलाओं के लिए सुरक्षित वातावरण में शिक्षा ग्रहण करने का सुअवसर प्रदान करेगा।

भारत सरकार की नई शिक्षा नीति 2020 में संगीत विषय की बात की जाए तो देखा जा सकता है कि संगीत विषय के चहुमुखी विकास के लिए सरकार ने नई शिक्षा नीति 2020 में वृहद व्यवस्था की है। अभी तक संगीत एक वैकल्पिक विषय के रूप में था किन्तु अब संगीत को मुख्य विषय के रूप में रखा गया है। नई शिक्षा नीति में विद्यार्थी संगीत को अपने भविष्य उन्मुखी विषय के रूप में चुन सकेंगे। विज्ञान, वाणिज्य तथा चिकित्सा के विद्यार्थी भी संगीत को मुख्य विषय के रूप में चुन सकेंगे। नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार यदि कोई विद्यार्थी अपने किसी पाठ्यक्रम के बीच में ही अपना विषय बदलना चाहता है तो वह इसे बदल सकता है।

संगीत के उच्च शिक्षण में सामान्यतः ऐसी समस्या आती है कि जो विद्यार्थी संगीत में अपना भविष्य खोजने के हेतु से नामांकन कराने आते हैं, इनमें अधिकतर ऐसे होते हैं जिनको संगीत का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं होता है। ऐसे में विश्वविद्यालय की गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा को आत्मसात नहीं कर पाते हैं इस प्रकार उज्ज्वल भविष्य की कामना करने वाले विद्यार्थी का भविष्य अंधकारमय हो जाता है। विश्वविद्यालयी व्यवस्था से जुड़े गुनीजन अनेक मंचों पर इस बात को रखते रहे हैं। शिक्षण संस्थानों में संगीत विषयक अध्यापकों की कमी है। नई शिक्षा नीति के तहत भारत सरकार ने इस ओर महत्वपूर्ण कदम बढ़ाते हुए विद्यार्थियों के लिए संगीत विषय

की प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था प्राथमिक स्तर से की है। इस सराहनीय कदम से विद्यार्थी जब तक उच्च शिक्षा हेतु तैयार होगा तब उसके पास संगीत का प्रारंभिक ज्ञान तथा सुदृढ़ आधार होगा, जिससे संगीत के उच्च शिक्षण की दशा में सुधार होगा। वर्तमान समय में मुख्य समस्या संगीत में रोजगार ही है अतः इस सराहनीय कदम से इस समस्या का भी समाधान सहज ही प्रस्तुत हो जाएगा। भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत संगीत की लोक विधाओं के शिक्षण के लिए प्राथमिक स्तर पर व्यवस्था की है जो की अत्यंत सराहनीय है क्योंकि भारतीय संगीत की अनेक लोक विधाएं ऐसी हैं जो लुप्त होने की सीमा तक पहुँच चुकी हैं। इस प्रकार जब लोक विधाओं के शिक्षण की व्यवस्था की गई है तथा यह पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा। इस प्रकार संगीत में रोजगार का सृजन तो होगा ही साथ में उन सभी लोक विधाओं के सृजन, एवं सम्वर्धन में सहायता मिलेगी।

आने वाले समय में नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत संगीत विषय में 4 वर्षों का शिक्षा स्नातक (B.ED) पाठ्यक्रम भी होगा। स्नातक तथा स्नातकोत्तर के लिए दो तरह की व्यवस्थाएं की गई हैं। जिन विद्यार्थियों को शोध करना है उनके लिए स्नातक चार वर्षों का तथा परास्नातक एक वर्ष का होगा। शोध के लिए 'विद्या निष्णात' (M.FIL.) करने की आवश्यकता नहीं होगी। जिन विद्यार्थियों को शोध नहीं करना है उनके लिए स्नातक तीन वर्षों का तथा परास्नातक दो वर्षों का होगा। नई शिक्षा नीति के अंतर्गत यदि शिक्षार्थी को किसी कारणवश अपनी शिक्षा को बीच में छोड़ना पड़ जाए। ऐसे समय में इनके अंक के अकादमिक क्रेडिट बैंक में संचयन की व्यवस्था की है। शिक्षार्थी को भविष्य में जब भी अवसर मिले तब अकादमिक क्रेडिट बैंक से अपना क्रेडिट चालू करा के जहाँ अपनी पढ़ाई छोड़ दिया था वहीं से पुनः शुरू कर सकता है। यह एक अत्यंत सराहनीय पहल है।''

निष्कर्ष

संगीत के ऑनलाइन माध्यम से संचालित होने वाली गतिविधियों जिसमें प्रमुख रूप से शिक्षण, संगोष्ठी, आभासीय मंच प्रस्तुति इत्यादि ने संगीत के क्षेत्र में नये आयाम को स्पर्श किया है। महामारी के संक्रमण के काल में सांगीतिक गतिविधियाँ एकदम से ठप पड़ गयी थीं। ऐसे में ऑनलाइन माध्यम ने विकल्प प्रस्तुत किया तथा सांगीतिक गतिविधियाँ इस आभासीय मंच से पहले की अपेक्षा और बड़े स्तर पर संचालित होने लगीं। इन माध्यमों में अवरोधों का भी अनुभव किया गया। ऑनलाइन माध्यम से संगीत का शिक्षण भी चल रहा है। यद्यपि यह शिक्षण व्यवस्था संगीत के लिए उचित नहीं है तथापि संक्रमण काल में विकल्प नहीं होने के कारण इसे अपनाया गया। सरकार ने भी ऑनलाइन माध्यम से शिक्षण को सुलभ बनाने के लिए प्रयास कर रही है। नई शिक्षा नीति 2020 में भी सरकार ने इस ऑनलाइन माध्यम से शिक्षण को विकल्प के रूप में रखने की पक्षधर है। नई शिक्षा नीति में संगीत के लिए वृहद् सम्भावनाएं जैसे- रोजगर सृजन, प्राथमिक स्तर पर संगीत की शिक्षा, इत्यादि दृष्टिगोचर होती हैं।

उद्देश्य

आशा है कि इस शोध के माध्यम से भारतीय संगीत के आभासीय शिक्षण में चुनौतियों तथा सम्भावनाओं को नई शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में, लिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकेगा जो की भविष्य में किसी शोधार्थी अथवा विद्यार्थी के लिए एक प्रमाणित एवं लिखित उपयोगी तथ्य सामग्री के रूप में उपलब्ध हो सकेगी।

पाद टिप्पणी

1. गुप्ता डॉ. रूचि, 2021, संचार माध्यम एवं कला का विस्तार, प्रस्तार उद्घृत कोरोना काल : वैश्वीकरण एवं संचार क्रांति के परिप्रेक्ष्य में संगीत शिक्षण तथा मंच प्रस्तुतियों के विविध आयाम, सार्वभौम प्राच्य विद्या संस्थान नरिया, वाराणसी पृ. 29
2. यादव डॉ. वीरेंद्र सिंह, 2014, भारत में उच्च शिक्षा चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशा, अल्फा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली पृ. 14
3. मिश्र चंद्रशेखर, 2012, फागुन के लोकछंद उद्घृत निबंध संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस पृ. 81

संगीत क्षेत्र में मुगल बादशाहों का योगदान

डॉ. सारिका विवेक श्रावणे

सारांश :-

संगीत के क्षेत्र में मुगलकाल अत्यंत उल्लेखनीय काल है। परंतु दुर्भाग्यवश केवल अकबर संगीतप्रेमी था, जिनके दरबार में नवरत्न में से एक तानसेन नामक उत्तम गायक था, या औरंगजेब संगीत कला का विरोधी था। हमारी जानकारी इतने तक ही सीमित रह जाती है। परंतु बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, बहादुरशाह प्रथम, जहाँदाराशाह, फर्रूखसियर तथा मुहम्मदशाह रंगीला इन सभी मुगल बादशाहों का भी संगीत विकास की दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाने में योगदान रहा है यह इतिहास साक्षी है। इसलिए यह काल संगीत क्षेत्र के लिए बड़ा ही प्रभावशाली था। यह उतना ही सत्य है की, मुगल बादशाहों की रूचि के अनुसार हमारे शास्त्रीय संगीत में अनेक परिवर्तन उस युग के कलाकारों द्वारा किए गये, कहीं ये परिवर्तन सुखद मनोहारी थे तो कहीं कहीं ऐसा भी लगता है की जैसे ये हमारी संस्कृति से ही अलग करते जा रहे है। दूसरी बात यह कि इस काल का अन्य दृष्टि से भी महत्व है और वह यह की, एक ओर जहाँ श्रृंगारिक रचनाओं का प्रचार-प्रसार हुआ वहीं दूसरी ओर इसका विशुद्ध भारतीय स्वरूप जिसमें आध्यात्म की प्रधानता थी, विकास-पथ की ओर अग्रेसर हो रहा था। अर्थात यह भी स्पष्ट होता है कि, जिस काल में संगीत कलाप्रेमी राजा का साम्राज्य रहता था उस काल में कला बढ़ने लगती थी, फूलती थी तो कभी इसके विरूद्ध परिस्थितियाँ भी दिखाई देती है। इन सभी का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध निबंध में करने का प्रयास मैने किया है।

उद्देश :-

भारतीय संगीत के क्षेत्र में मुगल काल का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। सच तो यह है की यह विवाद का विषय हो सकता है की संगीत का विकास हुआ की अवनति हुई। परंतु इस काल में घटित अनेक घटनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट होता है की यह काल संगीत क्षेत्र का उल्लेखनीय काल है, जिसमें संगीत क्षेत्र में अनेक विकासात्मक कदम उठाए। इस तथ्य को इस शोध निबंध द्वारा प्रस्तुत करना। इस काल में हमें ज्यादातर अकबर या औरंगजेब का ही उल्लेख मिलता है। तथा बाबर से लेकर मुहम्मद शाह रंगीला तक अनेक मुगल बादशाहों का संगीत प्रेम शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

संशोधन पद्धति :-

भारतीय संगीत ठीक उस सागर के समान है, जिसमें चारों ओर की सब नदियाँ आकर मिलती है और फिर भी सागर अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता वह अपनी स्वाभाविक स्थिति और सौंदर्य को अक्षुण्ण रखता है। ठीक इसी तरह मुगल काल में अनेक बादशाहों ने अपनी रूचिनुसार संगीत क्षेत्र में भी अनेक बदलाव लाए इस संदर्भ में प्राचीन तथा आधुनिक ग्रंथों का अध्ययन, विद्वानों के मत जानना, अन्य विश्व-विद्यालयों में हुए संशोधन कार्य अर्थात शोधप्रबंध, लघुशोध प्रबंध, शोध निबंध आदि संशोधनात्मक कार्य का आधार प्रस्तुत शोध निबंध में रहा है।

*सहाय्यक प्राध्यापक, रिसर्च गाईड (संगीत विभाग), स्व.छ.मु. कढी कला महाविद्यालय, अचलपूर कॅम्प, जीला-अमरावती- मो.नं. 9766169685, email id- sarikashrawane@rediffmail.com

परिकल्पना :-

1) प्रस्तुत विषय संदर्भ में आज की पीढ़ी को मुगल बादशाहों का संगीत प्रेम स्पष्ट होगा।
2) भारतीय संगीत में अनेक उतार-चढाव आये। हमारा संगीत कई साँचों में ढाला गया परंतु फिर भी भारतीय संगीत अपनी भारतीयता के उज्ज्वल सौंदर्य को न छोड़ सका यह भूमिका स्पष्ट होगी।
3) मुगल काल में अकबर दरबार के नवरत्न में से तानसेन, औरंगजेब का कट्टर विरोधी था केवल यह सोच न रहकर बाबर से लेकर मुहम्मद शाह रंगीले तक का विकासात्मक पथ आज की युवा पीढ़ी के संशोधन कार्य में निश्चित ही प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

साहित्य की समीक्षा :-

मुगल काल में भारतीय संगीत का सर्वाधिक विकास हुआ है यह इतिहास साक्षी है। तो निश्चित ही हमारे इतिहास द्वारा मुगल कालीन संगीत तथा संगीत के क्षेत्र में मुगल बादशाहों का योगदान इस संदर्भ में प्रस्तुत संशोधन साहित्य की समीक्षा करते समय, केवल गायन में ही नहीं वरन वादन एवं नृत्य का भी विकास अनेक संशोधन द्वारा प्राप्त होता है। जैसे -

1) मुगल काल में कत्थक नृत्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन-शोधप्रबंध-मंजूषा सर्वेश जोशी-भातखंडे संगीत संस्थान, लखनऊ
2) अकबर कालीन संगीत का सिंहावलोकन-लघु शोध प्रबंध - अरूण कुमार, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला
3) सम्राट अकबर का भारतीय संगीत को योगदान-शोधप्रबंध-राजेन्द्रप्रसाद शर्मा-इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ
4) मुगल साम्राज्य में पनपा उत्तर भारतीय संगीत, शोधप्रबंध, ओमनाथ व्यास, जयपुर विश्वविद्यालय, जयपुर
5) संगीत का स्वर्णयुग-मुगल काल या आधुनिक काल-इंद्रजीत कौर, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

उपरोक्त विषयोंपर महत्वपूर्ण विवेचन प्राप्त है। और एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि, सम्राट अकबर का ज्यादातर उल्लेख मिलता है जैसा कि मैने सारांश में भी लिखा है कि, अकबर एवं औरंगजेब का अधिकांश उल्लेख मिलते है, 1500 से 1700 ई. तक अनेक मुगल बादशाहों का संगीत विकास में योगदान रहा है जिसका विवेचन प्रस्तुत शोधपत्र में आपके समक्ष रखने का प्रयास किया है।

मुख्यसार :-

मुगल काल, बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, बहादुरशाह प्रथम, जहाँदाराशाह फर्रूखसियर, मुहम्मद शाह रंगीला, परिवर्तन, भक्तिमार्ग, मनोरंजन, संगीतप्रेमी, भारतीय संस्कृति, नये रागों का प्रचलन, संगीतकार एक देन, 18 वी शताब्दी, महत्वपूर्ण कालखंड, स्वर्णकाल।

प्रस्तावना :-

''मदभक्ता यत्र गायंति, तत्र तिष्ठामि नारद'' के अनुसार ईश्वराराधना के लिए प्रयुक्त किए जानेवाले संगीत का प्रयोग धीरे-धीरे मद-मदिरा में डूबे शहंशाहो को खुश करने के लिए होने लगा। परंतु इस समय कुछ ऐसे मुगल बादशाह भी थे जिनको कला की कीमत थी, जो संगीत को मनोरंजक नहीं, आध्यात्मिक कला मानते थे। जिस राजा को संगीत पसंद था उस काल में संगीत कला बढ़ने लगी। उन बादशाहों की रूचि के अनुसार हमारे शास्त्रीय संगीत में अनेक परिवर्तन उस समय के जो कलाकार वर्ग थे उनके द्वारा किए गये। मुगल काल में अनेक नव रागों की निर्मिती हुई। संगीतज्ञ इस काल में नामोल्लेखित हुए। अनेक महत्वपूर्ण संगीत ग्रंथों की निर्मिती इस काल में ही हुई है। हुमायूँ जैसा संगीतप्रेमी बादशाह जब युद्ध में विजयी होते थे तो राज्य में लगभग एक महीना उत्सव मनाया जाता था जिसमें गायक-गायिकाओं के संगीत की धूम रहती थी, ऐसे भी उल्लेख इतिहास में मिलते हैं। ऐसे अनेक मुगल बादशाहों का योगदान संगीत विकासोन्मुख रहा है जिसमें, बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, बहादुर शाह प्रथम, जहाँदारशाह, फर्रूखसियर, मुहम्मद शाह रंगीला इनके नाम उल्लेखनीय है। इन सभी मुगल बादशाहों का संगीत प्रेम तथा संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान

प्रस्तुत शोधनिबंध में शब्द मर्यादा के कारण संक्षिप्त में दर्शाने का प्रयास कर रही हूं।

विषय की ओर :-

ग्यारवीं शताब्दी में मुगलों का आक्रमण शुरू हो गया लगभग बारहवीं शताब्दी में भारत में मुसलमानों का राज हो गया। इस बात से सभी परिचित हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय, आर्थिक आदि घटकों पर मुगल शासन काल का ही प्रभाव पडा तो इससे संगीत कला कैसे वंचित रह सकती है। मुसलमानों का प्रभाव भारतीय संगीत में भी पडा जिससे उत्तरी एवं दक्षिणी भारतीय संगीत धीरे धीरे पृथक हो गये। परंतु कुछ मुसलमानों को संगीत से बड़ा ही प्रेम था, लगाव था उनके समय मे संगीत की अच्छी उन्नति हुई।

1) बाबर :- (1526-30)

बाबर एक वीर योद्धा था, वह एक संगीतज्ञ भी था। स्वयं संगीत प्रेमी था। उसकी आत्मकथा तुज्क-ए-बाबरी में अनेक स्थलों पर संगीत गोष्ठियों का उल्लेख मिलता है। उसने स्वयं कई गीत लिखे जो उसकी मृत्यु के बाद भी प्रचलित रहे। स्वयं गाने में प्रवीण होने के कारण गायकों का भी वह सम्मान करता था। श्रेष्ठ गायकों को पुरस्कृत करता था, उनका मानना था की संगीत एक महान शक्ति है, इसके द्वारा मानव हृदय परिवर्तित हो सकता है, शैखी नामक एक बीनकार बाबर का दरबारी संगीतज्ञ था। वह बरबत और गिटार बजाने में भी निपुण था। वैसे ही कुले मुहम्मद ऊदी भी दरबारी संगीतज्ञ थे जो की नये राग और धुनों को रचने में प्रवीण थे। इस काल में श्रृंगारिक रचनाओं का संगीत में प्रवेश हुआ परंतु फिर भी भारतीय संगीत ने अपनी मर्यादा नहीं त्यागी, अध्यात्मिकता भी थी। अर्थात यह रूप साथ में विकसित हुए मिलते हैं।

''दि हिस्टोरी ऑफ डकन्स म्यूजिक'' में विद्वान मोलोगिन ने इस काल का वर्णन इस प्रकार किया है। ''मुगल काल के प्रथम चरण में दक्खन का संगीत अपनी-पुरानी सुषमा के देदीप्यमान गौरव को विकसित कर रहा था, जबकि उत्तर-भारत के विशाल प्रांगण में विदेशी संगीत से मिश्रित भारतीय संगीत अपनी विचित्र आभा विकीर्ण कर रहा था। परंतु यह मानना पड़ेगा कि मुगल-काल के प्रथम चरण में संपूर्ण भारत में संगीत की हलचल हो रही थी। वह हलचल कहीं कव्वाली, ख्याल आदि के रूपों में मिलती और कहीं कीर्तन, भजन और गीतों के रूप में प्राप्त होती। पर संगीत की ज्योत्सना की स्निग्ध आभा भारत-पटल पर बिखर रही थी, इसमें संदेह नही।''

2) हुमायूँ :- (1530-56)

बाबर के पश्चात उसका पुत्र हुमायूँ गद्दी पर बैठा। उसपर अधिकतर सूफी विचारों का प्रभाव दिखाई देता है, तो सूफिओं द्वारा भारतीय संगीत का बहुत प्रचार हुआ। दोनों में एक बात अधिकतर है जो की आत्मातिक बाजू। हुमायूँ संगीत का अनन्य प्रेमी था और दार्शनिक भावों से परिपूर्ण सांगीतिक रचनाओं को वह ज्यादा पसंद करता था।

हुमायूँ प्रत्येक सोमवार व बुधवार को संगीत सभा का आयोजन करके संगीत का आनन्द उठाया करता था ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है। उनके दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे, मीर कलन्दर, चंग-वादक कासिम, गिजवादक कोचक, कुबूज-वादक मुखालिस, हाफिज सुल्तान रख्ता, आदि 'मुगलकालीन भारत' के अनुसार—''सुंदर सलोने रूपवान् एवं सुरीले संगीतज्ञों को हुमायूँ 'अहले मुराद' नाम से संबोधित करता था। क्योंकि इनकी कला से सभी का मनोरंजन होता था।

हुमायूँ का एक युद्ध प्रसंग है शब्द मर्यादा के कारण मै यहाँ इसका विस्तृत विवेचन नही कर सकती। परंतु भारतीय गायक बैजू ने एक फारसी गजल गाकर हुमायूँ का क्रोध शांत किया था। हुमायूँ पर संगीत का इतना प्रभाव इस प्रसंग द्वारा अभिव्यक्त होता है। उसका विश्वास था की, मानव जीवन में नया उत्साह, नयी रोशनी संगीत से आती है। आखिरी वक्त तक वह संगीत के महान उपासक बने रहे।

3) अकबर :- (1556-1605)

मात्र सोलह वर्ष की उम्र में गददी पे बैठे हुमायूँ के पुत्र अकबर महान संगीत प्रेमी थे। इसके कारण संगीत कला घर-घर तक पहुँचने लगी। विशेषतः

इस युग में संगीत का प्रचलन नारी-समाज में भी होने लगा था। दूसरी ओर तानसेन की शास्त्रीय और सम्मोहक गायकी संगीत का नया इतिहास रच रही थी। अकबर को संगीत से लगाव होने के साथ वह विचारक एवं चिंतक भी थे। वह संगीत-विद्वानों के साथ बैठकर 'संगीत-रत्नाकर' जैसे ग्रंथों पर विचार करते और उनके मर्म को समझते थे। भारतीय रागों और ईरानी नग्मों के सैद्धांतिक और प्रायोगिक पक्षों का पूर्ण ज्ञाता थे। अकबरी दरबार के संगीतज्ञों में तानसेन, रामदास, बाजबहादुर, समशेद खाँ, मियाँ लाल, वीर मंडल खाँ, तानतरंग खाँ, चाँद खाँ आदि भारतीय संगीत के कलाकार थे। अकबरी दरबार के विदेशी कलाकारों के भी नाम प्राप्त होते है। जैसे उ. मुहम्मद, मीर सैयद अली आदि। उल्लेखनीय है की ग्वालियर निवासी लाल कलावंत ने संगीत-शिक्षा अकबर से प्राप्त की और एक अत्यंत महत्वपूर्ण कलाकार बना। इस युग में मुस्लिम की अपेक्षा हिन्दू जनता अधिक संगीतप्रिय थी जिनको आध्यात्मिक सौंदर्यता थी। अनेकों ध्रुवपद रागमाला मिलते हैं जिनमें संगीत शास्त्र का यथोचित परिचय होता है। इस काल में ग्रंथों की भी रचना हुई। संगीत कला की इस महत्वपूर्ण उत्थान की पृष्ठभूमि में निश्चय ही अकबर का संगीतानुराग रहा है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अर्बोजोर्ज 'दि साइंस ऑफ इंडियन म्यूजिक' में लिखते है, भारतीय संगीत की दृष्टि से अकबर के काल को स्वर्ण-युग कह सकते है।

4) जहाँगीर :- (1605-27)

सलीम अर्थात जहाँगीर के नाम से तख्त पर बैठनेवाले अकबर के पुत्र थे। यह भी संगीतप्रेमी थे। उनको श्रृंगाररस-प्रधान संगीत कला विशेष रूप से पसंद थी। जहाँगीर स्वयं भी अच्छे कलाकार थे, उन्होंने फारसी भाषा में अनेक गजलों की रचना की थी, जिन्हें वह नूरजहाँ के साथ मिलकर अवकाश के क्षणों में गाया करता था। उसकी आत्मकथा 'तुजुक जहाँगीर' एक ओर जहाँ उस काल का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती है, वहीं दूसरी ओर जहाँगीर की सुंदर लेखन-कला की झाँकी भी प्रस्तुत करती है। नृत्यकला भी उनकी अभिरूचि थी।

हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों का इस युग में खूब आदान-प्रदान हुआ, जिससे हमारी सांगीतिक और सांस्कृतिक भावना सुदृढ़ हुई।

विलास खाँ, हम्जा, खुर्रमदाद, मखू, परवीज-ए-दाद, छत्रखाँ आदि प्रसिद्ध संगीतकार इस काल की ही देन है।

5) शाहजहाँ :- (1627-58)

जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ के काल में संगीत क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन शुरू हुआ। जहाँ तक मैने पढा है मेरे जानकारी के अनुसार इस काल में संगीत के प्रायोगिक पक्ष पर ही अधिक ध्यान दिया गया और संगीत कला का अशिक्षित विद्वानों के हाथ में जाना शुरू हुआ। अर्थात उच्चस्तर में जो संगीत था वह निम्न वर्ग के हाथों में पहुंच गया। संगीत कला को पूर्णतः व्यवसायिक रूप दिया गया। इस काल में कलाकारों में विलासिता की भावना आ गई थी।

सम्राट शाहजहाँ स्वयं अच्छे कवि और गायक भी थे। कलाकारों को परखने की क्षमता उनमें थी। उनके दरबारी संगीतज्ञ में तानसेन के पुत्र विलास खाँ के दामाद लाल खाँ जिन्हें शाहजहाँ ने 1630 ई. में 'गुनसमुंदर' खाँ की उपाधि से सम्मानित किया था। खुशहाल खाँ, बिसराम खाँ, जगन्नाथ कविराय आदि प्रमुख थे।

राजा सुरेन्द्रमोहन टैगोर यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक में लिखते हैं। 'During Shohjehan's reign (1626-58) the following musicians lived, Jagganath, Dirang Khan and Lal Khan (Gunsamander), Lal Khan was son in law to Bilas son of Tansen. Jagganath and Dirang Khan were weighted in silver and received each Rs. 4500.'

शाहजहाँ के समय समय पर संगीत प्रतियोगिताओं आदि के आयोजन का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

6) औरंगजेब :- (1658-1707)

औरंगजेब के संदर्भ में संगीत-इतिहासकारों का काफी मतभेद दिखाई देता है। कई कृतज्ञों ने औरंगजेब को 'संगीत का शत्रु' घोषित किया और इसके समर्थक

पं. विष्णु नारायण भातखंडे, कैप्टन डे, टाईड आदि है। कैप्टन डे लिखते है :- 'The Emperor Aurangazib ablished the Court Musicians. Bloch-Man in his translation of 'AIN-I-AKBARI" quotes a curious story from the historian Khan-Khana as to what occurred when his order was given the Court Musicians brought a bier in front of the window when the Emperor used to show himself daily to the people and wailed so loud as to attract Aurangzib's attention. He came to the window and asked that is meant? They replied the 'Melody" was dead and that they were taking him to the graveyard. The Emperor replied, very well. Make the grave deep so that neighter voice nor echo may issue from it.' कर्नल टाईड ने भी 'यूनिवर्सल म्यूजिक डायरी' में इस बात का समर्थन किया है।

दरअसल पूर्व में वर्णित उस घटना से औरंगजेब संगीतज्ञों से सावधान हो गया था। जिसका सहारा लेकर उसने शाहजहाँ को मूर्ख बनाते हुए गद्दी प्राप्त की। इस कारण से उसका संगीतज्ञों पर से विश्वास उठ गया था। उसके मन में यह बात बैठ गयी थी कि, जो कलाकार एक लाख रूपये के लिए अपने आश्रयदाता शाहजहाँ को धोखा दे सकता है वह मुझे भी नहीं छोड़ेगा और इस स्थिति के लिए जितना औरंगजेब है उतना ही बल्कि उससे ज्यादा ही संगीतज्ञ भी। फिर भी उन्हें नियमित वेतन आदि मिलता था। खुशहाल खाँ को औरंगजेब ने उसकी पैतृक उपाधि लौटाते हुए पुनः दरबारी संगीतज्ञ के रूप में नियुक्त किया। संगीतज्ञ हयात सरस नैन पर भी औरंगजेब की विशेष कृपा थी। किरपा पखावजी को उन्होंने मृदंगराय की उपाधि से सम्मानित किया था। संगीत पारिजात एवं मानकुतूहल का अनुवाद भी इनके ही काल में हुआ। ऐसी महत्वपूर्ण घटनायें यह दर्शाती है की औरंगजेब संगीत का कट्टर विरोधी नहीं था।

7) बहादुर शाह प्रथम :- (1707-12)

मुअज्जम नामक औरंगजेब के पुत्र ने अपने भाई आजम को मारकर 'बहादुर शाह' के नाम से गद्दी पर बैठा था। संगीततज्ञ न्यामत खाँ, जो 'सदारंग' के नाम से अपनी रचनाओं के द्वारा अमर हो गए इनकी शिक्षा इसी दरबार में हुई। इस संदर्भ में अनेक ध्रुवपद मिलते है जो बहादुर शाह की प्रशंसा में लिखे गये।

8) जहाँदाराशाह :- (1712-13)

न्यामत खाँ अर्थात सदारंग इसके भी दरबारी रहे है। लाल कुँवरि नामक एक नर्तकी पर बादशाह मोहित थे, जिसके प्रभाव से कई कलाकार बादशाह द्वारा लाभान्वित हुए। 'रागमाला' में मुईजुद्दीन, जहाँदाराशाह की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद मिलते हैं।

9) फर्रूखसियर :- (1713-19)

इनके कालखंड में संगीत क्षेत्र के संदर्भ में कोई महत्वपूर्ण घटना शायद नहीं हो परंतु संभवतः सदारंग इनके भी दरबार में रहे हैं ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

10) मुहम्मदशाह रँगीला :- (1719-48)

मुहम्मद बहादुरशाह के प्रथम पौत्र थे। इस बादशाह को संगीत-जगत् रँगीले के नाम से जानते हैं। जैसे की 'सदा रंगीले मोंमद सा' इस पंक्ति से हम सब भलीभाँति परिचित हैं। सदारंग ने इन बंदिशों की रचना करके इन्हें लोकप्रिय बनाने के लिए इनमें बादशाह का नाम डाल दिया। इस युग तक भी ख्याल को पर्याप्त लोकप्रियता नहीं मिल पाई थी। उच्चस्तर का ध्रुवपद गायन था। रंगीले दरबार के प्रमुख कलाकारों में सदारंग, खुसरो खाँ के पुत्र फिरोज खाँ (अदारंग) एवं कवि आलम तथा घनानंद का महत्वपूर्ण स्थान है। सदारंग-अदारंग की बंदिशे हम आज भी सुनते हैं, गाते हैं। मुहम्मद शाह रंगीले इनके पश्चात ही संगीत का सूर्य अस्त होने लगा।

निष्कर्ष :-

वास्तव में मुगल काल का प्रथम चरण संगीत के दृष्टिकोण से बडा महत्वपूर्ण काल रहा है। इस काल में अनेक संगीत-रत्न पैदा हुए, जिन्होंने संगीत की अनेक प्रकार से सेवा की। शास्त्रकार हुए जिन्होंने शास्त्रपक्ष को मजबूत बनाया। इस प्रकार संगीत

कला में जो गिरावट आ गई थी, वह इस काल में थमकर सुव्यवस्थित होने लगी। भक्तिमार्ग से लेकर मनोरंजन तथा मदमदिरा में डूबे बादशाहों को प्रसन्न करने तक का संगीत सफर का अवलोकन करने पर यह ध्यान में आता है कि, मुगल कालखंड में संगीत का उत्तरोत्तर विकास ही हुआ है। संगीत कला में परिवर्तन भी बहुत आये परंतु संगीत कला दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित हुई जिस कारण हम आज संगीत क्षेत्र को भलिभाँति जान रहे हैं, संशोधन कर रहे है। मुझे ऐसा लगता है की मुगल बादशाहों ने समय समय पर संगीत कला की महती को जाना है, कला की कदर की, संगीतज्ञों, गायकों को यथोचित सम्मान देकर संगीत कला को जीवित रखने का कार्य किया। यह बात हमें स्वीकार करनी ही होगी और इस बात का इतिहास साक्षी है।

संदर्भ

1) गर्ग डॉ. लक्ष्मी नारायण : मुसलमान और भारतीय संगीत, अंक जनवरी 2013, प्रकाशक- संगीत कार्यालय हाथरस-204101 (उ.प्र.)
लेख- भारतीय संगीत में मुसलमानों के योगदान से संबंधित आलेख—हारून डॉ. मुहम्मद, पृ. 153
लेख- औरंगजेब का संगीत प्रेम, आचार्य बृहस्पति, पृ. 228
2) भगवतशरण शर्मा : भारतीय संगीत का इतिहास, सम्पादक, गर्ग बालकृष्ण, प्रकाशक— संगीत कार्यालय, हाथरस 204101 (उ.प्र.), मार्च 2010 पृ. 69
3) जोशी उमेश : भारतीय संगीत का इतिहास
4) मिश्र पं. विजयशंकर : औरंगजेब का संगीत विरोध : कितना सच, कितना झूठ, संगीत कार्यालय हाथरस, अंक 1986, दिसम्बर।
5) मिश्र पं. विजयशंकर : आलेख—मुगल बादशाहों का संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस, अंक-1987 दिसम्बर।

गाथाधारित लोकनाट्यों में निहित् सामाजिक प्रतिरोधात्मक संघर्ष

डॉ. पुष्पम नारायण, हरि शंकर गुप्ता

सारांश

भारतीय समाज में दो वर्गो का सांस्कृतिक अंतर्विरोध एक ओर सामंतवादी, ब्राहमणवादी विचाराधारा की विलगाव वादी नीति से सबसे बड़े उत्पादक शक्ति 'शूद्रों' को सामाजिक गतिविधियों से वंचित रखा, उसे सामाजिक रूप से बहिष्कृत रखा। दूसरी ओर इन सामंती शक्तियों से कटे, छटे, वंचित लोगों ने संगठित होकर उनके तर्कहीन सिद्धांतों को उनकी वैचारिक अन्यायपूर्ण नीतियों को अपनी कला माध्यमों के द्वारा प्रकट करने की चेष्टा की। इस प्रकार 'वैदिक संस्कृति' के समानान्तर लौकिक संस्कृति भी पनपने लगी और फलने फूलने लगी। दलित, शोषितों के बीच उनकी आकांक्षाओं एवं यथार्थो के अंतर्सबंधों एवं अंतर्विरोधों के आधार पर पनपनेवाली संस्कृति, एक ओर तो वर्चस्व की संस्कृति को चुनौती देती है तो दूसरी ओर उसमें व्यक्त आकांक्षाओं के आधार पर अपने आसपास की दुनियाँ को आलोचनात्मक समीक्षा करके उसमें सकारात्मक परिवर्त्तन की मांग करती है।

अलग-अलग क्षेत्र विशेष में, दलित एवं पिछड़ी जातियों के सामाजिक एवं आर्थिक सवालों पर संघर्ष की भिन्न-भिन्न कथाएँ, कहानियों में शोषण का भिन्न-भिन्न रूप होना, भिन्न-भिन्न आयामों के रूप में प्रकट होने लगे। मुक्ति का आन्दोलन प्रत्यक्षतः या भौतिक रूप में विद्यमान नहीं रहा, परंतु मुक्ति की आकांक्षा का संघर्ष पूरी ताकत से वैचारिक स्तर पर चलती रही जिसकी प्रतिध्वनि बिहार की गाथाधारित लोकनाट्यों में स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती है।

मुख्य बिन्दु- *गाथाधारित, लोकनाट्य, शोषण, अत्याचार, प्रतिरोधात्मक, संघर्ष*

भारतीय समाज का वर्गीकृत (Classified) मापदंड हमेशा से रहा है। शासकों और शोषितों की दुनियाँ, आहार-व्यवहार, जीवन निर्वहन की शैली, संप्रेषण माध्यम तथा उसके विश्लेषण को अपना एक अलग ढ़ंग से करने का तरीका है। इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाले शासकों के लिए 'संस्कृति' उनके भौतिक कवच के रूप में वैचारिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक धारदार हथियार के रूप में व्यवृहत होता है। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत दलितों एवं शोषितों की संस्कृति शोषण एवं दमन पर आधारित दमनात्मक व्यवस्था के प्रतिरोधात्मक संघर्ष में जनमती है और विकसित होती है।

शोषित वर्गों की इस प्रकार की संस्कृति उनके व्यवहारात्मक शैलियों, लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोकगाथाओं, प्रतीकों एवं अन्य अन्यान्य सांस्कृतिक काल्पनिक विम्बों के रूप में व्यक्त होता है, जो शोषकों की संस्कृति से बिल्कुल हटकर मुक्ति की राह की खोज करने में लगी रहती है, तो दूसरी ओर अपने लिए मनोनुकूल वांछित दुनिया की रचना करती जाती है। इस प्रकार वह अपने आस-पास के परिवेश के बदलाव को न केवल रेखांकित करता है

* हरि शंकर गुप्ता : शोघ छात्र, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा। Contact no- 9334115494, Email Id- dirhsg31@gmail.com

** डॉ. पुष्पम नारायण : शोध निर्देशिका (आचार्य व अध्यक्ष), विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा। Contact no- 9430063265, Email Id- npushpamji@gmail.com

बल्कि उसे निश्चित आकार-प्रकार देने का या भौतिक स्वरूप प्रदान करने की भी उद्घोषणा करता है।

भारतीय समाज में दो वर्गो का सांस्कृतिक अंतर्विरोध एक ओर सामंतवादी, ब्राहमणवादी विचाराधारा की विलगाव वादी नीति से सबसे बड़े उत्पादक शक्ति 'शूद्रों' को सामाजिक गतिविधियों से वंचित रखा, उसे सामाजिक रूप से बहिष्कृत रखा। दूसरी ओर इन सामंती शक्तियों से कटे, छटे, वंचित लोगों ने संगठित होकर उनके तर्कहीन सिद्धांतों को उनकी वैचारिक अन्यायपूर्ण नीतियों को अपनी कला माध्यमों के द्वारा प्रकट करने की चेष्टा की। इस प्रकार 'वैदिक संस्कृति' के समानान्तर लौकिक संस्कृति भी पनपने लगी और फलने फूलने लगी। दलित, शोषितों के बीच उनकी आकांक्षाओं एवं यथार्थो के अंतर्सबंधों एवं अंतर्विरोधों के आधार पर पनपनेवाली संस्कृति, एक ओर तो वर्चस्व की संस्कृति को चुनौती देती है तो दूसरी ओर उसमें व्यक्त आकांक्षाओं के आधार पर अपने आसपास की दुनियाँ को आलोचनात्मक समीक्षा करते उसमें सकारात्मक परिवर्त्तन की मांग करती है।

लोकनाट्य से अभिप्राय है-शास्त्रीय साहित्य, सामाजिक सोपान और इतिहास में सम्मानजनक एवं यथोचित स्थान पाने से वंचित विभिन्न जातीय संवर्ग से सम्बद्ध मौखिक एवं श्रुति परंपरा में संरक्षित अति समृद्ध गाथा, जिसमें मध्ययुग के विभिन्न कालखंड के लोकसंस्कृति एवं इतिहास काव्यात्मक एवं अलंकृत रूप से या नाट्यात्मक रूप में विद्यमान है। बिहार की इस बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर में विशाल जनसमुदाय की कतिपय जातियों की उदात्त भावनाओं एवं अस्मिता के गौरवपूर्ण दस्तावेज संरक्षित हैं। शौर्य, प्रेम, सौन्दर्य, पराक्रम, त्याग एवं बलिदान की कथा इन लोकनाट्यों में सांस्कृतिक धरोहर के रूप में मुखरित है। उपर्युक्त आचरणों के अतिरिक्त इन लोकनाट्यों में लोक-व्यवहार, लोकाचार, लौकिक अनुष्ठान, लोकोपवाद, आस्थामूलक देवी-देवताओं के रूप में नायक-नायिकाओं को प्रतिष्ठा के साथ पूजन की एक विशिष्ट परंपरा का दर्शन इन लोक नाट्यों के अन्तर्गत अनायास ही हो जाता है। लोकनाट्य प्रत्येक क्षेत्र विशेष का अपना है जिसमें उस क्षेत्र की लोक संस्कृति निहित होती है। लोकनाट्यों एवं गाथाधारित लोकनाट्यों का भंडार अत्यंत समृद्ध है। इस समृद्धि के कारण समाज का चित्रण बारीक से बारीक रूप में हमें प्राप्त होता है।

जन मानस के मौखिक दस्तावेज के रूप में उपलब्ध लोकनाट्यों में उनकी आस्था, विश्वास, विचार, रूढ़ियां, मान्यताएँ, परंपरा, लोकविवेक तथा लोकमूल्य इत्यादि सन्निहित होते हैं और इन्हीं तत्वों के माध्यम से समाज की स्थिति, वास्तविकता को समझा जा सकता है। बिहार में विभिन्न, वर्ग, धर्म तथा जाति के लोग रहते हैं। इन वर्गों की सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में अपूर्व योगदान रहा है। समाज के निर्माण में वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य तथ शूद्र इन चारों वर्णों का बराबर योगदान रहा है परंतु उत्तर आधुनिक काल में दलित विमर्श एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। दलित चिन्तन जैसे विषयों पर गंभीरतापूर्वक कार्य हो रहा है। साकारात्मक रूप से यदि देखा जाय तो लोक संस्कृति के वाहक में लोकनाट्य विभिन्न परंपरागत शैलियों में दलित चिन्तन को रेखांकित करते हैं। यद्यपि समस्त जातियों के अपने-अपने पृथक गाथाधारित लोकनाट्य या नाटयरूप हैं, जिनमें उनके अर्थात उस जाति विशेष के सामाजिक जीवन प्रतिबिम्बित हैं। इन लोकनाट्यों में उन जातियों के कार्यों की रूपरेखा इत्यादि का भी वर्णन यत्र-तत्र प्रायः सर्वत्र देखने को मिलता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाय तो दलितों का इतिहास यातना सहने का इतिहास रहा है। यद्यपि वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत समाज को गति देने में सभी वर्गो का योगदान रहा परंतु बाद में 'शूद्र' के रूढ़ अर्थ में प्रयोग होने से वे समाज के दबे, कुचले तथा तिरस्कृत वर्ग के रूप में सदियों से प्रताड़ित होते रहे हैं। इन सामाजिक प्रताड़ना से मुक्ति के लिए जिन प्रयासों की चर्चा लोकनाट्यों या गाथाधारित नाटयों में मिलती है, वह अमानवीय नहीं, मानवीय भी है। ऐसा मानव ने ही किया जो अन्य लोगों की तरह हाड़, माँस का बना प्राणीमात्र था। राजा सलहेस और लोरिक ने अत्याचार, शोषण के विरूद्ध लड़ाई लड़ी। किसी जाति या धर्म के विरूद्ध उनकी लड़ाई नहीं थी। परंतु इनकी पहचान जाति विशेष के नायक रूप में की गयी और अपनी

जाति विशेष में ही पूजे जाने लगे। आस्थामूलक और देवत्व की बात होने के कारण अन्य जातियों के द्वारा भी मात्र श्रद्धा के रूप में देखे जाते हैं।

अलग-अलग क्षेत्र विशेष में, दलित एवं पिछड़ी जातियों के सामाजिक एवं आर्थिक सवालों पर संघर्ष की भिन्न-भिन्न कथाएँ, कहानियों में शोषण का भिन्न-भिन्न रूप होना, भिन्न-भिन्न आयामों के रूप में प्रकट होने लगे। मुक्ति का आन्दोलन प्रत्यक्षतः या भौतिक रूप में विद्यमान नहीं रहा, परंतु मुक्ति की आकांक्षा का संघर्ष पूरी ताकत से वैचारिक स्तर पर चलती रही जिसकी प्रतिध्वनि बिहार की गाथाधारित लोकनाट्यों में स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती है।

कम खर्चीला एवं पूँजी के दबाव से मुक्त, जब खुले आसमान के नीचे चौकियों से बने स्टेज पर इन लोकनाट्यों की प्रस्तुतियाँ होती है, तो रातभर चलने वाले इनकी प्रस्तुतियों में महिलाएँ, पुरूष, बच्चे, जवान आदि सभी प्रस्तुति देखने के लिए जुट जाते है।

लोकनाट्यों में या विशेषकर गाथाधारित नाट्यों में नायकों का जो संघर्ष प्रदर्शित है उससे एक वैचारिक शक्ति या ऊर्जा इन लोकनाट्यों के कलाकारों को प्राप्त है। वे उनको अपना आदर्श मानते हुए अपने रोजमर्रे के संघर्ष में उन नायकों से प्रेरणा लेकर उनका अनुसरण करते हैं। किसी के भी व्यक्तिगत जीवन में पहला परिवर्त्तन वैचारिक स्तर पर आता है। लोक कलाकार लोकनाट्यों के नायकों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। शोषण एवं अत्याचार के विरूद्ध नायकों का प्रतिरोधात्मक संघर्ष उन्हें आकृष्ट करता है और फिर वे रोजमर्रे के संघर्ष में तथा आस-पास की दुनियाँ में होनेवाले शोषण एवं अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष में, वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ समाज में मुखर रूप से अपनी भूमिका निभाते हैं।

परिवर्त्तनकारी प्रतिरोधात्मक संघर्ष में लोकनाट्यों के कथ्य के अंदर मौजूद परिवर्त्तनकारी भावना लोकनाट्यों के नायकों के संघर्षशील व्यक्तित्व के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहे थे। उन नायकों को देवता के रूप में समुदाय ने स्वीकृत किया, लेकिन उन्हें उच्चवर्ग के देवताओं की तरह नहीं बल्कि एक मानवीय चरित्र के रूप में जिसने परिवर्त्तन और मुक्ति की बात की तथा उसके लिए अनवरत संघर्ष किया था। नायकों को पूजनीय बनाने वक्त उन्होंने उनके लिए मंदिर की जगह सर्वसुलभ 'गहवर' बना लिया। पूजा में प्रयुक्त होनेवाले वैदिक मंत्रों के स्थान पर भौतिक जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए 'भगैत' का विधान किया, वह भी देवभाषा संस्कृत में नहीं, बल्कि समुदाय की लोकभाषा एवं बोली में। अपने देवता, पूजास्थल एवं स्तुति-विधान के लिए एक वैकल्पिक सुगम राह का निर्माण किया। इस प्रकार परिवर्त्तन की आकांक्षा, सोच एवं प्रतिरोधात्मक संघर्ष ने एक मूर्त रूप ले लिया। समाज बदल रहा है, हमारी सोच बदल रही, पिछड़े, दलितों की सोचनीय अवस्था बदल रही है।

संदर्भ

शोधप्रबंध लेखन के दौरान सर्वेक्षणक्रम में प्राप्त अनुभव के आधार पर

भैरव थाट एवं भैरव रागांग के अंतर्गत औड़व एवं षाड़व जाति के रागों का संक्षिप्त विश्लेषण

*मकरन्द सुरेश पोतदार
**प्रो. राजेश केलकर

शोध-सार :

रागों के वर्गीकरण की कई अलग-अलग पद्धतियों का विवरण संगीत विषयक ग्रंथो से प्राप्त होता है। राग तत्व को समझने के लिए रागों का वर्गीकरण एक महत्वपूर्ण आधार है। राग वर्गीकरण की विभिन्न पद्धतियों में थाट पद्धति एवं रागांग पद्धति को विद्वानो ने महत्वपूर्ण माना है। राग को समझने के लिए रागांग को समझना अत्यंत आवश्यक है, यह अधिकतर विद्वानों का मत है।

इस शोध पत्र में थाट पद्धति के भैरव थाट एवं रागांग पद्धति के रागांग भैरव में वर्गीकृत औड़व एवं षाड़व जाति के रागों का विश्लेषण करने का नम्र प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है। इन रागों की स्वर साम्यता, स्वरूप साम्यता और रागांग के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इन औड़व एवं षाड़व जाति के रागो का संबंध भैरव थाट एवं भैरव रागांग से किस प्रकार स्थापित हुआ है, इसे स्पष्ट करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है। इस शोध पत्र में शोधार्थी ने विद्वानों के मतो को आधार मानते हुए रागो का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

इस शोध पत्र में थाट एवं रागांग के संबध में संक्षिप्त रूप में विचारों को प्रस्तुत किया है। शोधार्थी द्वारा औडव जाति के राग गुणक्री, विभास, देवरंजनी, मेघरंजनी, गुणरंजनी और बैरागी इन रागो का विश्लेषण किया है। उसी प्रकार षाड़व जाति के बंगाल भैरव व मंगल भैरव जैसे रागों का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द : *(1) भैरव थाट (2) भैरव रागांग (3) औड़व जाति (4) षाड़व जाति (5) राग।*

(1) प्रस्तावना :

प्राचीन ग्रंथों में थाट को 'मेल' कहा जाता था। थाट एक ऐसा स्वर समूह है जिससे राग उत्पन्न होते हैं। पं. भातखंडे जी ने लक्ष्य संगीत ग्रंथ में दस थाटों की रचना प्रस्तुत की है। पं. भातखंडे जी ने पं. व्यंकटमखी के 72 मेलों में से दस थाटों का चुनाव करते हुए उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के रागों को वर्गीकृत किया है। इस लोकप्रिय पद्धति को 'थाट' पद्धति कहा गया है। पं. रातंजनकर के अनुसार राग जनक स्वर सप्तक को थाट कहते हैं। वादी, संवादी, अनुवादी, वर्ज्य स्वरों के नियमों के आधार पर प्रत्येक थाट से कई राग उत्पन्न हुए हैं। इसलिए इन थाटों को जनक मेल और इन थाटों में रागों के वर्गीकरण को जन्य जनक प्रणाली कहते हैं।[1]

पं. भातखंडेजी द्वारा रचित दस थाटों में ऋषभ और धैवत स्वर कोमल प्रयुक्त होने वाले थाट को भैरव थाट कहा है। इस थाट से रामकली, गुणक्री, जोगिया, वैरागी, शिवमत भैरव विभास जैसे कई राग उत्पन्न हुए हैं।

पं. यशवंत महाले जी के मतानुसार ''पं. भातखंडे जी ने रागों का वर्गीकरण दस थाटों के अंतर्गत करते समय केवल स्वर साम्यता और स्वरूप साम्यता को न देखकर रागांग के तत्त्वों को ध्यान में रखकर रागों का उन थाटों में वर्गीकरण किया है।[2]

(2) भैरव रागांग :

राग में प्रयुक्त होने वाले विशिष्ट स्वर-समूहों के सूक्ष्म अध्ययन से राग का स्वरूप स्पष्ट होता है।

राग के मुख्य अंग को रांगाग कहा गया है। रागांग यानी राग वाचक विशिष्ट स्वर समूह जो उस राग को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान कर सके। रागांग पद्धति का उल्लेख प्राचीन ग्रंथकारों जैसे की नान्यदेव, शारंगदेव, कुंभा आदि ने किया है। पं. नारायण मोरेश्वर खरे जी ने रागांग वर्गीकरण के विषय में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी रागांग पद्धति के अंतर्गत भैरव रागांग का समावेश किया गया है। भैरव रागांग में कोमल धैवत और ऋषभ का आंदोलित प्रयोग माना गया है। इसी के साथ अन्य कुछ स्वर संगतियाँ भी रागांग वाचक है। भैरव रागांग वाचक महत्वपूर्ण स्वर संगतियाँ इस प्रकार है -

- ग म नि ध - नि ध प
- ग म ग रे - ग रे सा
- नि़ नि सा ग म -
- नि ध सां
- नि सां नि ध - प
- ध ध प म प

3. ''भैरव थाट एवं रागांग के अंतर्गत औड़व जाति के राग'' :

साधारणतः जिस राग के आरोह व अवरोह में 5-5 स्वरों का प्रयोग किया जाता है, ऐसे रागों की जाति औड़व-औड़व होती है। शोधार्थी द्वारा भैरव थाट एवं रागांग में वर्गीकृत औड़व-औड़व जाति के रागो का निम्न रूप से विश्लेषण किया है।

3.1 ''राग गुणक्री'' :

इस राग में गंधार और निषाद स्वर वर्जित है इसलिए इस राग की जाति औड़व-औड़व है। ऋषभ व धैवत स्वर कोमल होने के कारण इस राग को भैरव थाट के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। रागांग की दृष्टि से इस राग में रे रे सा, म, रे सा इन स्वर संगतियों द्वारा रागांग भैरव स्पष्ट होता है।

म, रे, सा का मींड प्रयोग करते समय गंधार को स्पर्श किया जाता है। म रे सा यह मींड भैरव रागांग वाचक है। उत्तरांग में ध प इन स्वरों के प्रयोग से भैरव रागांग स्पष्ट होता है।

3.2 राग-विभास (भैरव थाट) :

इस राग में मध्यम व निषाद स्वर वर्जित होने के कारण इस राग की जाति औडव-औडव है। ऋषभ व धैवत स्वर कोमल है इसलिए इस राग को भैरव थाट के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। पं. भातखंडेजी ने धधप, ग प ध प ग रे सा[3] इस प्रकार विभास का मुख्य अंग बनाया है। इस राग में ऋषभ व धैवत स्वर का आंदोलित प्रयोग नहीं है। भैरव रागांग वाचक स्वर संगतियों का प्रयोग इस राग में नहीं है। कोमल धैवत के दीर्घ प्रयोग के बाद पंचम के प्रयोग से विभास अंग स्पष्ट होता है। यह धैवत का प्रयोग आंदोलित नहीं होने के कारण यह भैरव रागांग सूचक नहीं है। परन्तु कोमल ऋषभ व कोमल धैवत के कारण स्वर साम्यता को आधार मानते हुए इस राग को भैरव थाट में वर्गीकृत किया गया है।

3.3 देव रंजनी :

इस राग में गंधार और ऋषभ स्वर वर्जित होने के कारण इस राग की जाति औड़व-औड़व है। इस राग में धैवत स्वर कोमल प्रयुक्त होता है। इस राग को विद्वानों ने भैरव थाट से उत्पन्न माना है। पं. रामाश्रय झा जी ने इस राग के आरोह-अवरोह एवं पकड निम्न रूप से बताए हैं -

आरोह : सा म प ध नि सां
अवरोह : सां नि ध प म ग सा
पकड़ : म प ध प म सा ध सा[4]

इस राग में कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के रूप में किया जाता है। उदाहरण -ध नि ध प।[5] इस राग की रचना भैरव में गंधार व ऋषभ वर्जित करने से हुई है।

रागांग भैरव की दृष्टि से म प ध प,ध म,प यह स्वर संगतियाँ भैरवांग सूचक है। ध प और ध म यह कोमल धैवत का प्रयोग भैरव रागांग से संबंधित माना जा सकता है।

3.4 मेघ रंजनी :

इस राग में पंचम व धैवत स्वर वर्जित है, इस कारण इस राग की जाति औड़व-औड़व है। विद्वानों के मतानुसार यह कोमल ऋषभ युक्त भैरव थाट का

माना गया है। पं. रामाश्रय झा जी के अनुसार इस राग के दो प्रकार है। पहले प्रकार में केवल शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता है तथा दूसरे प्रकार में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। केवल शुद्ध मध्यम के प्रकार को भैरव थाट के अंतर्गत माना गया है।

राग मेघरंजनी के आरोह-अवरोह इस प्रकार हैं–

मेघ रंजनी (शुद्ध मध्यम युक्त प्रकार)

आरोह - सा रे ग म नि सां

अवरोह - सां नि म ग रे सा[6]

इस राग में कोमल धैवत का प्रयोग नहीं है और कोमल ऋषभ का प्रयोग म ग रे सा इसी प्रकार अधिकतर किया जाता है। भैरव रागांग सूचक स्वर संगतियों का स्पष्ट प्रयोग इस राग में नहीं दिखाई देता है।

3.5 राग-गुणरंजनी :

इस राग की रचना स्व. पं. दिनकर कायकिणी जी ने की है। इस राग में केवल चार स्वरों का ही प्रयोग किया गया है। पं. कायकिणी जी के मतानुसार इस राग को किसी विशिष्ट रागांग या थाट के अंतर्गत वर्गीकृत करना संभव नहीं है। इस राग में शुद्ध मध्यम को षड़ज मानने से भैरव थाट के विभास की अनुभूति होती है। इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग अवरोह में किया जाता है। राग गुणरंजनी के आरोह-अवरोह निम्न रूप से है -

आरोह : सा, रे म ध

अवरोह : सां ध, म ध म ध म म, मम रेसा[7]

इस राग में कोमल ऋषभ का म रे इस स्वर संगति में प्रयोग और इसका गायन समय प्रातःकाल होने के कारण इस राग का संबंध भैरव थाट से माना जा सकता है, ऐसा शोधार्थी का मत है।

3.6 बैरागी :

इस राग में गंधार व धैवत स्वर वर्जित है इसलिए इस राग की जाति औड़व-औड़व मानी गई है।

इस राग में ऋषभ व निषाद स्वर कोमल है। यह भैरव थाट का प्रातःकालीन राग है।

इस राग में कोमल ऋषभ का आंदोलित प्रयोग नहीं किया जाता है। भैरव रागांग सूचक म रे इस स्वर संगति का प्रयोग इस राग में किया जाता है। धैवत स्वर वर्जित होने के कारण भैरव रागांग वाचक अन्य स्वर संगतियों का प्रयोग इस राग में संभव नहीं है।

4. भैरव थाट एवं रागांग के अंतर्गत षाड़व जाति के राग :

जिस राग के आरोह व अवरोह में 6-6 स्वरों का प्रयोग किया जाता है ऐसे रागों की जाति षाड़व-षाड़व होती है। शोधार्थी द्वारा भैरव थाट एवं रागांग में वर्गीकृत षाड़व-षाड़व जाति के रागों का निम्न रूप से विश्लेषण किया है।

4.1 बंगाल भैरव :

इस राग में केवल निषाद स्वर वर्जित होने के कारण इस राग की जाति षाड़व-षाड़व है। विद्वानों के मतानुसार इस राग में ऋषभ व धैवत कोमल एवं आंदोलित है। ऋषभ व धैवत स्वर कोमल होने के कारण यह भैरव थाट का राग माना गया है।

भैरव रागांग वाचक स्वर संगतियों का प्रयोग इस राग में स्पष्ट रूप से किया जाता है। पं. भातखंडेजी द्वारा इस राग का उठाव निम्न रूप से बताया गया है -

ध ध प, ग, म प ग म रे, सा[8]

4.2 मंगल भैरव :

इस राग की जाति के संबंध में अलग-अलग मत है। प्रथम मतानुसार इस राग की जाति संपूर्ण है, द्वितीय मतानुसार इसमें रे व ध स्वर कोमल है और गंधार वर्जित होने से यह षाड़व जाति का राग माना गया है। तृतीय मतानुसार शुद्ध धैवत के प्रयोग के साथ निषाद स्वर वर्जित है इसलिए इसे षाड़व जाति का राग माना गया है। इन तीनों मतों में गंधार वर्जित रे व ध कोमल युक्त ''मंगल भैरव'' भैरव थाट का राग माना जा सकता है। इसके आरोह व अवरोह निम्न प्रकार से हैं -

आरोह : सा, रे, म, प, ध, नि सां

अवरोह : सां, नि, ध, प म रे सा[9]

पं. जयसुखलाल शाहजी ने राग मंगल भैरव के निम्न प्रकारो का उल्लेख किया है -

- गंधार वर्ज्य प्रकारः इसे भैरव थाट से उत्पन्न माना गया है। इसमें ऋषभ, धैवत कोमल एवं आंदोलित प्रयुक्त होते हैं।
- संपूर्ण जाति का प्रकारः इस प्रकार में ऋषभ व धैवत कोमल प्रयुक्त होते हैं।

भैरव रागांग की दृष्टि से कोमल रे कोमल ध युक्त प्रकार में धध प और म रे इन स्वर संगतियों का प्रयोग भैरव रागांगवाचक है।

5. निष्कर्ष :

भैरव थाट के अंतर्गत रागों का वर्गीकरण स्वर-साम्यता स्वरूप साम्यता तथा रागांग इन तीनों को आधार मानकर किया गया है। गुणक्री राग स्वर साम्यता, स्वरूप साम्यता तथा रागांग इन तीनों के आधार पर भैरव थाट में वर्गीकृत है। राग विभास, स्वर साम्यता के आधार पर भैरव थाट में वर्गीकृत किया गया है।

मेघरंजनी, देवरंजनी, गुणरंजनी इन रागों को स्वर साम्यता के आधार पर भैरव थाट से उत्पन्न माने जा सकते हैं। राग बैरागी, स्वर साम्यता और म रे संगति के प्रयोग के कारण भैरव थाट के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। बंगाल भैरव राग स्वर साम्यता, स्वरूप साम्यता एवं रागांग इन तीनों के आधार पर भैरव थाट का राग माना गया है। मंगल भैरव राग का गंधार वर्जित प्रकार स्वर साम्यता एवं रागांग के आधार पर भैरव थाट का राग माना जा सकता है।

इस विश्लेषण से यह कहा जा सकता है कि राग को समझने के लिए रागों का वर्गीकरण सहायक है।

संदर्भ सूची

(1) रातंजनकर, नारायण श्रीकृष्ण, 2000 दिसंबर, संगीत परिभाषा विवेचन, पृष्ठ-53.
(2) महाले, यशवंत, 2019-मार्च, रागांग राग विवेचन, पृष्ठ-18.
(3) भातखंडे, नारायण विष्णु , 2016, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, भाग-2, पृष्ठ-270
(4) झा, रामाश्रय, 2006, अभिनव गीतांजली, भाग-4, पृष्ठ-109.
(5) शाह, जयसुखलाल त्रि., 1991, भैरव के प्रकार, पृष्ठ-177.
(6) झा, रामाश्रय, 2006, अभिनव गीतांजली, भाग-4, पृष्ठ-105.
(7) कायकिणी, दिनकर, 2020-फरवरी, राग-रंग, पृष्ठ-225.
(8) भातखंडे, नारायण विष्णु , 2016, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, भाग-2, पृष्ठ-256.
(9) काशीकर, शंकर विष्णु , 2000-नवंबर, श्रुति विलास, पृष्ठ-130.

पुष्टिमार्गी मंदिरों की राग सेवा : हवेली संगीत

*डॉ. रामशंकर
**डॉ. पंकज शर्मा

सार- *पुष्टिमार्गी परंपरा जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा स्थापित है, जिसमें अपने आराध्य भगवान् कृष्ण के बाल स्वरुप की सेवा वात्सल्य भाव से की जाती है। इन मंदिरों में ठाकुर जी की सेवा हेतु जो भी प्रावधान हैं, इन सभी विधियों के द्वारा ठाकुर जी की सेवा ही संप्रदाय का एकमात्र कर्त्तव्यबद्ध उद्देश्य है। इन्हीं सेवा विधियों में एक प्रमुख सेवा विधि 'राग-सेवा' है, जो कि ठाकुर जी को अतिप्रिय भी है, तथा इन पुष्टिमार्गी मंदिरों की सेवा विधि का एक मुख्य भाग भी है।*

पुष्टिमार्गी मंदिरों में प्रयुक्त होने वाली राग सेवा को ही हवेली संगीत कहा जाता है। इसके अतिरिक्त हवेली संगीत को पुष्टिमार्गी संगीत, पुष्टिमार्गी मंदिरों का संगीत, पुष्टिमार्गी कीर्तन आदि अन्य नामों से भी जाना जाता है। परन्तु वर्तमान में यह हवेली संगीत के नाम से सर्वाधिक प्रचलित है। पुष्टिमार्गीय मंदिरों के संगीत का हवेली संगीत नाम से प्रचार-प्रसार आकाशवाणी की देन मानी जाती है।

हवेली संगीत एवं इसके स्वरुप आदि पर चर्चा करने से पूर्व पुष्टिमार्गीय मंदिर तथा इसका हवेली शब्द से सम्बन्ध आदि विषय पर संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक है। 15वीं शताब्दी में भारत भ्रमण के पश्चात् जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य जी को भक्ति की नवीन विचार धारा की प्रेरणा ठाकुर जी (भगवान् कृष्ण) के विशेष अनुकम्पा से प्राप्त हुई। "वल्लभाचार्य जी ने इस नवीन विचार धारा को 'पुष्टिमार्ग' कहा तथा (1550 वि.सं.) श्रावण शुक्ल एकादशी के दिन अपने प्रमुख शिष्य श्री दामोदरदास हरसानी को सर्वप्रथम दीक्षित कर इस सम्प्रदाय की स्थापना की।"

सूचक शब्द - *पुष्टिमार्ग, हवेली, सेवा, अष्टयाम, अष्टसखा, विष्णुपदी*

पुष्टिमार्ग से अभिप्राय

व्यवहारिक भाषा में पुष्टि शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ प्राप्त होते हैं, जैसे- पोषण, वृद्धि, वैभव, पुष्ट करने की क्रिया या भाव तथा किसी मत का समर्थन आदि परन्तु इस "संप्रदाय में पुष्टि शब्द को मुख्यतः पोषण अर्थ के रूप में माना जाता है। यह मत श्रीमद्भगवत गीता के सूत्र 'पोषणं तद्नुग्रह' से लिया गया है जिसका अर्थ है- भगवान् का अनुग्रह ही पोषण अथवा पुष्टि है।"

सम्प्रदाय में पुष्टि शब्द भाव का सम्बन्ध आध्यात्मिक दर्शन से भी है। कोई भी सेवा, विशेषतौर पर राग सेवा जो कि सिर्फ ठाकुर जी के समक्ष उनकी सेवा हेतु ही करना है और ऐसा करने से आत्मा की पुष्टि होती है। अतः यह मार्ग आत्मा की पुष्टि का मार्ग है।

इस परम्परा में अपने आराध्य की पूजा नहीं बल्कि, उनकी सेवा की जाती है। इसी संकल्प से बिना किसी स्वार्थ या शर्त के ठाकुर जी के बाल स्वरुप की वात्सल्य भाव से सेवा करना ही पुष्टिमार्ग का मूल उद्देश्य है तथा पुष्टिमार्ग की परिकल्पना में भी आत्मा से परमात्मा के एकाकार का यही मार्ग उद्भूत होता है।

*डॉ. रामशंकर सहा.आचार्य : गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
**डॉ. पंकज शर्मा : पूर्व शोधछात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।

पुष्टिमार्गी मंदिरों का हवेली शब्द से सम्बन्ध

पुष्टिमार्गी मंदिरों की स्थापना एवं इसका केंद्र ब्रज क्षेत्र ही रहा। यहाँ के सेवा स्थलों को मंदिर शब्द के साथ साथ हवेली संज्ञा से सर्वाधिक तौर पर सुना जाता है, जैसे श्रीनाथ जी की हवेली, श्री द्वारिकाधीश जी की हवेली आदि। पुष्टिमार्गीय मंदिरों की बनावट अन्य मंदिरों की अपेक्षा साधारण रूप में होती है। मंदिर की बनावट किसी के घर अथवा हवेलीनुमा होती है जो अन्य मंदिरों के बनावट से भिन्न दिखलाई पड़ती है। लोक व्यहार में प्रचलित एक अन्य मत के अनुसार गुजरात में मंदिरों को हवेली कहा जाना भी इस विषय के सन्दर्भ को जोड़ता है।

एक अन्य विशेष मत यह भी है कि मुग़ल शासक औरंगजेब के आक्रमण से बचने के लिए इन मंदिरों को अन्यत्र स्थापित किया गया, साथ ही मंदिरों की स्थापना ऐसे जगह पर की गई जो बाहर से देखने पर मंदिर की तरह न दिखाई और इनका नाम भी मंदिर के स्थान पर हवेली शब्द से जोड़ा गया।

पुष्टिमार्गी संगीत अथवा हवेली संगीत

इन मंदिरों में अपने ईष्ट स्वरुप की ठाकुर जी की सेवा के दो क्रम निर्धारित है। नित्य सेवा तथा वर्षोत्सव सेवा। ठाकुर जी के जागरण से शयन तक उनके नित्यचर्या के अष्ट प्रहर निर्धारित हैं, जिनके अंतर्गत भिन्न-भिन्न परन्तु सुनिश्चित तरीके से ठाकुर जी की सेवा की जाती है, जिसे अष्टयाम सेवा भी कहते हैं। इस अष्टयाम सेवा के तीन भाग निर्धारित हैं-

1 राग सेवा, 2 भोग सेवा, 3 श्रृंगार सेवा

इस अष्टयाम सेवा के प्रारूप को निम्नानुसार तालिका के रूप में समझा जा सकता है -

क्र.सं.	समय	सेवा विधि	सेवा कार्य तथा राग सेवा के अंतर्गत गाये जाने वाले पद
1	प्रातः 6 बजे (लगभग)	जागरण अथवा मंगला दर्शन	जागरण
2	क्रमशः	श्रृंगार	स्नान एवं श्रृंगार
3	श्रृंगार के लगभग एक घंटे पश्चात्	ग्वाल	ग्वाल बाल के साथ गौ (गाय) चराना
4	क्रमशः	राजभोग	गौ (गाय) चराने के समय भूख लगना
5	राजभोग के पश्चात् विश्रांति के बाद	उत्थापन	पुनः गौ (गाय) चराने में लग जाना
6	क्रमशः	भोग	पुनः भूख लग जाना
7	संध्या काल	संध्या आरती	घर आने पर यशोदा द्वारा आरती
8	सायंकाल लगभग 7 बजे	शयन	शयन

राग सेवा के अंतर्गत ठाकुर जी के जागरण से शयन तक अष्ट प्रहर में ठाकुर जी की लीलाओं का गायन किया जाता है। यह पद गायन उस समय की निश्चित किसी न किसी राग तथा ताल में निबद्ध रहता है जैसे- जागरण (मंगला दर्शन) के समय राग भैरव, रामकली, देवगंधार आदि रागों का प्रयोग देखने को मिलता है। इन पदों में अष्टयाम की लीलाओं का वर्णन होता है जिसे सम्प्रदाय में कीर्तन की संज्ञा भी दी गई है। इस कीर्तन गान के साथ पखावज, झांझ, वीणा आदि वाद्यों का प्रयोग भी किया जाता है, परन्तु जागरण एवं शयन के समय गायन केवल वीणा के साथ मंद्र ध्वनि में होता है। संप्रदाय में ऐसा मत है कि ठाकुर जी के बाल स्वरुप के जागरण अथवा शयन के समय पखावज, झांझ जैसे तेज ध्वनि वाले वाद्यों के प्रयोग से उनको बाधा पहुँच सकती है। बाल स्वरुप ठाकुर जी की सेवा के प्रति यह भाव वात्सल्य भाव का सुन्दर उदाहरण है।

नित्य राग सेवा के अतिरिक्त वर्षोत्सव सेवा इस विधि का मुख्य भाग है जो कि वर्षपर्यंत होने वाले उत्सवों, ऋतु एवं त्यौहार आदि के निमित्त प्रायोजित होते हैं। विभिन्न उत्सवों तथा त्यौहारों आदि में श्रृंगार एवं भोग की समृद्ध एवं वैभवशाली झांकियां सजाई जाती है। रागों के अनेकानेक प्रकार का श्रवण सुख

भी यहाँ की वर्षोत्सव सेवा में प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में ऋतु सम्बन्धी रागों का विशेष प्रयोग, प्रयोग में ऋतु रागों की नियमितता तथा इन रागों के प्रयोग हेतु प्रतिबद्धता इस मंदिरों में प्राप्त होती हैं। जैसे बसंत ऋतु में राग बसंत के प्रकार, वर्षा ऋतु में मल्हार के प्रकार आदि। ऋतु रागों से सम्बंधित एक विशेष बात यह कि हवेली संगीत में जाड़े की रागों का प्रयोग तो मिलता ही है साथ ही बसंत, मल्हार आदि रागों के गायन में पदों के साहित्य भी सम्बंधित ऋतुओं के अनुरूप ही होते हैं।

हवेली संगीत में प्रचलित अनवट रागों के प्रयोग के सन्दर्भ में जयपुर घराने की सुप्रसिद्ध गायिका विदुषी श्रुति साडोलिकर जी के अनुसार—"हवेली संगीत में अनेक अप्रचलित रागों का प्रयोग किया जाता है जैसे- बसंत की बहार, हिंडोल की बहार आदि नाम से उल्लेखित रागों में हिंडोल और बसंत जैसे रागों में बहार ऋतु का वर्णन मिलता है, इसलिए भी उन्हें बसंत की बहार आदि नाम से संज्ञा दी गई है।"

हवेली संगीत में रागों के प्रयोग के रूप में एक विशेष बात प्रकट होती है। "मौसम के अनुरूप यहाँ गरम तथा ठंडी रागों का प्रयोग भी किया जाता है। ग्रीष्मकाल और शीतकाल में प्रयुक्त होने वाले अलग अलग रागों का प्रावधान इसी परंपरा में देखने-सुनने को मिलता है।"

राग का गायन समय ठाकुर जी के जागरण से ही प्रारम्भ होता है तथा ठाकुर जी के शयन सेवा के पश्चात् गायन बंद कर दिया जाता है। शयन से जागरण तक की अवधि (रात्री) में किसी भी तरह का गायन, वादन, पूर्णतः निषेध माना गया है तथा मंदिर में प्रयुक्त होने वाली रचनाओं (पद-साहित्य) आदि ठाकुर जी के समक्ष ही गाया जाता है। ठाकुर के अतिरिक्त तथा मंदिर प्रांगन से बाहर इन रचनाओं का गाना बिलकुल वर्जित बताया गया है।

मंदिरों में प्रयुक्त होने वाली राग सेवा का समग्र स्वरुप, राग व्यवस्था, रागों के साथ ताल का प्रयोग, वाद्यों का प्रयोग तथा इन सब की सेवा विधि की रूप-रेखा ही हवेली संगीत है।

हवेली संगीत में अष्टछाप

पुष्टिमार्ग की स्थापना के पश्चात् ठाकुर जी की सेवा हेतु आठ प्रमुख कीर्तनियों को इनकी सेवा हेतु नियुक्त किया गया। ये सभी कवि कुशल वाग्गेयकार के साथ हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता भी थे। ऐसा माना जाता है कि ये साख्य भाव में ठाकुर जी के साथ सम्मिलित रहते थे तथा ठाकुर जी की कृपा से उनकी लीलाओं का दर्शन इन्हें प्राप्त हुआ, जिनका जीवंत वर्णन इन्होंने अपने पदों में किया तथा समयानुसार में रागों में ठाकुर जी के समक्ष प्रस्तुत करते थे। इन्हीं आठों कवि कीर्तनियों को संप्रदाय में अष्टसखा के रूप में भी जाना जाता है तथा इनके नाम से रचित रचनाएँ 'छाप' कहलाती हैं, जिन्हें हम अष्टछाप के रूप में भी जानते हैं।

"पुष्टिमार्ग के अष्टसखाओं की समयावधि तालिका इनके साख्यभाव के साथ प्रस्तुत है" -

क्र.सं.	नाम	सखा रूप	सखी रूप	पुष्टिमार्ग में प्रवेश
1	श्री कुम्भन दास	अर्जुन	विशाखा	संवत् वि. 1556
2	श्री सूरदास	कृष्ण	चम्पकलता	संवत् वि. 1567
3	श्री कृष्णदास	ऋषभ	ललिता	संवत् वि. 1568
4	श्री परमानन्द दास	तोक	चंद्रभागा	संवत् वि. 1577
5	श्री गोविन्द स्वामी	श्रीदामा	भामा	संवत् वि. 1590
6	श्री छीतस्वामी	सुबल	पद्मा	संवत् वि. 1590
7	श्री चतुर्भुज दास	विशाल	विमला	संवत् वि. 1597
8	श्री नंददास	भोज	चन्द्ररेखा	संवत् वि. 1607

हवेली संगीत में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख रागें

हवेली संगीत में रागों की वृहद् परंपरा देखने को मिलती है। यह परंपरा मध्यकाल से ही रागों तथा उसके स्वरुप को संजोये हुए है। रागों के बहुतायत प्रकार, ऋतु रागों के अनेकानेक प्रकारों की बाहुल्यता तथा बहुत सी अप्रचलित रागों के प्रयोग इस परंपरा में देखने-सुनने को मिलते हैं।

हवेली संगीत में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख रागों का नामोल्लेख यहाँ प्रस्तुत किया गया है, जिसे सबंधित ग्रन्थ/पुस्तकों के माध्यम से संकलित करने का प्रयास किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं–

राग भैरव, रामकली, देवगंधार, गुर्जरी, खट, प्रभात भैरव, तोड़ी, सावेरी, विभास, आसावरी, ललित, ललित पंचम, ईमन, ईमन कल्याण, नट, सुहा, सुघराई, पूर्वी, सोरठ, गौरी एवं प्रकार, सारंग एवं प्रकार, बिलावल एवं प्रकार, मल्हार के प्रकार, कान्हड़ा के प्रकार, भैरव के प्रकार, बसंत के प्रकार, बहार के प्रकार, परज, पंचम, सोहिनी केदार, जोगिया आसावरी, कर्नाट, जंगला, मालव, मारू, श्री, रायसा तथा धनाश्री आदि।

(उपर्युक्त रागों का संकलन पुष्टि संगीत प्रकाश, पुष्टिमार्गी मंदिरों का संगीत हवेली संगीत तथा अष्टछापीय भक्ति संगीत आदि ग्रंथों/पुस्तकों द्वारा प्राप्त हुआ है।)

हवेली संगीत में प्रयुक्त प्रमुख वाद्य एवं ताल

हवेली संगीत में वाद्यों का प्रयोग एवं इनका महत्व सेवा क्रम के विधि विधान के अनुरूप ही सुनिश्चित है। क्यूंकि यह भी राग सेवा का ही एक अंग है अतः नित्य सेवा तथा वर्षोत्सव सेवा के अंतर्गत भिन्न-भिन्न आयोजनों में इनकी उपयोगिता महत्वपूर्ण स्थान रखती है। परंपरा में एक प्राचीन रचना को देखने से पुष्टिमार्गी संगीत में वाद्यों का महत्व दृष्टिगोचर होता है।

"बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुण्डली जंत्र
अधर सुधा जातु बांसुरी हरि करत मोहिनी मन्त्र"

यहाँ प्रयोग में लिए जाने वाले वाद्यों का भारतीय शास्त्रीय संगीत के ही समतुल्य चार भागों में विभाजन मिलता है। नित्य सेवा में तो कुछ चुनिन्दा वाद्य जैसे पखावज, वीणा, झांझ आदि ही प्रयोग में देखे जाते हैं, परन्तु किसी उत्सव विशेष में वाद्यों की बहुलता उत्सव के प्रयोजन की भव्यता को बढ़ता है।

हवेली संगीत में प्रयुक्त होने कुछ प्रमुख वाद्यों की तालिका -

तत् वाद्य	सुषिर वाद्य	घन वाद्य	अवनद्ध वाद्य
वीणा, तानपुरा, स्वर-मंडल, पिनाक, जंत्र, सारंगी, रबाब, अमृत-कुण्डली,	बांसुरी, शहनाई, माहवारी, मुखचंग, तुरही, सिंगी, शंख	झांझ, करताल, झालरी, घंटा, किन्नरी, मंझिरा, जल तरंग	पखावज/मृदंग, मदिलारा, मूरज, दुन्दुभी, भेरी, ढोलक, चंग, डफ, उपंग

हवेली संगीत में–प्रयुक्त होने वाले तालों का वर्णन ग्रंथों में इस प्रकार प्राप्त होता है -

"ध्रुवौ मठो रुपकस्य क्षम्पा त्रिवट एव च
अड़ता लोक तालाश्च सप्त ताल प्रकीर्तिता।"

उपर्युक्त वर्णन को देखने से यह तालों के प्राचीन नाम तथा स्वरुप को प्रदर्शित करता है जो कि हवेली संगीत का भारतीय संगीत की प्राचीन व्यवस्था से सीधा सम्बन्ध दर्शाता है, परन्तु वर्तमान में प्रयोग होने वाले इन तालों का नाम आडाचार ताल, सूल ताल, रूपक, झपताल, तीनताल, चार्ताल, एकताल आदि के रूप में प्राप्त होता है।

उपर्युक्त ताल वर्णन का तालों के वर्तमान नामोल्लेख से सीधे सम्बन्ध को इस तरह समझा जा सकता है।

क्र. सं.	ताल का प्राचीन नाम	ताल का वर्तमान स्वरुप
1	ध्रुव	आडाचार ताल
2	मठ	सूल ताल
3	रूपक	रूपक
4	झम्पा	झप ताल
5	त्रिवट	तीनताल
6	अड़ताल	चार ताल
7	एकताल	एकताल

हवेली संगीत की रचनाएँ

हवेली संगीत की रचनाओं का आधार विशेषतया भक्ति प्रधान प्राप्त होता है। इन रचनाओं में अपने आराध्य के सेवा समय अर्थात् अष्टयाम के अनुरूप साहित्य प्राप्त होता है। इन रचनाओं में सेवा समय

की भोगोलिक तथा प्राकृतिक चित्रांकन साहित्य में अन्तर्निहित है। उदाहरण के लिए राग देशकार में जागरण का पद है -

चिरैया चुह चुंहानी सुन चकई की वाणी,
कहत यशोदा रानी जागो मेरे लाला
रवि की किरण जानी कुमुदनी
सकुचानी कमलं विकसानी दधि मथे बाला
सुबल श्रीदामा तोक उज्जवल वासन
पहने द्वारे ठाड़े टेरत हैं, बाल गोपाला
"नंददास" बलिहारी, उठौ क्यों न गिरधारी,
सब कोऊ देखन चाहे लोचन विशाला

विष्णुपदी रचनाएँ हवेली संगीत के पदों की प्रमुख विशेषता है। चौरासी वैष्णव की वार्ता में कुम्भनदास जी के विषय में एक चर्चा भी मिलती है कि कुम्भनदास जी ने अधिकतर विष्णुपद ही रचे थे, 'परन्तु उनके द्वारा एक स्वामिनी का पद भी चौरासी वैष्णव की वार्ता में प्राप्त होता है जो कि राग रामकली में निबद्ध है।'

(प्रस्तुत है कुम्भनदास जी द्वारा रचित स्वामिनी पद का उदाहरण)
कुंवरी राधिका के तुव सकल सौभाग्य की, वा वादन पर कोटि सत चन्द्र वारों
खंजन कुरंग सत कोटि जवान ऊपर, सिंह सत कोटि न्योंछावरी उतारों

इन रचनाओं के अतिरिक्त हवेली संगीत में रागमाला, पद रचनाओं में नृत्य सम्बन्धी वाद्यों तथा पाटाक्षर, आदि से सम्बंधित पद साहित्य भी प्राप्त होते हैं। 'यहाँ क्रमशः प्रथम रचना रागमाला का अंश तथा द्वितीय रचना नृत्य सम्बन्धी पद का एक एक उदाहरण प्रस्तुत है।'

प्रथम रचना

ऊँच अडाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन
करत निहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख दीन

द्वितीय रचना

बाजत मृदंग उघटत सुघंग
तक झां कुक झां द्रिमि किट ता द्रिमि किट धिलांग
ट्रक द्रिगि दां दां द्रिगि दां दां दमक

निष्कर्षतः हवेली संगीत की पद रचनाएँ तथा इन रचनाओं के विविध प्रकार के साहित्य मंदिरों के संगीत के समृद्ध तथा वैभवशाली परंपरा को प्रदर्शित करते हैं। इसमें प्रयुक्त होने वाले वाद्यों का प्रयोग, यहाँ की राग स्वरुप आदि की व्यवस्था, रागों का चयन तथा राग सेवा के नियम पालना हेतु कटिबद्धता, मंदिर परंपरा के मध्यकाल से चली आ रही सुदृढ़ एवं संपन्न व्यवस्था को दर्शाता है। मंदिरों के संगीत की सुव्यवस्था को देखने से यह ज्ञात होता है कि यह उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के मध्यकालीन स्वरुप की एक धारा है। लगभग 500 वर्षों पुरानी यह परंपरा अपनी विरासत को संजोये हुए है। हवेली संगीत का एक एक पक्ष अपने आप में वृहद् स्वरुप लिए हुए है। एक शोध पत्र के माध्यम से हवेली संगीत के समग्र स्वरुप को समझ पाना असंभव है, फिर भी पुष्टिमार्गीय संगीत अथवा हवेली संगीत के स्वरुप को समझाने का इस शोध-पत्र के माध्यम से लघु प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा प्रो. सत्यभान,पुष्टिमार्गी मंदिरों की संगीत परंपरा हवेली संगीत, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण - 2011
2. शर्मा अंजू, ब्रज की संस्कृति में संगीत, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय से प्राप्त
3. शर्मा मदनलाल, पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली, प्रथम पुष्प, प्रकाशक श्री मदन लाल शर्मा, उदयपुर, द्वितीय संस्करण - 2014
4. शर्मा डॉ. नीरा, अष्टछाप संगीत, नवजीवन पब्लिकेशन, टोंक राजस्थान, प्रथम संस्करण - 2004
5. त्रिपाठी यदुनंदन, श्री नारायण जी शास्त्री, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, विद्या विभाग, मंदिर मंडल, नाथद्वारा राजस्थान
6. नाईक चम्पकलाल छाब्बील दास, अष्टछापीय भक्ति संगीत, भाग एक और तीन, अष्टछाप संगीत केंद्र, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण - 1983
7. भट्ट भगवती प्रसाद प्रेम शंकर, पुष्टि संगीत प्रकाश, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, 2002
8. https://youtu.be/hP8PPC2_B3g विदुषी श्रुति साडोलिकर जी के वक्तव्य के अनुसार

उत्तर हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत तथा अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली

प्रो. डॉ. अंकुश गिरी

सारांश

यह विषय उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा अप्रतिरूप चित्रशैली पर आधारित है। इसलिए प्रस्तुत विषय संगीत तथा चित्रकला के अंतर्गत सहसंबंध से संबंधित है। इन दो कलाओं का संबंध कुछ महत्वपूर्ण तत्वों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। वास्तुनिष्ठ चित्रशैली में एक आकृतिबद्ध विषय चित्रकार के सामने रहता है। ठीक वैसे ही जैसे सुगम संगीत में काव्य रचना तथा उसके अर्थ की एक आकृतिबद्ध रचना की प्रतिकृति गायक अपने गायन में करता है। यहाँ सब नियोजित तथा मूर्त माध्यम कार्य करता है। आध्यात्मिक भाषा में इसे सगुणात्मक प्रतिकृति कहते है। वास्तुनिष्ठ सगुणात्मक राग के प्रतिकृति के आधार पर रागमाला चित्रशैली का निर्माण हुआ। इस चित्रशैली में दैवी तथा मानवीय आकृतिओं द्वारा राग का अभिव्यंजन वास्तुनिष्ठ आधार पर किया गया है। उपरोक्त मत अनुरूप राग की रचना तथा वर्णन पर इसकी निर्मिती हुई है। परंतु राग के अमूर्त, निर्गुण स्वरूप का विचार इस चित्रशैली में नहीं हुआ है। रागमाला चित्रशैली में राग स्वभाव बंदिश में वर्णित वातावरण का चित्रण बहुत अच्छे तरह से प्रस्तुत किया है। जिस तरह से हमने शब्दों का आधार लिया है पर राग के मर्म तथा भावपक्ष का मानस दर्शन वह नहीं कर सके।

उद्देश्य :

1. उत्तर हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत तथा अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली के सूक्ष्म तत्वों पर विचार प्रस्तुत करना।
2. इस नवीनतम विधा तथा कलाकृति के परिक्षेत्र में संगीत तथा चित्रकला के सह सम्बन्धों पर विचार करना।
3. अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली के प्रकार व्यक्त करना।

संशोधन विस्तार (Study Area)

प्रस्तुत विषय उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा अप्रतिरूप चित्रशैली से अंतर्विषयक संबंधित है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की राग संहिता तथा चित्रकला में अप्रतिरूप चित्रशैली के सौंदर्यात्मक तत्वों का आधार लेकर अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली का निर्माण हुआ है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में 'राग' काफी महत्वपूर्ण प्रधान तत्व है जिसके आधार पर ही इस चित्रशैली का अध्ययन प्रस्तुत शोध में किया है।

संशोधन पद्धति (Research Methodology)

इस विषय के संशोधन कार्य हेतु भारतीय शास्त्रीय संगीत के ज्येष्ठ श्रेष्ठ संगीतज्ञ, विद्वान, चिंतक, गायक, कलाकार, गायिका तथा वादक, प्राध्यापक, कला शिक्षक और चित्रकला के क्षेत्र में विषय संबंधित भारतीय चित्रकार, विद्वानों से प्रत्यक्ष मुलाकात, चर्चा, विचारमंथन, दूरध्वनि से वार्तालाप तथा प्रश्नावली और इंटरनेट आदि माध्यमों द्वारा जानकारी के संकलन का प्रयास किया है। प्रस्तुत संशोधन का केंद्रस्थान या केंद्रबिंदु उत्तर भारतीय संगीत में राग तथा अप्रतिरूप चित्रशैली होने के कारण प्रत्यक्षरूप से भारत में

संगीत विभाग, महिला महाविद्यालय, अमरावती, Email:ankush.giri14@gmail.com

महाराष्ट्र, भोपाल, कलकत्ता, दिल्ली तथा अप्रत्यक्ष्यरूप से इंटरनेट के माध्यमों से इंग्लैंड, स्पेन, फ्रान्स, अमेरिका, रशिया इत्यादि परराष्ट्र भी मेरे कार्यस्थल रहे है।

मूल शब्द : अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली, ध्यान क्रिया, राग सदृश्यमूलक अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली, राग सदृश्यमूलक ध्यान अप्रतिरुप चित्रशैली

प्राक्कथन

सभी कलाओं का अपना सौंदर्य विचार तथा अस्तित्व है। इन कलाओं का विचार अमूर्त है तथा अस्तित्व मूर्त। भारतीय प्रमुख ललित कलाओं में सौंदर्य विचार हमेशा आध्यात्म तथा धार्मिक तत्वों से प्रेरित रहा है। मानव जीवन का पंच तत्वों से विलीनिकरण, मोक्ष जैसे आदि विचार भारतीय आध्यात्म में स्थित है। इस अवस्था के लिए संगीत के अलावा अन्य दूसरा सशक्त माध्यम नहीं है। संगीत कला में मानवीय संवेदना और रचनाशीलता का शास्त्र स्वरूप अभिजात राग संगीत द्वारा आत्मानंद के लिए सदैव सर्वभौम रहा है। राग अमूर्त है तथा रागानुभूति रसिक श्रोता के मानसिक अवस्था से कलात्मक अद्वैतिकरण द्वारा उत्पन्न भाव पर निर्भर है। संगीत कला में विशेष ध्वनिओं द्वारा राग के माध्यम से विविध भाव उत्पन्न किए जाते है, जो अमूर्त है। यदि इस माध्यम को रंगों द्वारा व्यक्त करे तो रागों के विविध अप्रतिरूप भाव कलाकृतिओं द्वारा निर्माण होते है। राग अमूर्त तथा निर्गुण तत्वों की चेतना है। इस लिए राग के निर्गुण तथा अमूर्त विचार को रंगो के द्वारा व्यक्त करना ही इस संशोधन कार्य का निर्मिती बीज रहा है।

मानव के विलक्षण सृजनशील कला तत्वों का नया विचार अद्‌भुत कलाकृति तथा नवीनतम कला निर्मिती के लिए अत्यंत आवश्यक है। मानव का सौंदर्य प्रति आकर्षण तथा उसके प्रभाव का मानसिक सतह पर कलात्मक तत्वों से निरूपण द्वारा, नवीनतम कल्पना स्त्रोत अप्रतिरूप कलाकृतिओं के माध्यम से मानव जीवन में बहने लगा। कला बिना मानव अपने अस्तित्व के उच्चत्तम आनंद की शायद ही कल्पना कर सकता है। संपूर्ण विश्व एक उच्चत्तम कलाकृति है जो सौंदर्य, चेतना से परिपूर्ण है। आचार्य बृहस्पति सौंदर्य की इस कल्पना तथा अनुभूति को अनंत मानते है। सौंदर्य और उसकी अनुभूतिक से प्राप्त होनेवाला आनंद भी अनंत है, अतः सौंदर्य और उसकी अनुभूति से प्राप्त होनेवाला आनंद के रूपों और प्रकारों पर विचार करनेवाला शास्त्र भी अनंतता की ओर इंगित करता और हमें चिंतन करने में सामर्थ्य बनाता है। शास्त्र हमारी चिंतन शक्ति को परिपक्व बनाते है और हमें स्वतंत्र अनुशीलन के लिए प्रेरित करते है।

राग का भाव पक्ष तथा अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली

उत्तर हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत केवल राग के भावपक्ष तथा स्वराभिव्यक्ति द्वारा ही रस निर्मिती करते है। रागों की नादमय स्वराकृतिओं की रसाभिव्यक्ति का रसग्रहण केवल आनंद है। यह आनंद उसी समय प्राप्त होता है जब कलाकार उसको प्रस्तुत करता है। इन सभी क्रियाओं का अगर एकत्रित रूप में देखे तो यह निर्देशित होता है कि राग की मूल कल्पना अमूर्त है जिसे रागशास्त्र के तर्क द्वारा एक नियोजित ढंग में स्वरों के माध्यम से अभिव्यक्त की जाती है। यह अभिव्यक्ति भी अमूर्त है क्योंकि राग स्वरूप के तर्क अलावा अन्य विचार गायक नहीं करता वह एक सौंदर्यानुभूति के प्रवाह में राग में लीन हो जाता है। राग के सौंदर्यपूर्ण स्वराकृतियों की श्रृंखला ताल के हर मात्रा अनुरूप व्यक्त होती है जहाँ पूर्व स्वरकृतिओंका का प्रभाव और उस समय गायक की भावास्थिति पर अगली मात्रा का स्वर विस्तार होता है। जो नियोजित नहीं होता वह अमूर्त होकर केवल तर्क द्वारा व्यक्त होता है।

इसी विचारधारा तथा क्रिया से राग सदियों से अभिव्यक्त हुआ है। राग के इन सभी तत्वों का तथा क्रियाओं का विचार यदि चित्रकला में करे तो अप्रतिरूप चित्रशैली तथा उसकी मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा में साम्य प्राप्त होता है। अप्रतिरूप ए अमूर्त चित्रशैली में कोई वास्तुनिष्ठ विषय नहीं रहता वह केवल कल्पना की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्त रहती है। राग में

स्वर तथा अप्रतिरूप चित्रशैली में रंग प्रस्तुति के समान सतह पर तार्किक दृष्टि से कार्य करते है।

उत्तर हिंदुस्थानी शास्त्रीय संगीत तथा अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली का विलीनीकरण तत्व

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के राग भाव तत्व का अप्रतिरूप चित्रशैली से विलीनीकरण अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली का निर्माण करता है जो राग के अमूर्त ध्यान स्वरूप, प्रत्यक्ष राग प्रस्तुतिकरण तथा राग प्रस्तुतिकरण द्वारा प्राप्त ध्यान पर आधारित है। अप्रतिरुप संगीत चित्रशैली का मर्म तथा आत्मा यह राग का भाव पक्ष हैं। राग के स्थायी भाव का चित्रकार के मानसिक सृजनशीलता से अद्वैतिकरण होकर शून्यवत स्थिति में यदि संगीत और चित्रकला के मूल अवकाश की निर्गुणात्मक अमूर्त अचेतनावस्था (Trance) से कल्पित विषयों को (Visual Content) मूर्त माध्यमों की सहायता से जो चित्रकला तथा संगीत में एक हो, जिसके द्वारा ही राग के मूल स्थायी भाव का यथा चित्रण किया जा सकता है। इसके लिये जरूरी हैं कि वह चित्रकार राग की भाव समाधि में लीन होकर राग की श्राव्य प्रबलता (Audio Intensity) और भावना का स्थायी मानस दर्शन (Constant Visualization) अपने अप्रतिरुप संगीत चित्र में कर सके। इस स्थिति का संक्षिप्त में वर्णन संत ज्ञानेश्वर ने 'सगुन निगुर्ण दोन्ही विलक्षण' ऐसा किया है। जिस कलाकार के सगुण तथा निर्गुण भाव का ज्ञान हो वही इसे साकार सकता है। सामान्य चित्रकार केवल भौतिक तथ्यों तथा मूर्त माध्यमों से इस तथ्य को नहीं समझ सकता वह केवल वास्तव मूर्त रूप की नकल होंगी। हर कला में एक अवकाश होता है यह अन्तराल परिस्थिति (Time Space) से संबंधित है। चित्र का अवकाश अनुमानित सतह (Flat Surface) से संबंधित है। अन्तराल परिस्थिति की कल्पना मूलत : अप्रतिरुप (Abstract Factor) है। चित्र की अनुमानित सतह दर्शित कर सकते हैं। संगीत एक यथार्थ तत्व (Real Factor) है और एक अप्रतिरुप तत्व (Abstract Factor) भी है। इसका मिलाप यानि संगीत कल्पना अप्रतिरुप (Abstract) है जो राग स्वरुप के यथार्थ तत्व (Real factor) से सम्मिलित होकर अपना रूप साकारती है।

भारतीय संगीत तथा चित्रकला के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'कल्पसूत्र' माना गया है जिसमें राग ध्यान द्वारा रागों का चित्रात्मक निरूपण का महत्व विशद् किया है। इसी महत्वपूर्ण तथ्य को आधार बनाकर राग के अमूर्त स्वरूप का चित्रात्मक विचार करने पर अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली के निर्मिती बीज का अंकुरन हुआ। राग केवल स्वरों की आरोहावरोहात्मक क्रिया न होकर वह एक अद्भुत सौंदर्यात्मक भाव पक्ष की चेतना है जो सदैव आत्मानुभूति की उर्जा निर्माण करती है। इस तथ्य को समझना सामान्य स्तर पर कदापि संभव नहीं। शायद इसलिए सामान्य स्तर पर प्रतीकात्मक रूप में रागमाला चित्रों द्वारा राग के स्वरूपों पर प्रतीकात्मक रूप में राग के स्वरूप, शास्त्र तथा वर्णित तथ्यों के आधार पर किया गया। किंतु राग के विशाल, अतिव्यापक, विस्तारित, अमूर्त स्वरूप को यदि चित्रात्मक स्वरूप में जानना है तो अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली अत्यंत प्रभावी माध्यम है।

अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली के प्रकार :

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के आधार पर अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली के तीन प्रकार ज्ञात हुए है जिसमें पहला राग के ध्यान क्रिया पर आधारित है जो केवल चित्रकार साकारता है जिसे राग के आध्यात्मिक तथा शास्त्रीय तत्वों का सखोल ज्ञान होना आवश्यक है। दूसरा राग सदृश्यमूलक अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली यह चित्रशैली गायक के राग अभिव्यक्ति पर चित्रकार द्वारा उसी समय प्रत्यक्षरित्या साकार की जाती है। तीसरा राग सदृश्यमूलक ध्यान अप्रतिरुप चित्रशैली, यह चित्रशैली गायक द्वारा राग के प्रस्तुति के बाद राग ध्यान द्वारा चित्रकार साकारता है।

परिणाम और चर्चा :

प्रस्तुत विषय के अंतर्गत अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली के निर्मिती के लिए चित्रकार को भारतीय राग संगीत के शास्त्रीय पक्ष तथा अप्रतिरूप चित्रशैली के निर्माण तत्वों का अध्ययन होना अत्यंत आवश्यक है। इस चित्रशैली के लिए चित्रकार तथा गायक, वादक यह दोनो कलाकार प्रधान तत्व है। संगीत कला के अंतर्गत इस विषय का विस्तार तथा मर्यादा

केवल उत्तर भारतीय राग संगीत से तथा चित्रकला में अप्रतिरूप चित्रशैली से संबंधित है। इस विषय पर अनन्य प्रयोग भारत तथा पाश्चात्य देशों में हुए है परंतु वह कला निर्मिती केवल कलाकार के स्व. अनुभव पर होने के कारण उसे शास्त्रीय आधार प्राप्त नहीं था।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत संशोधन भारतीय अभिजात राग संगीत तथा अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली के सहसंबंध तथा निर्मिती विचार पर कार्य किया है। संगीत तथा चित्रकला समाज के सभी स्तर के रंजन मूल्यों का आनंद है। इसलिए संगीत तथा चित्रकला के अति विशाल तथा व्यापक क्षेत्र में भारतीय अभिजात राग संगीत के आध्यात्मिक, तथा सौंदर्यात्मक मूल्यों का महत्व तथा अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली का सैद्धान्तिक आधार पर प्राप्त इस संशोधन के निकष तथा निष्कर्ष इस विषय को भविष्य में अलग गंतव्य तथा नई दृष्टि की तरफ प्रोत्साहित करेंगे।

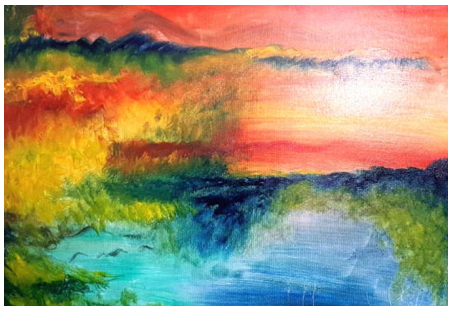

Figure 1

सन्दर्भ

1. अमोनकर : गान सरस्वती किशोरी, स्वरार्थरमणी, राजहंस प्रकाशन, पुणे
2. विश्वकर्मा राजकुमार : भारतीय चित्रकला में संगीत तत्व, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकारण
3. वाइल्ड ऑस्कर : सौंदर्य की रेखाएं, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली 1957
4. रानाडे अशोक : संगीत विचार, पॉपुलर प्रकाशन 2009
5. राय कृष्ण दास : भारत की चित्रकला, भारतीय भंडार, इलाहाबाद, 1974
6. अमोनकर : गान सरस्वती किशोरी, प्रत्यक्ष वार्तालाप दिनांक 21/01/2013
7. पंडित गोकुल उत्सवजी महाराज, प्रत्यक्ष वार्तालाप दिनांक 20/06/2013
8. परांजपे रवि : प्रत्यक्ष वार्तालाप दिनांक 01/01/2012
9. ब्योहार डॉ. अनिल : प्रत्यक्ष वार्तालाप दिनांक 02/03/2012
10. (Figure1) राग सदृश्यमूलक अप्रतिरूप संगीत चित्रशैली, राग बिलासखानी तोडी, माध्यम ऑइल कैनवास, चित्रकार डॉ. अंकुश गिरी, गायक डॉ. भोजराज चौधरी, शिवजी महाविद्यालय, बुलढाणा

नाट्यशास्त्र एवं संगीत-रत्नाकर में वर्णित आंगिक अभिनय का तुलनात्मक अध्ययन

*विदुषी जायसवाल

**डॉ रंजना उपाध्याय

सारांश

भारतीय शास्त्रीय नृत्य परम्परा मुख्यतः अपने प्रस्तुतिकरण के लिए शास्त्रों पर निर्भर करती है। शास्त्रकारों व ग्रन्थकारों द्वारा रचित अनेकों ग्रंथ व शास्त्र भारतीय सभ्यता व संस्कृति की अमूल्य निधि हैं। शास्त्रीय ग्रंथ परम्परा के अंतर्गत सर्वप्रथम भरतमुनि कृत "नाट्यशास्त्र" की रचना की गई। यह ग्रंथ नृत्य कला के लिए भी अत्यंत मूल्यवान है। इस ग्रंथ के अंतर्गत वर्णित अभिनय पक्ष का सुविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। अभिनय के अंतर्गत चतुर्विध अभिनय जिनमें, आंगिक, वाचिक, आहार्य व सात्विक अभिनयों का वर्णन किया गया है। शास्त्रों की इस श्रृंखला में बारहवीं शताब्दी में शारंगदेव द्वारा"संगीत-रत्नाकर" ग्रंथ की रचना की गई। इस ग्रंथ में संगीत के तीनों पक्षों गायन, वादन व नृत्य को सात अध्यायों में विभक्त कर उनका वर्णन किया गया। सातवाँ व अंतिम अध्याय नृत्य को समर्पित था, जिसे "नर्तनाध्याय" नाम दिया गया। "नर्तनाध्याय" के अंतर्गत भी चतुर्विध अभिनय का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें आंगिक अभिनय को मुख्य रूप से विस्तार प्रदान किया गया। चूँकि कला एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें व्यक्ति के अनुभव, विचार, मनोभाव, दृष्टिकोण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। फलस्वरुप कला क्षेत्र में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। "नाट्यशास्त्र" व "संगीत-रत्नाकर" के रचना काल के मध्य एक हज़ार वर्षों का अंतराल रहा, जिसके फलस्वरुप दोनों ही ग्रंथों में जहां कुछ समानताएं हैं तो कुछ विभिन्नताएँ भी दृष्टिगोचर होती है। आंगिक अभिनय के संदर्भ में यदि देखा जाए तो कहीं भेदो में भिन्नता है तो कहीं शब्दों में। प्रस्तुत शोध प्रपत्र का उद्देश्य "नाट्यशास्त्र" व "संगीत-रत्नाकर" में वर्णित आंगिक अभिनय के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने का एक प्रयास है।

मुख्य बिन्दु *- नाट्यशास्त्र, संगीत-रत्नाकर, आंगिक अभिनय, नृत्य, शास्त्र, ग्रंथ।*

भारतवर्ष अपनी विविध कलाओं एवं संस्कृति के लिए विश्व-विख्यात है। भारत के प्रत्येक राज्य अपनी संस्कृति, कला व सभ्यता की छटा विश्व भर में निरंतर बिखेरते रहते हैं। अपनी इस कलात्मक व सौन्दर्यात्मक स्वरूप से भारतवर्ष विश्व के अन्य राष्ट्रों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। भारत में विविध कलाओं के विविध स्वरूप प्राप्त होते हैं जो भारत के प्रत्येक राज्य को एक दूसरे से भिन्न बनाते हैं। अपनी कला, संस्कृति व सभ्यता के आधार पर ही भारत का प्रत्येक राज्य अपना एक अलग अस्तित्व व पहचान बनाए हुए है।

कला के संदर्भ में यदि देखा जाए तो भारतवर्ष नृत्य, गायन, वादन, शिल्पकला, मूर्तिकला व चित्रकला इत्यादि कलाओं से समृद्ध एक राष्ट्र के रूप में विश्व विख्यात है। यह विविध कलाएं मिलकर भारतवर्ष को गौरवान्वित करती रही हैं। इन सभी कलाओं में संगीत सबसे सौन्दर्यात्मक व श्रृंगारात्मक कला के

* शोध छात्रा : नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी - 221005, contact no.- 7985807215, EmaiA : gudiyajaiswaA1997@gmail.com

**शोध निर्देशिकाः (सहायक आचार्या), नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी - 221005, contact no.- 9758600215, EmaiA : ranjanaupadhyay@bhu.ac.in

रूप में विद्यमान है। संगीत की यह परंपरा अति प्राचीन है जो हमारे पूर्वजों द्वारा हमें उपहार स्वरूप भेंट की गई है।

अतः संगीत सम्बन्धित अनेकों प्राचीन ग्रंथों व शास्त्रों का समावेश प्राप्त होता है जो संगीत की प्राचीनता व शास्त्रीयता को और अधिक प्रमाणिकता प्रदान करते हैं।

मुख्यतः संगीत तीन पक्षों का समावेशित स्वरूप है जिसमें गायन, वादन व नृत्य तीनों ही पक्ष अपने-अपने अस्तित्व व विशिष्टता का उत्तम प्रदर्शन करते हैं। आचार्य 'शारंगदेव' द्वारा दिए गए संगीत के लक्षण "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते" के अनुसार भी संगीत में इन तीनों पक्षों को सम्मिलित किया गया है। अतः किसी एक के भी अभाव में संगीत का स्वरूप पूर्ण नहीं हो सकता। संगीत के तीनों विधाओं में नृत्य अपनी श्रृंगारात्मक एवं सौन्दर्यात्मक प्रकृति के कारण दर्शकों को मुख्य रूप से अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। नृत्य के इस अनुपम सौंदर्य ने जनमानस के हृदय में अपना स्थान सुनिश्चित कर रखा है। जहां एक ओर सौंदर्य, कोमलता, भाव व चपलता के साथ नृत्य की प्रस्तुति की जाती है वहीं दूसरी ओर नृत्य में विविध तकनीकों का भी गहनता से प्रयोग किया जाता है। अपने इस तकनीकी पक्ष के लिए नृत्य शास्त्रों पर निर्भर करता है। अतः जो नृत्य शास्त्रानुसार अपने नृत्य प्रदर्शन का प्रस्तुतीकरण करते हैं उन्हें ही शास्त्रीय नृत्य की श्रेणी में रखा गया है।

संगीत शास्त्र पर विपुल सामग्री प्रदान करने वाला सर्वमान्य ग्रंथ "नाट्यशास्त्र" नाट्य जगत में बड़ी श्रद्धा और प्रतिष्ठा के साथ देखा जाता हैं। इसमें गद्य और पद्य दोनों प्रकार की शैलियों का समावेश है। यह सूत्र शैली में लिखा ग्रंथ है, जिसके आधार पर बाद के अनेक आचार्यो ने संगीत से संबंधित ग्रंथो की रचना की। इसमें संस्कृत और प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है। "नाट्यशास्त्र" का समय ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी माना जाना चाहिए, क्योंकि ईसा के बाद आने वाले अनेक ग्रन्थों में उसका उल्लेख मिलता है, जिनमें 'पंचतंत्र', 'अग्निपुराण', 'विष्णुधर्मोतर पुराण', 'नारदीयसंहिता' और 'अभिनयदर्पण' प्रमुख हैं। अश्वघोष, कालिदास और भास की रचनाओं में भी "नाट्यशास्त्र" का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

भरतमुनि के समकालीन व उत्तरकालीन कई ग्रंथकारों का जन्म हुआ जिन्होंने अपने द्वारा रचित ग्रंथों में संगीतकला के स्वरूप व प्रस्तुतीकरण का विवरण प्रस्तुत किया। इन सभी ग्रंथकारों ने "नाट्यशास्त्र" को अपना आधार ग्रंथ तो माना परंतु कालचक्र के परिवर्तन के साथ शताब्दियाँ बदलती गई एवं इनके साथ रचनाओं के स्वरूप भी परिवर्तित होते चले गए फलस्वरूप इन ग्रंथों में कुछ समरूपता है तो कुछ विभिन्ता, भी प्राप्त होती हैं। जिनके अंतर्गत कुछ मुख्य ग्रंथो का समावेश है जिनमें 'अभिनवभारती' (दसवीं शताब्दी), 'मानसोल्लास' (ग्यारहवीं शताब्दी), उमापति कृत 'औमापतम' (बारहवीं शताब्दी), पार्श्वदेव कृत 'संगीतसमयसार' (तेरहवीं शताब्दी) इत्यादि ग्रंथ सम्मलित हैं।

इस श्रेणी में बारहवी शताब्दी में आचार्य शारंगदेव ने "संगीत-रत्नाकर" ग्रंथ की रचना की। संगीत के मध्यकालीन लक्षण ग्रंथो में सबसे प्रामाणिक ग्रंथ संगीत-रत्नाकर ही माना जाता है। यह ग्रंथ सात अध्यायों (स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबंधाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, नर्तनाध्याय) में विभक्त है। आचार्य "शारंगदेव" ने भी "नाट्यशास्त्र" को आधार ग्रंथ तो माना परंतु कला परिवर्तनशील है एवं इसमें वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा में व्यक्तिनिष्ठता अधिक महत्व रखती है, इसके फलस्वरूप "नाट्यशास्त्र" व "संगीत-रत्नाकर" में समरूपता के साथ-साथ भिन्नताएँ भी समान रूप से प्राप्त होती हैं।

"नाट्यशास्त्र" व "संगीत-रत्नाकर" के मध्य यदि नृत्य के स्वरूप का वर्णन देखा जाए तो दोनों ही ग्रंथों में जहां कुछ समानताएं हैं तो कुछ विभिन्नताएं भी ज्ञात होती है। नृत्य पक्ष के अंतर्गत दोनों ही ग्रंथों में नृत्य की उत्पत्ति, प्रयोग, चतुर्विध अभिनय इत्यादि का सुविस्तार वर्णन प्राप्त होता है।

चतुर्विध अभिनय जिनमें आंगिक, वाचिक, आहार्य व सात्विक अभिनय सम्मिलित है, में से यदि आंगिक अभिनय की दृष्टि से दोनों ग्रंथों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, तो दोनों ही ग्रंथो के मध्य अभिनय के भिन्न-भिन्न भेद व नाम प्राप्त होते हैं, जिसे प्रस्तुत तालिका के माध्यम से ज्ञात किया जा सकता है-

	"नाट्यशास्त्र"	"संगीत-रत्नाकर"
1. आंगिक अभिनय	"नाट्यशास्त्र" में आंगिक अभिनय के तीन भेद मुखज, शरीरज व चेष्टाकृत हैं।	"संगीत-रत्नाकर" में शाखा, अंकुर व सूची नाम से आंगिक अभिनयों का वर्णन मिलता है।
2. शिरो भेद	"नाट्यशास्त्र" में शिरोभेद की संख्या तेरह हैं।	"संगीत-रत्नाकर" में चौदह व अन्य पांच भेद (तिर्यडनतोन्नत, स्कन्धानत, आरात्रिक, सम, पार्श्वाभिमुख) मिला कर कुल उन्नीस शिरोभेद बताए गए हैं।
3. ग्रीवा भेद	ग्रीवा भेद नौ प्रकार के हैं। ग्रीवा भेद के अंतर्गत केवल नामों में भिन्नता हैं। (विवृत्ता)	ग्रीवा भेद नौ प्रकार के हैं। (निवृत्ता)
4. असंयुत हस्त	"नाट्यशास्त्र" में असंयुत हस्त की संख्या चौबीस है इनके नामों में कुछ भिन्नता पाई जाती है, उदाहरण- "नाटयशास्त्र" में कटकामुख, अल्पदम व सर्पशीर्ष नामों का उल्लेख हैं।	"संगीत-रत्नाकर" में भी असंयुत हस्त की संख्या चौबीस है। इनमं खटकामुख, सर्पशिरा व अलपल्लव नाम बताए गए हैं।
5. संयुत हस्त	'नाट्यशास्त्र' में संयुत हस्त की संख्या तेरह हैं। इनमें नामों के मध्य भिन्नता हैं। (दोला, कटकावर्धमानक)	"संगीत-रत्नाकर" में भी संयुत हस्त तेरह हैं, परन्तु नाम थोड़े भिन्न हैं। (खटकावर्धमान, डोल)
6. नृत्य हस्त	"नाट्यशास्त्र" में नृत्य हस्त की संख्या तीस है।	"संगीत-रत्नाकर" में नृत्य हस्त के अन्य तीन प्रकार (निकुंचक, द्विशिखर व वरदाभय) मिलाकर कुल तैतीस संख्या है।
7. तारा कर्म	"नाट्यशास्त्र" में तारा (पुतली) कर्म नौ प्रकार के हैं, यहाँ भी दोनों ग्रंथो के मध्य केवल कुछ नामों में परिवर्तन हैं। (सम्प्रवेशन)	"संगीत-रत्नाकर" में भी तारा (पुतली) कर्म नौ प्रकार के हैं। (प्रवेशन)
8. पुट कर्म	पुट कर्मो (पलकों) की संख्या नौ हैं। यहाँ भी केवल नामों में भिन्नता प्राप्त होती हैं। (उन्मेष, निमेष, विताडित)	पुट कर्मो (पलकों) की संख्या नौ हैं। (उन्मेषित, निमेषित, विचालित)
9. भृकुटी कर्म	भृकुटी संख्या सात प्रकार की हैं। यहाँ संख्या समान हैं, परन्तु दोनों ग्रन्थों के मध्य केवल नामांतर दृष्टिगोचर होता हैं। (पातन, चतुर, कुंचित, रेचित, सहज)	भृकुटी संख्या सात प्रकार की हैं। (पतिता, चतुरा, निकुंचिता, रेचिता, सहजा)
10. पाद कर्म	"नाट्यशास्त्र" में कुल पाद कर्मो की संख्या पाँच हैं।	"संगीत-रत्नाकर" में कुल तेरह पाद कर्मो का उल्लेख है।
11. दन्त कर्म	दन्त कर्म सात प्रकार के है। (लेहित) निष्कर्षण)	दन्त कर्मो की संख्या आठ है। (ग्रहण,
12. पार्श्व भेद	पार्श्व भेद की संख्या पांच हैं। केवल भेदो के नामों में भिन्नता हैं। (समुन्नत)	पार्श्व भेद की संख्या पांच हैं। (उन्नत)
13. कटि भेद	कटि भेद की संख्या समान हैं, परंतु भेदों के नामों में परिवर्तन हैं। कटि भेद पांच प्रकार के बताये गए हैं। (निवृत्ता)	कटि भेद पांच प्रकार के बताये गए हैं। (विवृत्ता)
14. अधर भेद	अधर भेद छः प्रकार के है साथ ही नामों में भी भिन्नता हैं। (विगर्ग)	अधर भेदों की संख्या दस है। (विसृष्ट, उद्धत, विकासी, आयत, रेचित)
15. मार्गचारी (आकाशिकी)	मार्गचारी (आकाशिकी) की संख्या सोलह है। यहाँ भी संख्या समान हैं, केवल एक भेद का नाम परिवर्तित हैं। (हरणीप्लुता)	मार्गचारी (आकाशिकी) की संख्या सोलह है। (मृगप्लुता)

निष्कर्ष -

अतः स्पष्ट होता है, कि कालचक्र के परिवर्तन के साथ नृत्य के स्वरूप व प्रयोग भी परिवर्तित होते गए। इसके अतिरिक्त अन्य कई ऐसे आंगिक अभिनय के भेद प्राप्त होते हैं जिनके लक्षण, नाम और प्रयोग में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। संगीत एक ऐसा पक्ष है, जिसमें व्यक्तिगत मनोभाव व व्यक्तिनिष्ठता का प्रभाव सर्वाधिक होता है। यदि नृत्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार देखा जाए तो, नृत्य कला सर्वप्रथम देवलोक में अप्सराओं द्वारा प्रस्तुत की जाती थी। तत्पश्यात ब्रह्मा जी के मानस पुत्र आचार्य भरतमुनि ने उनसे नाट्यवेद ग्रहण कर उसकी शिक्षा अपने सौ पुत्रों को प्रदान की, जिनसे यह विद्या देवलोको के साथ ही मृत्युलोक में भी प्रचलित हुई। इसके पश्चात रामायण, महाभारत इत्यादि ग्रंथों में नृत्य का वर्णन प्राप्त होता हैं। ग्रंथों से निकल कर नृत्यकला मंदिरों व मुग़ल दरबारों में प्रस्तुत की जाने लगी एवं वर्तमान में यह आधुनिक रंगमंच तक पहुच गई। इस प्रकार देवलोक से कलयुग तक आते-आते नृत्यकला के स्वरुप व प्रस्तुतिकरण में कई नवीन परिवर्तन होते चले गये। अतः यह स्वाभाविक है कि संगीत संबंधित ग्रंथो, शास्त्रों व रचनाओं में समरूपता के साथ भिन्नता व नवीनता सदैव दृष्टिगोचर होती रहेगी।

संदर्भ

1. चौधरी सुभद्रा : 'संगीत रत्नाकर', चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 1
2. साखरे अमित दीवानजी : नृत्य अध्ययन संग्रह, भाग-एक, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 55
3. साखरे अमित दीवानजी : नृत्य अध्ययन संग्रह, भाग-एक, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 55
4. साखरे अमित दीवानजी : नृत्य अध्ययन संग्रह, भाग-एक, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 26
5. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 14
6. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 6
7. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 22,23
8. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 34
9. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 88
10. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 39
11. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 24
12. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 40
13. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 25
14. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 40
15. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 70
16. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 21
17. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 24

18. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 25
19. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 91
20. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 86
21. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 77
22. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल : "नाट्यशास्त्र" द्वितीय भाग, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 221001, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 88
23. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 79
24. चौधरी सुभद्रा : "संगीत रत्नाकर", चतुर्थ खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 144,145
25. दाधीच डॉ. पुरु : कथक नृत्य शिक्षा, द्वितीय भाग, पृष्ठ संख्या 35

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्री वाद्यों का महत्व

दिव्या दत्त

शोध सार-हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्र वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। तंत्र वाद्यों का ध्वनि माधुर्य अत्यन्त मनमोहक एवं आनन्दानुभूति प्रदान करने वाला होता है। प्राचीन काल से ही विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों एवं विभिन्न सांगीतिक उत्सवों में तंत्र वाद्यों का वादन होता चला आ रहा है। वर्तमान में भी वाद्य संगीत साधकों ने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को विश्व के कोने-कोने में पहुंचाकर इस क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रस्तुत विषय पर शोध पत्र लिखने का मेरा उद्देश्य इस विषय पर अधिक-से-अधिक ज्ञानार्जित कर संगीत जगत के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करना है। तथ्यसंकलन के रूप में द्वितीयक स्त्रोतों अर्थात ग्रंथों, पुस्तकों एवं पत्र पत्रिकाओं से प्राप्त जानकारी का उपयोग किया गया है।

सूचक शब्द : *हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत,वाद्य, तंत्रवाद्य, ध्वनि, महत्व।*

समस्त ललित कलाओं में संगीतकला का विशेष महत्व रहा है। संगीत सूक्ष्मतम मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। संगीतकला के सन्दर्भ में पं शारंगदेव जी के अनुसार 'गीतं वाद्यं तथा नृतं त्रयं संगीतमुच्यते' अर्थात गायन वादन एवं नृत्य तीनों कलाएं संगीतकला में समाहित हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत में अति प्राचीन काल से ही वाद्यों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऐसा माना जाता है कि मानव जीवन में वाद्यों का प्रयोग आदिम युग से ही होता चला आ रहा है। आदिमानव भाषा के अभाव में अपने विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति हेतु विभिन्न वाद्यों को प्रयोग में लाता था परन्तु वाद्यों के विषय में प्रामाणिक जानकारी हमें वैदिक काल से प्राप्त होती है। यहाँ सर्वप्रथम वाद्य का शाब्दिक अर्थ समझ लेना उचित होगा।

"वाद्य शब्द वद् धातु से उत्पन्न माना गया है। अतः 'वादतीति वाद्यम' जो बोलता है वही वस्तुतः वाद्य है। निष्कर्षरूपेण जो बजाया जा सके या जिसको बुलवाया जा सके, वह वाद्य है। संगीत की भाषा में वाद्य वह यंत्र है जो सांगीतिक ध्वनि को जन्म दे सके।'' इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सांगीतिक ध्वनि को उत्पन्न करने वाले यंत्र को वाद्य कहा जाता है।

वाद्यों को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया गया है तत, सुषिर, अवनद्य, घन। प्रस्तुत शोधपत्र में तत या तंत्री वाद्यों के सम्बन्ध में ही चर्चा की जाएगी।

तंत्री या तंत्र से तात्पर्य है 'तार'। विद्वानों के अनुसार जिन वाद्यों में तार को छेडने या उस पर प्रहार करने के माध्यम से सांगीतिक ध्वनि होती है, वे तंत्री वाद्य कहलाते हैं।

तंत्रीवाद्यों से तात्पर्य उन स्वरवाद्यों से है जिन पर स्वरोत्पत्ति ताँत या लोहा इस्पात अथवा ऐलुमीनियम से निर्मित तारों पर प्रहार करके या घर्षण के द्वारा की जाती है। प्राचीन समय में धातु के तारों के अभाव में तंत्री वाद्ययंत्रों पर ताँत का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में ताँत के स्थान पर इस्पात एवं ऐलुमीनियम से निर्मित तारों ने ले लिया है। संगीत मनीषियों द्वारा मानवीय कंठ को सबसे

शोधार्थी : संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007, Mob-8218298076,
Email-duttdivya099@gmail.com

पहला तंत्री वाद्य माना गया है जिसे गात्र वीणा भी कहा गया है। स्वरोत्पत्ति के लिए मुख्यतः शारीरी वीणा (कंठ) एवं वेणु मुख्य वाद्य माने गये।

तंत्रवाद्यों की उत्पत्ति

विद्वानों का ऐसा मानना है कि तंत्र वाद्यों की उत्पत्ति की प्रेरणा आदिकालीन मनुष्य को धनुष की डोरी की टंकार से प्राप्त हुई होगी। डोरी को अंगुली से छोड़ने पर ध्वनि निकलती है, इसका अनुभव आदि मानव ने अपने दैनिक जीवन में कियाऔर परिणामस्वरूप उसने धनुष के आकार वाले तथा उसी के समान टंकार से बजने वाले वाद्य बनाने प्रारम्भ किये। इस प्रकार आदि मानव के धनुष को, जिसका वह शिकार करने एवं युद्ध के समय पर उपयोग करता था, तन्तु वाद्यों का जन्मदाता कह सकते है। प्रारम्भिक तन्त्र वाद्य हमें धनुषाकार रूप में ही मिलते हैं।

प्राचीन भारत में 'पिनारू' नामक एक तार का वाद्य भी प्रचलित था। जिसे अंगुली से छेड़कर बजाया जाता था। ऐसा कहा जाता है कि इस वाद्य की उत्पत्ति भगवान 'शिव' द्वारा की गई थी। वैसे 'पिनाक' शिव के धनुष का नाम बताया जाता है तथा पार्वती को 'पिनाकी' भी कहते हैं।

जैसे-जैसे मानव आध्यात्मिकता की ओर बढ़ता गया, संगीत कला की भी उन्नति हुई। प्रारम्भ में वाद्यों का जन्म नैसर्गिक ध्वनियों के अनुकरण तथा अन्य चेष्टाओं के परिणाम स्वरूप हुआ। जब ये वाद्य प्रयोग किये जाने लगे, तो इन्हीं वाद्यों में संशोधन करके इन्हीं के आधार पर नवीन वाद्यों का जन्म हुआ।

तंत्रवाद्यों का विकास

तन्त्रवाद्यों के विकास पर यदि दृष्टिपात करें तो यह कहेंगे कि तंत्र वाद्यों का विकास कोई एक दिन की बात नहीं है, विभिन्न अवस्थाओं से गुज़रने के उपरान्त तंत्र वाद्यों का वर्तमान स्वरूप हमारे समक्ष प्रकट हुआ है। तंत्र वाद्यों का विकास मूलतः आदिमानव के धनुष से हुआ है। इसी कारण सभी देशों में प्रारम्भिक सभी तन्त्री वाद्य धनुषाकृति में देखने को मिलते हैं। तन्तु वाद्यों का प्रारम्भ धनुष, हार्प तथा लायर के रूप में देखने को मिलता है।

विद्वानों का ऐसा मानना है कि आदि मानव ने धनुष की टंकारात्मक ध्वनि से प्राप्त अनुभव के आधार पर, एक ही धनुष में कई छोटी एवं बड़ी डोरियाँ बांधकर एक नवीन प्रयोग किया जिसके फलस्वरूप जगत प्रसिद्ध 'हार्प' वाद्य अस्तित्व में आया। इसके अतिरिक्त आदि मानव ने अनुभव किया कि यदि धनुष को किसी खोखली चीज़ पर रखकर झंकृत किया जाएगा तो ध्वनि की तीव्रता में और वृद्धि होती है।

ध्वनि की गूंज को बढ़ाने के लिए धनुष-यंत्र को मिट्टी से बने बर्तन पर रखा जाता था। इसके पश्चात् अस्थायी अनुवादक के स्थान पर स्थायी अनुवादक ही प्रयुक्त किया गया। तूंबे की डंडी अथवा धनुष की छड़ को तुम्बे के फल में सन्निविष्ट किया जाता था।

तन्त्रवाद्यों की प्रारम्भिक अवस्था का अध्ययन यदि सूक्ष्मता से किया जाए तो पता चलता है कि चाहे वह धनुषाकार वीणा हो या वेदों में वर्णित वीणा अथवा बेबीलोनिया, मिस्त्र आदि में पाया जाने वाला हार्प अथवा लायर, सभी में स्वरोत्पत्ति का एक ही सिद्धान्त दिखलायी पड़ता है और वह है प्रत्येक स्वर के लिए एक ही तार का प्रयोग। प्राचीनकाल में कहीं भी एक तार पर अधिक स्वरों को निकालने की किसी अवस्था का पता नहीं चलता। वीणाओं की बाहरी आकृति व तारों की संख्या अलग-अलग होने के कारण उनके अलग-अलग नाम होते थे।

''वैदिक काल में बाण का उल्लेख मिलता है जिसमें 100 तन्त्रियों का उल्लेख मिलता है। इन तन्त्रियों को सुर में मिलाने के लिए बार-बार इन्हें खोलकर बांधा जाता था। इस प्रकार की धनुषाकार वीणा का प्राचीनकाल में काफी प्रचलन था, इसे ही तमिल में याज कहते हैं।''

''धीरे-धीरे इसमें तारों की संख्या बढ़ती गई जिसके फलस्वरूप स्वरमण्डल (कानून) और सन्तूर जैसे वाद्य अस्तित्व में आए जिनको आधुनिक पाश्चात्य वाद्य पियानों-फोर्ट का पूर्वज भी माना जा सकता है। कात्यायनी या शततन्त्री वीणा में भी सौ तार थे उसे

भी सन्तूर का पूर्वज माना गया है। इक्कीस तार वाली मत्तकोकिला के आधार पर ही स्वरमण्डल की रचना हुई।''

ऐसा माना जाता है कि भारतीय वाद्यों मे आज हार्प अथवा लायर वर्ग का कोई वाद्य प्रचलित नहीं है परन्तु समुद्रगुप्त की मुद्रा में अंकित वीणा जिसे परिवादिनी वीणा के नाम से जाना जाता है, वह हार्प वर्ग की ही है। प्राक्वैदिक काल में हार्प वाद्य, जिनमें तीन-चार तारों का प्रयोग मिलता है, के कुछ अवशेष प्राप्त होते हैं। तंत्री वाद्यों की प्रारम्भिक अवस्था में हार्प वर्ग के वाद्य प्रचार में रहे परन्तु धीरे-धीरे वे लुप्त होते गये। पी॰ साम्बमूर्ति जी ने इसके लुप्त होने का कारण यह बताया है कि ''भारतीय संगीत की आत्मा 'गमक' इसमें प्रदर्शित नहीं की जा सकती। उनका कहना है कि सीमित स्वरों के लिए चाबी होने के कारण इन वाद्यों में 'क्वाटर-टोन' को प्रदर्शित करना असम्भव रहता है।

भारत में प्रचलित 'पिनारू' नामक तन्त्र वाद्य का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में सर्वप्रथम मिलता है। प्राचीन भारत में बहुत से तंत्रवाद्य प्रचलित थे, जिनमें से वर्तमान में बहुत कम वाद्य प्रचलित है, किन्तु आधुनिक प्रचलित अधिकांश वाद्यों का विकास इन्हीं प्राचीन वाद्यों के आधार पर ही हुआ है।

डॉ. शरचन्द्र परांजपे जी के अनुसार ''वैदिक काल में तन्त्रियों की संख्या, बनावट तथा आकार-प्रकार के हिसाब से इसके अनेक प्रकार विकसित हो चुके थे जैसे-शततन्त्री वीणा, काण्ड वीणा, पिच्छोला, कर्कटिका, अलाबु, वक्री आदि।''

रामायण और महाभारत काल में भी वल्लकी वीणा का विकास हुआ। इसके पश्चात् पाणिनी, पतंजलि, कौटिल्य, भास तथा शूद्रक के ग्रंथों में भी सप्ततन्त्री और नवतन्त्री वीणाओं का विकास परिलक्षित होता है। भरत काल में उक्त दो वीणाओं के अतिरिक्त कच्छपी तथा घोषकी नामक वीणाएँ प्रचार में आ गई थीं, और समयानुसार परिवर्तन के साथ-साथ विकसित होती रहीं।

प्राचीन काल में तंत्र वाद्यों के लिए सामान्य संज्ञा थी। मध्यकाल में सभी तन्तु वाद्यों को 'वीणा' कहा जाता था। आचार्य अभिनवगुप्त, नान्यदेव आदि ने अपने ग्रन्थों में अनेक प्रकार की वीणाओं का उल्लेख किया है।

पं शारंगदेव के संगीत-रत्नाकर के काल के आस-पास हमारे संगीत सिद्धान्तों में अनेक परिवर्तन हुए। उसी के फलस्वरूप किन्नरी वीणा का महत्त्व बढ़ा किन्तु उसका विकास पहले वाले रूप में न होकर दो भिन्न रूपों में हुआ था-

1. उत्तर भारतीय रूद्र वीणा
2. दक्षिण भारतीय तंजौरी वीणा।

उपर्युक्त में से ''रूद्र वीणा को तानसेन के वंशजों द्वारा अपनाया गया और उन्होंने उसे सरस्वती वीणा कहकर सम्बोधित किया।''

मध्यकाल में तंत्र वाद्यों पर पर्दों की व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। इसी काल में भरत तथा शारंगदेव द्वारा वर्णित त्रितन्त्री वीणा ने किन्नरी के परदों की व्यवस्था लेकर अपना रूप विकसित करना प्रारम्भ कर दिया जो आज सुरबहार एवं सितार के नाम से सुप्रसिद्ध है। मध्यकाल में और भी कई प्रकार के वाद्यों का विकास हुआ जिनमें से एक है-सुरसिंगार।

वाद्यों का निर्माण ज़्यादातर उन्हीं वस्तुओं से किया गया जो प्रकृति में आसानी से उपलब्ध हो सके। कालान्तर में कृत्रिम वस्तुओं का प्रयोग किया जाने लगा। वैदिक युग में दूर्वा तथा मूंज के तार प्रयुक्त होते थे तत्पश्चात् इनके स्थान पर बालों तथा चमड़े के तांत का प्रयोग हुआ और बाद में धातु निर्मित तन्त्री का प्रयोग होने लगा।

इस प्रकार तन्त्रवाद्यों के जन्म एवं विकास की ओर जब दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं कि समय परिवर्तन के साथ-साथ एवं आवश्यकतानुसार वाद्यों में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और यह भी कि किसी भी वाद्य को जब काफी समय तक बजाया गया तो उसके दोष भी सामने आये, जिनके सुधार हेतु भी परिवर्तन किये भी गये। अतः यह स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त कारणों और मानव-मस्तिष्क की गतिशीलता के कारण भी नवीन वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास का क्रम चलता रहता है।

वाद्य-वर्गीकरण में तंत्र वाद्यों का स्थान

तंत्र वाद्यों का वाद्य वर्गीकरण में स्थान पर चर्चा करने से पूर्व संक्षेप में वाद्य वर्गीकरण को समझ लेना

उचित होगा। किसी भी क्षेत्र में वर्गीकरण या वर्गीकृत करने की व्यवस्था मात्र इसीलिए होती है कि उस क्षेत्र विशेष का अध्ययन सहजता से किया जा सके। विभिन्न वाद्यों को भी उनकी भिन्न भिन्न विशेषताओं के कारण अलग अलग वर्गों में वर्गीकृत किया गया यही वाद्य वर्गीकरण कहलाया। यह वर्गीकरण आहत नाद से उत्पन्न ध्वनियों के आधार पर किया गया।

'नारद' कृत 'संगीत मकरंद' में वाद्य वर्गीकरण करते समय संगीतात्मक ध्वनियों के आधार पर वाद्यों को पाँच वर्गों में विभाजित किया गया है।

ये पाँच वर्ग हैं-नखज, वायुज, लोहज, चर्मज, शरीरज।

इन पांचों के वर्ग को 'पंचमहावाद्यानि' की संज्ञा दी गई है। इनमें से वीणा, वंशी आदि वायुज, मृदंग आदि चर्मज, ताल आदि लोहज तथा कंठ आदि शरीरज वाद्य कहे गये हैं। कंठ ईश्वर द्वारा निर्मित है तथा शेष चारों वाद्य मानव द्वारा निर्मित हैं। नारदीय शिक्षा के अनुसार -

''एकं ईश्वरं निर्मितं नैमार्गिकम् अन्यच्चतुर्विधम् मनुष्यनिर्मितं चेति पंच प्रकारः महावाद्यानाम्ः।'' अर्थात एक ईश्वर द्वारा निर्मित और चार मानव द्वारा निर्मित इस प्रकार पाँच प्रकार के वाद्य माने गये हैं।

महर्षि भरत एवं दत्तिल शारंगदेव आदि विद्वानों ने वाद्यों को चार श्रेणी में बांटा है। इस प्रकार वाद्य ध्वनियों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ ने इनकी संख्या तीन कुछ ने चार एवं कुछ ने पांच मानी है। महर्षि भरत ने वाद्यों को तत, अवनद्ध, घन एवं सुषिर में विभाजित किया है। उनके मतानुसार तत-तंत्र वाद्य अवनद्ध-पुष्कर वाद्य घन-ताल वाद्य एवं सुषिर-वंशी वाद्य हैं। महर्षि भरत के ही वर्गीकरण को परवर्ती ग्रन्थकारों ने वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत मानते हुए स्वीकार किया।

इस सम्बन्ध में पं लालमणि मिश्र जी ने कहा है ''प्राचीन युग में विकसित वाद्यों के प्रकारों को देखते हुए महर्षि भरत का वर्गीकरण सर्वथा उचित तथा पर्याप्त प्रतीत होता है।''

वाद्य वर्गीकरण में तंत्र वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। किसी भी तंत्र वाद्य में से ध्वनि उत्पन्न करने के लिए तार में कम्पन होना आवश्यक होता है। तार में कम्पन उत्पन्न करने के लिए माध्यम कुछ भी हो परन्तु ध्वनि दो ही प्रकार से उत्पन्न की जा सकती है प्रथम-किसी माध्यम द्वारा प्रहार कर (तार पर) और द्वितीय किसी माध्यम द्वारा घर्षण कर। तन्त्र वाद्यों का वर्गीकरण उनके उपयोग, स्वरूप, उनकी निर्माण सामग्री, उनकी वादन शैली, उनकी स्वर सीमाओं आदि अनेक तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है।

प्रायः सभी विद्वानों एवं ग्रन्थकारों ने अपने द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण में तंत्र वाद्यों को ही प्रथम स्थान पर रखा है अर्थात चाहे चतुर्विध त्रिविध या पंचविध वर्गीकरण हो सभी में तंत्र वाद्यों को सर्वप्रथम स्थान पर रखा गया है। इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि तंत्र वाद्य या तार वाले वाद्यों पर ही कंठ के माध्यम से की जाने वाली सूक्ष्मतम क्रियाओं को निकाल पाना सम्भव होता है या यदि ऐसा कहें कि तंत्र वाद्य कंठ संगीत के निकट होते हैं तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

तंत्र वाद्यों का महत्व

प्राचीन काल से ही हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्रवाद्यों का अति महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वाद्य संगीत की यह विशेषता है कि इसमें भावों की अभिव्यक्ति हेतु साहित्य की अपेक्षा नहीं होती। यह संगीत के मूलभूत तत्वों स्वर एवं लय के माध्यम से समस्त प्राणीमात्र को अलौकिक आनन्द प्रदान करने की क्षमता रखता है। वाद्य संगीत पूर्णरूप से स्वतंत्र है। यह अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के अन्य कला की अपेक्षा नहीं रखता हैजबकि अन्य कलाएँ अपने सफल प्रदर्शन हेतु अन्य कलाओं की अपेक्षा रखती हैं जैसे गायन एवं नृत्यकला अपने सफल प्रदर्शन हेतु वाद्य संगीत पर निर्भर हैं।

तंत्र वाद्यों में वीणा को कंठ की संगति हेतु अति उत्तम माना गया है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में गायन की संगति हेतु सारंगी वाद्य को उपयुक्त माना गया है। वर्तमान में गायन की संगति के रूप में हारमोनियम वाद्य का भी प्रयोग किया जाता है परन्तु विद्वानों का ऐसा मानना है कि गले की बारीकियों को दर्शाने में सारंगी अपेक्षाकृत ज़्यादा सक्षम वाद्य है। कर्नाटक संगीत में गायन की संगति हेतु वायलिन का प्रयोग किया जाता है।इस प्रकार

यह कहा जा सकता है कि गायन की संगति हेतु तंत्र वाद्य ही श्रेयस्कर हैं।

जहाँ तक सांगीतिक सिद्धान्तों को प्रमाणिक करने की बात है तो वहाँ भी हमारे संगीत साधकों एवं संगीत मनीषियों ने तंत्र वाद्यों को ही प्रयोग में लिया है। श्रुति स्वर ग्राम एवं मूर्च्छना इत्यादि के स्थान जानने एवं स्पष्टीकरण हेतु विद्वानों ने तंत्र एवं सुषिर वाद्यों को ही उपयोग में लाया है। प्राचीन समय में विभिन्न संगीत विद्वानों ने श्रुति स्वर स्थान निर्धारण हेतु वीणा वाद्य का उपयोग किया। इसका प्रमुख कारण यह है कि वीणा के 36 इंच लम्बे तार पर संगीत की सूक्ष्म क्रियाओं को दर्शाने का कार्य सरलता से किया जा सकता है। पं. शारंगदेव जी गीत को वाद्य से उत्पन्न माना है। उक्त कथन के माध्यम से तंत्र वाद्यों की महत्ता प्रकट होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वर सम्बन्धी परीक्षण हेतु वाद्य संगीत में तंत्र वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान है।

निष्कर्षतया यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्र वाद्यों का विशेष महत्व है। तंत्र वाद्यों के स्वर माधुर्य ने न केवल संगीतज्ञों बल्कि साधारण जनमानस का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया है। इसके अतिरिक्त विश्व पटल पर भारतीय संस्कृति एवं संगीत की एक अमिट छाप छोड़ी है।

सन्दर्भ सूची-

1. शारंगदेव, आचार्य, संगीत रत्नाकर (द्वितीय खंड), प्रथमः स्वरगताध्याय, नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन, श्लोक-21, पृ.सं.-10
2. शुक्ल, विश्वनाथ, संगीत-वाद्यवादन, अंक जन.-फर. -1975, पृ.सं.-21
3. वही
4. गर्ग, लक्ष्मी नारायण,निबंध संगीत,हाथरस, संगीत कार्यालय, तृतीय संस्करण, पृ.सं.-162
5. परांजपे, डॉ. शरच्चन्द्र, संगीत बोध, वाराणसी, चौखम्बा भवन, पृ.सं.-135
6. शर्मा, श्रीमतीवीना, हिन्दुस्तानी संगीत में तंत्र वादकों का योगदान, नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण, पृ.सं.-51
7. मिश्र, डॉ. लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, द्वितीय संस्करण-2002, पृ.सं.-21
8. संगीत मकरंद - नारद उद्धृत संगीत चूड़ामणि बड़ौदा संस्करण, पृ.सं.-691
9. सेठ, डॉ रेखा, भारतीय तंत्र वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास, मेरठ, ईशान प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2002, पृ.सं.-54
10. मिश्र, डॉ. लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, द्वितीय संस्करण-2002, पृ.सं.-13

साहित्य एवं संगीत : एक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

डॉ. देश गौरव सिंह

सारांशः

साहित्य एवं संगीत दोनों में एक घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह तथ्य सर्वविदित है। परन्तु इन दोनों कलाओं की एक दूसरे पर आश्रितता किस हद तक है? किन पहलुओं पर ये आपस में समान हैं और कहाँ दोनों में विभेद है? विभिन्न साहित्यकारों के साहित्य एवं संगीतज्ञों के संगीत का गहन अवलोकन एवं इन दोनों कलाओं की विभिन्न विधाओं में आपसी समन्वय के अध्ययन से उपर्युक्त जिज्ञासाओं की शांति होती है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र इन सभी बिंदुओं पर प्रकाश डालकर कर इन रहस्यों का उद्घाटन करता है।

संकेत शब्द : *कविता, रस, छन्द, स्वर, लय, शास्त्रीय संगीत, चलचित्र संगीत*

साहित्य का माध्यम शब्द है और संगीत का माध्यम स्वर है। फिर भी दोनों एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि दोनों को एक दूसरे से पृथक समझना उचित न होगा। थॉमस कार्लाइल के एक कथन में साहित्य और संगीत के बीच प्रगाढ़ता का दर्शन होता है—''कविता शब्दमय संगीत है और संगीत ध्वनिमय कविता।'' गायन की लगभग हर विधाओं जैसे- ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, गजल, भजन, कौव्वाली इत्यादि में साहित्य एक आवश्यक अंग के रूप में निहित है। संगीत के इन रूपों को साहित्य एक शरीर प्रदान करता है जिसमें स्वरों के अलंकरण से सांगीतिक रचना सम्पूर्ण होती है। हालांकि संगीत बिना शब्दों के आश्रय के ही समस्त भावों को व्यक्त करने में सक्षम है, परन्तु इन स्वरों को यदि उपयुक्त शब्दों का आधार मिल जाय तो बात कुछ और ही हो जाती है। स्वरों में किंचित दोष होने पर भी भावपूर्ण शब्दों का आधार होने से गायक श्रोताओं का मन मोह लेते हैं। गायक-गायिकायें शब्दरहित संगीत से सिर्फ स्वर लय की आतिशबाजी से श्रोताओं को आकर्षित तो कर सकते हैं परन्तु शब्दों के अभाव में वे साधारण जनमानस से उत्तम संवाद स्थापित करने में असमर्थ रह जाते हैं। वहीं दूसरी तरफ कविता को स्वरों का सहारा मिलते ही वह बहुत आसानी से लोगों के दिलों में उतर जाती है। हम देखते हैं कि काव्य की वही पंक्तियां सबसे अधिक स्मरण तथा उद्धृत की जाती हैं जो संगीतमय होती हैं। रामचरितमानस काव्य की जन-जन में लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण है इसका गेय रूप।

'स' के उच्चारण में ही साहित्य एवं संगीत का समावेश है। जब हम 'स' स्वर को गाते हैं तो अक्षर 'स' साहित्य है एवं इसके पीछे 'अ' की ध्वनि संगीत है। पुराणों में वर्णित है कि भगवान शंकर के मुख से राग भैरव की उत्पत्ति हुई उनके पदचापों से साहित्य का जन्म हुआ। देवी सरस्वती वीणा धारिणी है तो पुस्तकधारणी भी हैं। सम्पूर्ण वेद गेय हैं। रामायण महाकाव्य को लव-कुश इकतारे पर गाते थे। कवियों में चाहे कबीर हों या सूर, तुलसी हों या मीरा सभी के साहित्य में संगीत के तत्व बराबर दृष्टिगत होते रहे हैं। इन सभी संत कवियों की रचनाओं में राग रागिनियों का जिक्र मिलता है जो इस बात का सूचक है कि मध्यकालीन इन साहित्यकारों को उस कल में प्रचलित राग रागिनी पद्धति का भी पूर्ण

संगीत शिक्षक, एस.के.बी. मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली

ज्ञान था। सूरदास जी ने तो अपनी रचनाओं में स्वयं को एक कवि के साथ ही एक संगीतज्ञ भी होना स्वीकार किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अति प्राचीन काल से साहित्य एवं संगीत में एक अटूट सम्बन्ध है।

दोनों ही कलाओं में अनेकानेक समानताएं हैं। काव्य एवं संगीत दोनों ही लय पर अवलम्बित हैं। काव्य की रचना छन्दों में होती आयी है और छन्द लय के ही आधार पर टिका हुआ नाद-विधान है। वैसे नवीन कवियों की रचना छन्द के वर्णों एवं मात्राओं से मुक्त है फिर भी ताल और लय के साथ चलती है। दूसरी तरफ संगीत का आधार भी लय है। लय और ताल तो भारतीय संगीत का प्राण है।

साहित्य एवं संगीत दोनों का संबंध मस्तिष्क से न होकर हृदय से है। मानव हृदय की कोमलतम भावनाओं को जब स्वर और लय के ढांचे में ढाल दिया जाता है तो संगीत की सृष्टि होती है। उसी प्रकार साहित्यकार भी अपने हृदय की उमड़ती मचलती भावनाओं को काव्य का रूप देता है। यद्यपि साहित्य और संगीत दोनों ही मस्तिष्क को भी प्रभावित करते हैं, किन्तु दोनों की उत्पत्ति हृदय से ही होती है। दोनों का उद्देश्य आनन्द की अनुभूति कराना है।

संगीत के स्वर, ताल और लय का विचार साहित्य के रस की दृष्टि से किया जाता है। प्राचीन सांगीतिक ग्रंथों के अनुसार 'स' और 'प' श्रृंगार एवं हास्य रस के लिए उपयुक्त माना गया है। 'ध' को वीभत्स और भयानक रस के लिए उपयुक्त माना गया है। यही नहीं संगीत के लय में भी रस दिखता है। मध्य लय से श्रृंगार और हास्य रस, विलम्बित लय से वीभत्स और भयानक रस और द्रुत लय से वीर, रौद्र और अद्‌भुत रस की निष्पत्ति होती है।

हम शास्त्रीय संगीत की ओर दृष्टिपात करें तो इसमें शब्दों की अपेक्षा स्वरों का अधिक महत्व दिखता है जिसके कारण शब्दों की खूब तोड़-मरोड़ होती है और स्वर- शब्द संयोग नष्ट हो जाता है। जबकि उपशास्त्रीय संगीत की ठुमरी गायन विधा में साहित्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भाव प्रधान गायकी होने के कारण भावपूर्ण साहित्य का प्रयोग ठुमरी में हमेशा से ही होता रहा है।

गायन में स्वरों के बराबर शब्दों के महत्व का उदाहरण चित्रपट संगीत है। इसमें स्वर निर्धारण शब्दों के अनुसार किया जाता है। जिससे गीत भावपूर्ण बन जाते हैं। सामान्य व्यक्ति इसी कारण से चित्रपट संगीत में अधिक रूचि लेते हैं। गीतों में प्रयुक्त साहित्य के माध्यम से फिल्म के दृश्य को सजीव बनाने एवं उसे और अधिक आकर्षक एवं मनोरंजक बनाने की परंपरा हिंदी सिने संगीत में प्रारंभ से ही रही है। अपने इन्हीं गुणों से संगीत की इस विधा ने विगत पचासी वर्षों से लोकप्रियता के मामले में अपने आप को सर्वोच्च स्थान पर स्थापित कर लिया है। हिंदी सिनेमा के महानतम संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल की जोड़ी के प्यारेलाल जी के मुंबई आवास पर हुई वार्ता के दौरान उन्होंने साहित्य के संदर्भ में कहा कि बिना साहित्य के गाना कुछ भी मायने नहीं रखता। उन्होंने एक बहुत साधारण उदाहरण देकर समझाया कि यदि हमारे गाने 'चोली के पीछे क्या है' के शब्दों को परिवर्तित करके 'रामा हे रामा रामा कृष्णा हे रामा' कर दिया जाए तो वही धुन सिर्फ साहित्य मात्र के परिवर्तन से भजन में परिवर्तित हो जाती है। वह कहते हैं कि सर्वप्रथम शायरी उसके बाद धुन।

यदि हम बात करें गजल गायकी की तो वास्तव में यह एक काव्य विधा है, जिसका आरम्भ अरबी साहित्य में हुआ था। गजल गायकी का तो मुख्य आधार ही उसमें प्रयुक्त साहित्य है या यूँ कहें की गजल साहित्य की सुचारु ढंग से अभिव्यक्ति ही संगीत पर आधारित है। एक गजल गायक की कुशलता उसके सांगीतिक कौशल से ज्यादा उसकी साहित्यिक समझ पर निर्भर करती है।

अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य और संगीत की अन्योन्याश्रितता को स्वीकारा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिंतामणि में लिखते हैं कि नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है। तालपत्र, भोजपत्र, कागज, आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है। बहुत सी उक्तियों को लोग उनके अर्थ की रमणीयता इत्यादि की ओर ध्यान ले जाने का कष्ट उठाये बिना ही प्रसन्नचित्त रहने पर गुनगुनाया करते

हैं। 'फूलर' का मत है कि कविता शब्द के रूप में संगीत एवं संगीत ध्वनि के रूप में कविता है। 'चौटफील्ड' ने साहित्य और संगीत के बीच सम्बन्ध पर बोला है कि कविता विचारों का संगीत है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि साहित्य और संगीत दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। कविता कितनी ही अच्छी क्यों न लिखी गयी हो उसे जनमानस के ह्रदय में उतरने के लिए संगीत का आश्रय लेना ही पड़ता है। ठीक उसी प्रकार सांगीतिक स्वर कविता के सांचे में ढल कर जन-जन के दिलों में उतर जाते हैं। यदि गीत में गीत के बोल उसकी शरीर है तो उसमे प्रयुक्त संगीत उसकी आत्मा है। संगीत को अपनी अभिव्यक्ति के लिये साहित्य की एवं साहित्य को संगीत की आवश्यकता होती है। दोनों कलाएं एक दूसरे से अभिन्न एवं अन्योन्याश्रित हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थः

- गुप्ता, ऊषा, हिंदी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत, पृ. 85, 86
- द न्यू डिक्शनरी ऑफ थॉट्स (ए साइक्लोपीडिया ऑफ कोटेशंस), पृ. 414, 470
- जौहरी, सीमा. भारतीय चलचित्र संगीत का इतिहास (1900-1947), पृ. 165.
- प्यारेलाल–प्रत्यक्ष साक्षात्कार– मुंबई, मार्च 09, 2016, 6:28 च.
- शुक्ल, रामचंद्र. चिंतामणि (प्रथम भाग), पृ. 179
- संगीत कला विहार, जनवरी 1987, पृ. 6
- संगीत, जनवरी 1970, सूरदास का संगीत पक्ष, प्रपन्नाचार्य, पृ. 42
- संगीत, जून 1950, संगीत का मूल्यांकन, बी. एन. भट्ट, पृ. 25, 26
- संगीत, जून 1973, साहित्य और संगीत, कुशल माथुर, पृ. 25, 26

विद्वान वाग्गेयकार पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग'

दीपक सिंह

सार

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग' जी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। पंडित जी का गायन हो अथवा रचना दोनों ही शैलियाँ अनुकरणीय है। कहते हैं कि यदि इच्छा शक्ति मजबूत है तो अभीष्ट कार्य के पूरा होने में संदेह नहीं होता है। ऐसा ही हम पंडित जी के संदर्भ में कह सकते हैं। यद्यपि आप प्रज्ञा चक्षु थे तथापि अपनी तीव्र इच्छा शक्ति तथा परिश्रम के सहारे स्वयं को संगीत जगत के सशक्त हस्ताक्षर के रूप स्थापित किया। इस शोध पत्र में हम पंडित जी की रचनाओं तथा संगीत क्षेत्र में उनके योगदान को गहराइयों से समझने का प्रयास करेंगे।

शोधपत्र

संगीत स्वयं ही ब्रह्म है। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भागवत गीता में कहा है- 'वेदानाम् सामवेदोस्मि' अर्थात् वेदों में साम वेद स्वयं मैं ही हूँ। संगीत की पूजा अपनी साधना से करने वाले अनेक साधक हुए हैं जो अपनी संगीत साधना से सांगीतिक जगत में एक दैदीप्यमान नक्षत्र की भांति प्रकाशित हुए तथा इस दृश्य जगत को एक नई राह दिखाए। इन्हीं साधकों में एक नाम आता है पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग' जी का। पंडित जी प्रज्ञा चक्षु होते हुए भी अपनी मेधा का परिचय जिस प्रकार दिया वह अत्यंत प्रशंसनीय है। पंडित जी एक संगीत साधक के साथ अच्छे गुरु, सफल प्रस्तोता तथा उच्च कोटि के वाग्गेयकार भी थे। पंडित जी की रचनाएँ 'भावरंग लहरी' नाम की पुस्तक में प्रकाशित हैं जो कि तीन भागों में है। पंडित जी की बंदिशों का गढ़न उनकी रचनात्मक क्षमता को दर्शाता है।

पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग' जी का जन्म गुजरात राज्य के भावनगर शहर में 23 सितंबर 1921 को हुआ। आपके पिता श्री गुलाबराय पुरुषोत्तम भट्ट तथा माता श्रीमती हरकुंवर बेन थीं। 5 वर्ष की अवस्था में आप ने अपनी विद्यालयी शिक्षा भावनगर के 'राष्ट्रीय शिक्षणशाला' से शुरू की। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा अत्यंत प्रशंसनीय स्मरण शक्ति के कारण आप अपने शिक्षकों के विशेष स्नेह के भागी रहे। 1928 में गुजरात में अत्यधिक वृष्टि हुई तथा भयंकर बाढ़ का प्रकोप था। सब तरफ खसरा नाम की बीमारी फैली हुई थी। दुर्भाग्य से 7 वर्षीय शिशु बलवंत राय को भी खसरा ने अत्यंत गंभीर रूप से अपने चपेट में ले लिया। इस बीमारी ने बालक के आंख की रोशनी छीन ली, अब बस धुंधला धुंधला ही दिखता था। इस परिस्थिति में आगे की शिक्षा ग्रहण करना एक चुनौती पूर्ण कार्य था। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए सन् 1929 के अप्रैल में पंडित जी मुंबई के 'विक्टोरिया मेमोरियल स्कूल फॉर द ब्लाइंड' में प्रवेश लिया। इस विद्यालय में संगीत की भी शिक्षा दी जाती थी तथा प्रत्येक शुक्रवार को 1 घंटे तक ग्रामोफोन रिकार्ड सुनाया जाता था। विद्यालय प्रबंधन ने विद्यार्थियों को आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले सांगीतिक कार्यक्रमों के श्रवण के लिए एक रेडियो का भी प्रबंध किया। बलवंत राय जी बहुत छोटी उम्र से ही आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले तथा अपने आस पास आयोजित होने वाले शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों में उपस्थित हो कर

* शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

बहुत ध्यान पूर्वक सुनते थे। पंडित जी के बाल्यावस्था से ही संगीत के प्रति समर्पण को एक घटना से समझ सकते हैं। वर्ष 1934 के मई महीने में उस्ताद अब्दुल करीम खान जी के गायन का प्रसारण होना था। मई और जून महीने में विद्यालय में ग्रीष्मावकाश के कारण छात्रवास में रहने वाले सभी विद्यार्थी अपने घर चले जाते थे। बलवंत राय जी के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण रेडियो की व्यवस्था नहीं थी। अतः बलवंत राय जी ने उस्ताद अब्दुल करीम खान जी के विशेष प्रसारण को सुनने और लाभान्वित होने के लिए उस वर्ष अपने घर जाने का कार्यक्रम स्थगित करना उचित समझा तथा छात्रावास में रुक कर विशेष प्रसारण को सुना और आनन्द लिया। संगीत के प्रति समर्पित इस मेधावी विद्यार्थी को स्वास्थ्य ने सन् 1935 में एक और आघात दिया। आंखों में अत्यधिक सूजन तथा जहर फैलने के कारण शल्यक्रिया द्वारा दोनों आंखों को निकाल दिया गया किंतु बलवंत राय जी ने इस अवरोध को अपनी उन्नति में बाधक नहीं बनने दिया।

एक बार बलवंत राय जी को अपने सहपाठी से पंडित ओंकारनाथ ठाकुर जी की कोई रिकार्डिंग प्राप्त हुई, इसे सुनने के बाद तो बलवंत राय जी के अंतर्मन में पंडित ओंकार नाथ ठाकुर जी से गायन की शिक्षा लेने की तीव्रा इच्छा ने जन्म लिया। 'विक्टोरिया मेमोरियल अंध विद्यालय' के प्रबंधक श्री रतनशा भाभा जी के सहयोग से बलवंत राय जी को पंडित ओंकार नाथ ठाकुर जी का गुरु रूप में सानिध्य प्राप्त हुआ। 30 वर्षों तक गुरु के वरद हस्त की छाया में बलवंतराय जी ने अपनी संगीत साधना की। वर्ष 1950 में पंडित जी अपने गुरु जी के साथ काशी आ गये। यहाँ काशी हिंदू विश्वविद्यालय के श्री कला भारती (वर्तमान नाम संगीत एवं मंच कला संकाय) जिसे पंडित ओंकारनाथ ठाकुर जी तथा विश्वविद्यालय के प्रयास से स्थापित किया गया था। बलवंत राय भट्ट जी को यहाँ शिक्षक के पद पर नियुक्त किया गया। यहाँ आप ने अगले 30 वर्षों तक अनवरत रूप से शिक्षण कार्य किया। शिक्षण कार्य के साथ ही बलवंत राय जी देश के विभिन्न शहरों में तथा विदेश के बोस्टन, न्यू हैवन, शिकागो, पैसिडिना, एलिनॉय, टोरंटो इत्यादि शहरों में अपना सफल कार्यक्रम प्रस्तुत किए। पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग' एक बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी थे। पंडित जी एक सफल कलाकार के साथ ही एक अच्छे शिक्षक तथा उच्च कोटि के वाग्गेयकार भी थे।

वाग्गेयकार के रूप में पंडित जी

आप ने अनुमानतः 1300 रचनाएं की है।[1] आप की ये रचनाएं प्रकाशित पुस्तक भावरंग लहरी (3 भाग में) में संकलित की गई हैं। आप का संगीत तथा साहित्य दोनों ही पक्ष अच्छा था। कुछ पुरानी बंदिशों में ऐसा देखने को मिलता है कि राग का समय कुछ और है तथा बंदिश का भाव कुछ और, शब्द कुछ और कह रहे हैं। किन्तु पंडित जी ने इन सब बातों का विशेष ध्यान रखा। राग के अनुरूप ही भाव तथा शब्द का सृजन किया। आप ने अनेक अप्रचलित तालों तथा रागों में अपनी रचना का सृजन किया। पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग' जी अपने गायन में कठिन लयकारियों का प्रयोग करते थे, खासकर तराना में आप ने अत्यंत कठिन लयकारियों का प्रयोग किया हैं। आप के द्वारा रचित अन्य वन्दिशों में भी ऐसा देखने को मिलता है। पंडित जी की रचनाओं में विषय-वैविध्य की प्रचुरता है। पंडित जी ने श्रृंगार में जिस कुशलता से रचना की है, भक्ति की रचनाओं में भी इसी कुशलता का परिचय दिया तथा प्रकृति के सुन्दर चित्रण में भी अपना रचनात्मक कौशल दिखाया है। उदाहरणार्थ -

नायिका का चित्रण

राग- सारंग, ताल- झपताल

स्थाई- *सजन मोरे अब तुम घर आवो,*
पल पल जपूँ तुमरे नाम की माला,
कछु दिल में दया लाओ री।

अंतरा- *बन्दनवार बंधाऊँ, घर अंगना फूल बिछाऊँ,*
पहनाउंगी 'भावरंग' सारंग की तुमरे हिय स्वर माला,
पियु दरसन दे जिय हुलसावो 2।

प्राकृतिक चित्रण

राग- *गौड़मल्हार, ताल- त्रिताल*
स्थाई- *बदरिया सावन बरसन लागी,*
पिय सुमिरत हिय धरक धरक,
ज्यों बिजली चमकन लागी।
अंतरा- *पियु पियु करत पुकार पपियरा,*
सुनी सुनि सबद जरत मोरा जियरा,
'भावरंग' भेदन मन भावन,
पल पल तरसन लागी 3।।

भगवान गणेश की स्तुति

राग- *सारंग, ताल- त्रिताल*
स्थाई- *माँ गौरी के लाल गणराज,*
मनहूँ साकार सुरताल साज।
अन्तरा- *शिवभक्ति गीत हित गणनायक,*
सुसिद्ध स्वर दो सिद्धिविनायक,
परम प्रेम मय प्रणव विनायक,
'भावरंग' प्रभु यह विनय आज 4।।

पंडित जी ने अनेक नवीन रागों जैसे मधुस्वरावलि, भिन्न राजश्री, श्याम सारंग, मधुश्याम, पूर्वी विहाग इत्यादि तथा नवीन तालों जैसे सप्तरश्मि, विलास, आड़ा त्रिताल, पांच ताल, उल्लास, उडूराज, चन्द्रास्त, सरसी, वेद, पौराणिक, चतुरानन इत्यादि की भी रचना की तथा इनमें बंदिशों का भी सृजन किया। लुप्तप्राय 'केवाड़-प्रबंध' की रचना राग 'राजश्री' में द्रुत तीनताल में कर के पंडित जी ने अपनी सृजन कुशलता को प्रदर्शित किया। पंडित जी की रचना में विषय-वैविध्य के साथ ही शैली-वैविध्य में रचना कर के हर पक्ष पर अपने अधिकार होने की पुष्टि की है। आप की रचनाओं में ख्याल शैली के आधिक्य के साथ ध्रुपद, धमार, सादरा तथा लक्षण गीत, चतुरंग, तराना, त्रिट आदि की उपलब्धता भी प्रचुर मात्रा में हैं।

शिक्षक के रूप में पंडित जी

एक विद्यार्थी के जीवन में शिक्षक का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षक विद्यार्थी के जीवन को दिशा दिखाने वाला होता, अतः इस कार्य के लिए अत्यंत सावधानी, पवित्रता तथा सुचिता आवश्यक है क्योंकि यहाँ शिक्षक द्वारा हुई गलती का परिणाम विद्यार्थी के आगामी जीवन पर पड़ने की संभावना होती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'क्रो एंड क्रो' की पुस्तक 'इंट्रोडक्शन टू एजुकेशन' में शिक्षक के 60 गुण बताया गया है इनमें से कुछ इस प्रकार हैं- छात्रों की रुचि बनाए रखना, छात्रों में चिन्तन की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना, कुशाग्र बुद्धि, छात्रों की व्यक्तिगत समस्याओं पर ध्यान देना, सहयोग की भावना, प्रसन्न चित्तता, उदारता, आत्मसुधार की इच्छा, मैत्री पूर्ण व्यवहार, उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम निर्णय लेने की क्षमता, परिश्रमी, ईमानदार, विषय वस्तु का ज्ञान, नेतृत्व की क्षमता, धैर्यवान, विनोदी, शिक्षण में रुचि, विद्यार्थी के साथ कार्य करने में रुचि, व्यापक दृष्टिकोण इत्यादि। पंडित जी में उपरोक्त लगभग सभी गुण दृष्टिगोचर होते थे।[5] पंडित जी अपने शिष्यों को पुत्रवत स्नेह करते थे। शिष्यों को जिस भी रूप में आवश्यकता महसूस होती थी, उन्होंने सदैव उन का सहयोग किया। पंडित जी की पहली पुण्य तिथि पर पंडित जी के शिष्य तथा संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पूर्व संकाय प्रमुख, डॉ. चितरंजन ज्योतिषी जी ने बताया कि जब मेरे पास तानपूरा नहीं था तथा तानपूरा खरीद सकने की क्षमता भी नहीं थी तब गुरु जी (पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग' जी) ने अपना तानपूरा मुझे दे दिया और बोले अभ्यास में कमी मत करना। विद्यार्थियों के साथ एक और समस्या आती है वह है विषय के किसी पाठ में अरुचि। यदि किसी राग में विद्यार्थी अरुचि दिखाता था तथा गाना नहीं चाहता था तब पंडित जी उस राग को इस तरह से सिखाते थे कि वह राग विद्यार्थी को रुचिकर लगने लगे। पंडित जी की ज्येष्ठ पुत्री तथा शिष्या डॉ. स्वरवन्दना शर्मा जी ने बताया कि राग 'हमीर' उन्हें पसन्द नहीं था तथा वह इस राग को सीखना भी नहीं चाहती थीं लेकिन पंडित जी ने इस राग को ऐसी पद्धति से सिखाया कि स्वरवन्दना जी ने उस राग को उत्साह के साथ सीखा तथा इस राग में रुचि जागृत हो गई।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के संगीत संकाय की कक्षाओं में पंडित जी के धैर्य पूर्वक सिखाने की शैली से पं. ओमकार नाथ ठाकुर जी अत्यंत प्रसन्न रहते थे। पंडित बलवंत राय भट्ट 'भावरंग' जी के

अनेक शिष्य प्रतिष्ठित पदों पर कार्य कर चुके हैं (अब अवकाश प्राप्त हैं) जिनमें से ,प्रो. चितरंजन ज्योंतिषी, डां प्रदीप कुमार दीक्षित,डॉ. बनमाला पर्वतकर, डॉ ऋत्विक सान्याल, डॉ. अर्चना दीक्षित, श्रीमती वीणा सहस्त्रबुद्धे आदि हैं।

पंडित जी के भारतीय शास्त्रीय संगीत में अभूतपूर्व योगदान के लिए अनेक उपाधि एवं पुरस्कार प्राप्त हुए। जिनमें प्रमुख हैं संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार 2004, कालिदास सम्मान 2007-08, पद्मश्री 1990 इत्यादि।

पंडित बलवंत राय भट्ट जी का देहावसान 97 वर्ष की उम्र में 2 मई 2016 को हो गया। आपने जीवन पर्यन्त संगीत के लिए जो कार्य किया है वह अत्यंत सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

निष्कर्ष

पंडित जी एक कुशल गायक, आदर्श शिक्षक तथा उच्च कोटि के लेखक थे। आप के अनेक शिष्य प्रतिष्ठित कलाकार तथा शिक्षण संस्थाओं तथा अन्य सम्मानित पदों पर कार्यरत हैं अथवा अवकाश प्राप्त हो चुके हैं। आप के शिष्य समुदाय की सफलता आप के सफल गुरु होने का जीता जागता प्रमाण है। आप ने बंदिशों के शब्द की रचना में तथा इन शब्दों को राग में निबद्ध करने में अद्भुद क्षमता तथा मेधा शक्ति का परिचय दिया है। पंडित जी के द्वारा संगीत के लिए किये गये इन उत्तम कार्यों तथा संगीत जगत को 'भावरंग लहरी' जैसी मूल्यवान ग्रन्थ देने के लिए उन्हें सदैव सादर स्मरण किया जाएगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वाग्गेयकार पद्मश्री पं. बलवंत राय गुलाब राय भट्ट व्यक्तित्व कृतित्व एवं सांगीतिक योगदान (शोध प्रबंध) निर्देशक प्रो. प्रदीप कुमार दीक्षित शोधार्थी रश्मि प्रभा पुसालकर सन 1997 पृ. सं. 276
2. भावरंग लहरी, प्रकाशक- शारदा संस्कृत संस्थान, तृतीय संस्करण 2012, रचिता- पं. बलवंत राय भट्ट भावरंग' पृ. सं. 10
3. भावरंग लहरी, प्रकाशक- शारदा संस्कृत संस्थान, तृतीय संस्करण 2012, रचिता- पं. बलवंत राय भट्ट भावरंग' पृ. सं. 152
4. भावरंग लहरी, प्रकाशक- शारदा संस्कृत संस्थान, तृतीय संस्करण 2012, रचिता- पं. बलवंत राय भट्ट भावरंग' पृ. सं. 12
5. वाग्गेयकार पद्मश्री पं. बलवंत राय गुलाब राय भट्ट व्यक्तित्व कृतित्व एवं सांगीतिक योगदान (शोध प्रबंध) निर्देशक प्रो. प्रदीप कुमार दीक्षित शोधार्थी रश्मि प्रभा पुसालकर सन 1997 पृ. सं. 273

भिखारी ठाकुर के नाटकों में प्रयुक्त पारम्परिक लोक धुनों एवं छन्दों के प्रकार

*मो. इब्रान

**डॉ. सुरेन्द्र कुमार

सार–

भोजपुरी लोक नाट्य के आधुनिक प्रणेता भिखारी ठाकुर के नाट्य और उन नाटकों में प्रयोग किए गए संगीत में उनके द्वारा सामाजिक कुरीतियों, अनैतिक आचरणों और रूढ़िवादी परम्पराओं पर जिस प्रकार उन्होंने कुठाराघात किया और समाज को सुधारने के लिए जो प्रेरणा दिया है उन सभी उल्लेखनीय कार्यों का जितना भी वर्णन किया जाए यह उनके कलात्मक जीवन के लिए अल्प ही दिग्दर्शित होता है। इनके नाट्य और संगीत का प्रदर्शन देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक संकल्पित लोक राष्ट्रभक्त थे। जिन्होंने समाज की सेवा करने के लिए नाट्य एवं संगीत विधा को अपना मुख्य औजार बनाया और नाट्य प्रदर्शन को सहज, सुलभ, और आकर्षक बनाने के लिए पारम्परिक लोक धुनों और छंदों का इन नाटकों में बड़े ही तन्मयता से सहारा लिया। इन्होंने सैकड़ों लोक गीतों को पारम्परिक लोक धुनों और छन्दों में ढाला है जैसे–बिरहा, पूर्वी, कजरी, बारहमास, झूमर, जतसारी, निर्गुन आदि लोक धुनों तथा चौपाई, चोबोला, दोहा, सोरठी, सवैया, कवित्त, आदि छन्दों को उन्होंने अपने सभी स्वरचित नाट्य के कहानियों के अनुरूप संगीत को आधार बनाकर नाटक को अत्यन्त रोचक और आकर्षक बनाया और अनेकानेक पारिवारिक, सामाजिक, रूढ़िवादी-परम्पराओं, कुरीतियों और समकालीन समस्याओं के प्रति ग्रामीण दर्शकों को नाटकों द्वारा दिखा और सुना कर जागरूक भी किया।

***मुख्य शब्द–** लोक, परंपरिकधुन, छंद, नाट्य, संगीत।*

परिचय–

भिखारी ठाकुर भोजपुरी लोक रंगमंच के एक अत्यन्त लोकप्रिय कलाकार है, थे और रहेंगे, जिन्होंने भोजपुरी नाट्य एवं लोक संगीत को एक वृहद आयाम दिया। बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल का बूढ़ा, बच्चा-बच्चा और जवान तथा गाँव का हर एक-एक कोना इनके द्वारा निर्मित गीतों और धुनों का दीवाना है। आप इनकी प्रसिद्धि का अनुमान इस बात से लगा सकते है कि इनके नाटकों को देखने के लिए लोग घण्टों लाइन में खड़े होकर टिकट लेते थे और उस समय शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रशासनिक मदद का भी सहारा लेना पड़ता था। दर्शकों के करुणामय हृदय से रस निष्पति का श्रेय नाटक में प्रयोग होने वाले गीतों के भावात्मक पारम्परिक लोकधुनों को जाता है। इन्होंने लोक संगीत के पारम्परिक धुनों को आधार बनाकर नाट्य गीतों को लिखा और अपने नाटकों में इन लोक गीतों की मधुरम्यता से नाट्य प्रदर्शन को सुशोभित किया। इनके द्वारा लिखे गीतों में सर्वाधित श्रृंगार, करुण, हास्य, वीर और भक्ति रस की प्रधानता पाई जाती है। भिखारी ठाकुर को काव्यशास्त्र का ज्ञान नहीं था लेकिन वे अपने गीतों में व्याकरण की शुद्धता से अधिक ताल-लय, गति-यति, गीत के आरोह-अवरोह, लघु-गुरु के नियमों एवं पारम्परिक लोक धुनों के अनुकरण पर अधिक बल देते थे। पारम्परिक धुन

* शोधार्थी, संगीत विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय सिक्किम

**सहायक आचार्य (गायन), संगीत विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय सिक्किम

एवं रस-भाव की प्रधानता के कारण उनका गेय सरल और अत्यन्त प्रभावी होता था।

ठाकुर जी के नाट्य गीतों में प्रयुक्त छंद के प्रकार–

इन्होंने दोनों प्रकार के मात्रिक एवं वार्णिक छंदों में अपने नाट्य-गीतों को पिरोया है और लघु एवं गुरु के नियमों का ख़ास ध्यान रख कर गीतों की रचना की। चौपाई, चौबोला, दोहा, सोरठी, सबैया एवं कबित्त के छंदों में इन्होंने सैकड़ों नाट्य-गीतों को लिखा जो आज भी इनके नाट्य-गीतों के आकर्षण का मुख्य कारण है।

चौपाई–

चौपाई भिखारी ठाकुर के नाट्य-गीतों में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाला छंद है, जिसका प्रयोग मुख्यतः भगवान की स्तुति अर्थात मंगलाचरण एवं भजन-कीर्तन के गीतों में होता है। इनके लगभग सभी नाटकों की शुरुआत चौपाई गायन से ही होता है। यह एक संममात्रिक छंद है जिसके चारों चरणों में समान मात्राएँ अर्थात् 16-16 मात्राएँ होती है और अन्तिम चरण में गुरु-गुरु होता है।[1]

उदाहरण–('पुत्र-बध' नाटक से)

गौरी-सुत गनेस पद बंधे।
एह नाटक में करहु अनंदे।
दुइ घरनी एक बालक जिनके।
स्रोता कथा सुनहु अब तिनके।
अइसन कवि में होत अनीति।
गावत बानीं देखहु जे बीती।
सुनहु थोड़ मँह मति अनुसारी।
राम-राम कहि कहत भिखारी।।

चौबोला–

चौबोला सर्वाधिक लोक-गीतों में प्रयोग होने वाली चार पंक्तियों की एक छंद शैली है। जिसका प्रयोग भिखारी ठाकुर ने अपने नाट्य-गीत के रूप में किया। यह एक अर्धमात्रिक छंद है जिसके प्रत्येक चरण में 8 एवं 7 मात्राओं के विराम से कुल 15 मात्राएँ होती है। अन्त में लघु-गुरु का भी विधान है।[2]

उदाहरण– ('बिदेसिया' नाटक से)

परदेस जाइब हे प्रिये,
घर में रहा तनी धीरे से।
आँख से आँसू आ रहे,
कपड़ा भिंजत हैं नीर से।।
तन-मन जिगर से कहत हूँ,
भगवान राखीहें सरीर से।
कहते 'भिखारी' तोहि सँगे
आ के फगुआ खेलब अबीर से।।

दोहा–

दोहा भिखारी ठाकुर के नाट्य-गीतों में विशेष महत्व रखता है। उन्होंने जटिल से जटिल बातों को बहुत ही सरलता के साथ दोहा के माध्यम से दर्शकों के दिल तक पहुँचने का काम किया है। दोहा एक अर्द्धसम मात्रिक छंद है। जिसके विषम चरणों में 13-13 मात्राएँ एवं सम चरणों में 11-11 मात्राएँ होती है अर्थात इस छंद के पहले तथा तीसरे चरण में 13-13 मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में 11-11 मात्राएँ होती है।[3] उदाहरण– ('राधेश्याम बहार' नाटक से)

यशोदानंदन सखि सहित, ललिता राधे बलराम।
मोहि हिय ब्रज के ऐश्वर्या ले, बसहु सदा घनश्याम।।

सोरठी–

यह भी दोहा की तरह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। परन्तु इस छंद के चरणों का मात्रा विन्यास दोहा के विपरीत है। इस छंद के विषम चरणों में 11-11 मात्राएँ एवं सम चरणों में 13-13 मात्राएँ होती है।[4]

उदाहरण–('बिदेसिया' नाटक से)

पिया कहलन बहरा जाइबि,
कुछ दिन में लवटि के आइबि।
एकिया हो मोरे राम सुकवा,
उगल तब गइलन भागल हो राम।।
जाये नाहीं दिहितीं कबहूँ,
लाखो तरहे कहितन तबहूँ।
एकिता हो मोर राम,
पहिले से रहिती तनी भर जागल हो राम।।

सवैया–

सवैया के चरणों में मात्रा उपस्थिति में भिन्नता पाई जाती है। सवैया के कई भेद है और इनके भेदों के अनुसार मात्राएँ सुव्यवस्थित हैं। इसके चरणों में मुख्यतः 22 से 26 मात्राएँ होती है। भेद–

1. मदिरा सवैया-22 मात्राएँ
2. मत्त गयंद सवैया-23 मात्राएँ
3. किरीट सवैया-24 मात्राएँ
4. दुर्मिल सवैया-24 मात्राएँ
5. सुन्दरी सवैया-25 मात्राएँ
6. कुन्दलता सवैया-26 मात्राएँ।[5]

उदाहरण–('कलयुग-प्रेम' नाटक से)

बिपति अबहीं नहिं मिलत बा,
हमरे सँग में तुम खेलहु खेला।
साँच बतावहु कूर कपूत भये
कवना गुरु से कब चेला।
मई-बेटा के सिखा कर पोढ़
किया थोरहीं दिन में अलबेला।
कहे 'भिखारी' भखौटी उतारब पाइब
मैं कहियो जो अकेला।
अकेला भेंटा हाइब त
तोहार चमड़ी ओदार देब।

कवित्त–

कवित्त एक 'वार्णिक छंद' है। जिसमें वर्णों की संख्या की गणना की जाती है। 3 वर्णों के समूह को गण कहते हैं। कवित्त के प्रत्येक चरणों में वर्णों की संख्याएँ 27 से 33 तक हो सकती है। भेद–

1. धनाक्षरी (मनहरण) कवित्त-31 वर्ण तथा अन्त गुरु का विधान।
2. रूप धनाक्षीर कवित्त-32 वर्ण तथा अन्त में लघु का विधान।
3. देव धनाक्षीर कवित्त-33 वर्ण तथा अन्त में 3 लघु का विधान।[6]

उदाहरण– ('गंगा-स्नान' नाटक से)

प्राननाथ! मेरे सिरताज! कर ज़ोर कहूँ,
मेरो मन चाहत चली गंगा असनान के।
दोनों प्राणी मिलिके संतुक्त जहाँ बास करब,
चरन दबाई कर हरब हैरान के।।
देकर तिलांजुलि कई पुस्त के उधार करब!
उत्तम महातम सब कहत बिप्र दान के।
अरजी 'भिखरी' पर मरजी कर शीघ्र नाथ!
पैर पधारिये सब सजाकर समान के।।

यति– गायन या पाठ के बीच के ठहराव अर्थात छंद में प्रयोग किए जाने वाले विराम को यति कहा जाता है।

गति– गायन या पाठ अथवा छंद के लयात्मक बहाव को गति कहते हैं।

नाट्य–गीतों में प्रयुक्त पारम्परिक लोक धुन–

भिखारी ठाकुर के नाट्य-गीतों की सुन्दरता का मुख्य केन्द्र बिन्दु भोजपुरी पारम्परिक लोक धुन है। जिसे आधार बनाकर भिखारी ठाकुर ने अपने गीतों के माध्यम से अपने नाट्य परम्परा को विश्व रंगमंच पर स्थापित किया। संस्कार गीत, जाति-गीत, श्रम गीत और मौसमी गीत के पारम्परिक लोक धुनों में इन्होंने अपने नाट्य-गीतों की रचना की। जिसमें विवाह-गीत, निर्गुन, बिरहा, पचरा, जतसार, कजरी, होली, चैता, बारहमासा पूर्वी, एवं झूमर गीत के धुनों को मुख्य स्थान दिया गया।

संस्कार गीत–

विवाह संस्कार :– परिछावन-गीत, गुरहथी-गीत, एवं विदाई गीत अन्त्येष्टि संस्कार :–निर्गुन

जाति गीत– बिरहा (अहीर), पचरा (दुसाध)
श्रम गीत– जतसार गीत
मौसमी गीत– कजरी, बारहमासा
अन्य गीत– पूर्वी, झूमर

परिछावन गीत–

परिछावन-गीत विवाह संगीत का एक प्रकार है। बारातियों के साथ दूल्हे के आगमन पर दूल्हे को दुल्हन की माँ, भाभी, चाची, मौसी और फुआ के द्वारा परिछावन किया जाता है अर्थात दूल्हे का पान पत्ता, गोबर, गीला भात, सिन्दूर से नज़र उतार कर आरती उतारी जाती है और साथ ही एक विशेष प्रकार का गीत गाया जाता है जिसे परिछावन गीत कहते हैं।[7]

उदाहरण–('बेटी-बेचवा' नाटक से)

पटना सहरिया से अइलन सोना भइया,
ले अइलन सोनवां बनाइ हे।
से सोनवा पहिरेलन दूल्हा झांटू दूल्हा,
गणपति-गउरी मनाइ हे।
जामा, पैजामा, जूता,
रचि-रचि पहिरेलन पूता,
पालकी में बइठे हरखाइ हे।
पारिछत आई माई, मंगल गाइ-गाइ;
बाजत बा बेन-सहनाइ हे।
परिछे भउजाई आई, नज़र ना लागे पाई;
काजर दिहली लगाइ हे।
गोबर के पिंडियां पाछा,
बिगला पर लागे आछा;
लोढ़ा घुमावत बाड़ी माई हे।
असहीं बरात जात, दुल्हा के सुगरः गात;
साथे नेवतहरी पाहुन भाई हे।
बेरा सोहात कर, चन्दन लिलार पर;
कहत भिखारी ठाकुर नाई हे।

गुरहथी गीत–

शादी में दूल्हे के बड़े भाई के द्वारा दुल्हन के लिए वस्त्र, आभूषण और मेकअप सामग्री लाने की प्रथा है जिसे गुरहथी कहते हैं। गुरहथी गीत एक प्रकार का गाली गीत है। जिसमें सरातियों द्वारा बरातियों को मुख्य रूप से दूल्हे के बड़े भाई को परिहास के रूप में गली दिया जाता है। यह महिलाओं के समूह द्वारा गया-बजाया जाता है। जो पूर्णरूपेण हास्य रस प्रधान गीत होता है।

उदाहरण–('बेटी-बेचवा' नाटक से)

बइठल बरनेतिया ओरी तर,
बान्हि-बान्हि पगरिया करिया-करिया;
देखि हो देखि के हँसत बाटे नगरिया।
काढ़ि द चटक हो देवा अपनी हो पुतरिया;
लगन-महूरत बीतत बाटे शुभ हो घटिया।।
बड़का भइया तानि हो दिलहन अपनी हो चदरिया;
धीरे-धीरे लेइ हो अइलन घर में से बहरिया।
गाइ के भिखारी हो ठाकुर कइलन मसखरिया;
काहे ना ले अइल ए भसुर अपनी महतरिया?

विदाई गीत–

यह शादी के अन्तिम पड़ाव का गीत है जो मूलतः बिछोह गीत है। जिसमें करुण रस की प्रधानता होती है। दुल्हन अपने परिजन से आशीर्वाद लेती है और अपने परिजन से बिछड़ने की सोच में स्वरभंगित होकर रोती है। परिजन भी अपने दिल के टुकड़े से विदा होकर विलाप करते हैं और दुल्हन को नए घर में खुशी एवं समृद्धि मिले यह भगवान से प्रार्थना करते है।

उदाहरण–('बेटी-बेचवा' नाटक से)

जमते मइया गाहुर दे के,
काहे ना दिलहू मेरी?
हमरा के नाहक पालन करे
मे सासत सहलू बगरी।।
आठ मास नव उदर का भीतर,
बाहर गोद मँझारी। दूध पिया के,
तेल लगा के, काया के दिहलू सँवारी।।
बानी बालक बयस के थोरी, नइखे बुद्धि-बिचारी।
जो कुछ चूक होत अनजानत,
माफ़ करहु महातारी।।
ना कुछ चूक होई अब हम से,
परतानी पाँव तिहारी।
कहे 'भिखारी' मति द मइया घर से हमें निकरी।।

निर्गुण–

भक्ति एवं करुण रस से ओत-पोत निर्गुण गीत हिन्दू संस्कृति के अन्तिम 'अन्त्येष्टि' संस्कार का गीत है जिसमें स्वर्ग-नरक तथा मनुष्य के कार्मों का वर्णन किया जाता है। कभी-कभी इस गीत को दो अर्थों को अर्थात ईश्वर की कृपा और मनुष्य के कर्मों को सम्मिलित किए हुई एक ही वाक्य में गाया जाता है। इस गीत के प्रत्येक वाक्य को 'अहो राम' या 'ए राम' जैसे शब्द से शुरू होकर एक विशेष आलाप के साथ 'हो रामा' पर खत्म किया जाता है। इस धुन को तार और मध्य सप्तक में गाया बजाया जाता है। पिया के वियोग में प्रेमिका की व्यथा को भी इस गीत में संदर्भित किया जाता है।

उदाहरण–('बिदेसिया' नाटक से)

ए राम, जोगीन बनि के हम,
करब मालिक के उदेस। ए राम...
तूरि के गला के हार, देहब अगिया में जार,
छोड़ि के परपइलन परदेस। ए राम...
टिकुली-सेनूर तजि, पिउ-पिउ भजि-भजि,
छूरा से छिलाइ कर केस। एक राम...
गहना सोना-चानी के, लोढ़ा से खानि-खानि के,
एही सोने बनबि अनभेस। ए राम...
कहत 'भिखारी' नाई अंग में भभूत लाई,
तूमा लेके घूमब हरमेस। ए राम...

बिरहा–

साधारणतः बिरहा अहीर (यादव) समुदाय द्वारा गाया जाने वाला उमंग भरा मर्दाना गीत है। जिसे अहीर लोग पशुओं को चराते समय और भिन्न-भिन्न शुभ अवसरों पर गाते-बजाते हैं। चाहे कोई भी शुभ अवसर हो शादी-विवाह, पर्व या कोई अन्य अनुष्ठानिक कार्य अहीर लोग बिरहा गीत को ही प्राथमिकता देते है। वीर रस, शृंगार रस और करुण रस प्रधान बिरहा गीत के धुन को भिखारी ठाकुर ने अपने कई नाट्य-गीतों में प्रयोग किया है। बिदेसिया नाटक में इन्होंने पति के परदेस जाने पर पत्नी का पति के इन्तज़ार में विलाप को बिरहा के धुन में पिरोया है।

उदाहरण–('बिदेसिया' नाटक से)

मालिक चलि गइलन परदेस, घर में छोड़ि के;
हमरा तनिको भर धरात नइखे धीर।
तनिको भर धरात नइखे धीर, बटोहि भइयाँ!
कइक जनम के उदय भइल पाप के कमइया।
चढ़ल जवानी ज़ोर परदेस गइलन कन्हइया;
बीच धार में दहत बाटे छेद कइल नइया।
पियऊ बिनु जगत में ना लउकत बा खेवइया;
कहत 'भिखारी' पंच लोग में देत बानीं दोहाइया।
हमारा तनिको भर धरात नइखे धीर।

पचरा–

पचरा गीत मुख्य रूप से भूत-प्रेत को भगाने से जुड़ा हुआ गीत है। जिसे ओझा लोग देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए गाते हैं। इसे जाति विशेष गीत भी कहा जाता है क्योंकि ये अधिकतर दुसाध (पासवान) समुदाय के द्वारा गाया-बजाया जाता है। लेकिन भिखारी ठाकुर ने इन धुनों को अपने नाटकों के परिदृश्य के अनुसार भिन्न-भिन्न अवसरों पर प्रयोग किया है।

उदाहरण ('बिदेसिया' नाटक से)

बात एक सुनील बिदेसी भइया,
घरवा से चलि अलहूँ।
तोहरा जनानावा के दुखहा देखी के
सुनि के पतिअलहूँ।।
टीसन पर आइ बिदेसी
भइया रेल पर चढ़ि गलहूँ।
दिन-रात लागल बिदेसी कलकत्ता में उतरलहूँ।।
खोजत-खोज बिदेसी कतहूँ
पता तनिको ना पलहूँ।
प्यारी का कारनवे पाँच गो
रोपेआ अबले ना कमलहूँ।
झूठहूँ का फेर में मत परिह,
असले कहल कहलहूँ।
कहत 'भिखारी'
आजु हम भेजब कसहूँ बबुआ बलहूँ।

जतसार–

प्रियतम के वियोग में रात के तीसरे पहर में जाँता पीसते हुए जतसार गीत को नवविवाहित स्त्रियों द्वारा यह गाया जाता है। इस गीत में स्त्री अपने गृहस्थ जीवन के दुःखों का वर्णन करती हैं। कभी-कभी ग्रामीण महिलाएँ किसी विशेष कार्य के लिए समूह में चक्की पीसती है और इस गीत को मस्ती में गाती है। चुकी इसे रात के तीसरे पहर गाया जाता है। इसलिए इसकी आवाज़ दूर-दूर तक सुनाई देती है। यह एक करुण रस प्रधान गीत होता है।[8] इसलिए इसे भिखारी ठाकुर ने अपने नाटक में विलाप गीत के रूप में प्रयोग किया।

उदाहरण–('बिदेसिया' नाटक से)

जवना जुने भइल से सुमंगली त,
जाली जे भाग जागल हो राम।
ए सामीजी, नइहर से नेह पूरी दिहलीं त,
ससुरा सुहावन लागल हो राम।
ए सामीजी, घारावा-भीतारावा बइठाइके त,

गइल कवना दो मुलुकावा भागल हो राम।
ए सामीजी, खातावा में पातावा पेठइत त,
सुनिके अगरइतीं पागल हो राम।
ए सामीजी हाथावा-गोड़ावा चउरि के,
लोहवा लाल कइके,
ईहे हवे देहिया दागल हो राम।
ए सामीजी, सुसुकि-सुसुकि लोरवा पोंछत बानीं
त, केहु नइखे सुनत रागत हो राम।
के साजीनि, कहत 'भिखारी' नाई,
पतइन, खाइ के, गुनल ना,
मिमिआली छागत हो राम।

कजरी–

कजरी बिहारी की लोक पारम्परिक धुनों में सर्वाधिक लोकप्रिय धुन है जिसे वर्षा ऋतु में महिलाएँ झूम-झूम कर गाती है। इस समय स्त्रियाँ अपने मायके में होती है और अपने आप को ससुराल घर की रीति-रिवाज़ से पूर्ण स्वतन्त्र महसूस करती है। सहेलियों के साथ मिलकर झूला झूलती है और आनन्दित होकर कजरी गाती हैं। यह मुख्य रूप से शृंगार और करुण रस प्रधान गीत है। भिखारी ठाकुर ने इसके मूल रूप और रस को ध्यान में रख कर विभिन्न परिदृश्य निर्माण के लिए इस धुन का उपयोग अपने नाट्य-गीत में किया।

उदाहरण–('पुत्र-बध' नाटक से)

खीस में बोलत बाड़ू जानी,
राख पगड़ी के पानी;
चनीव भाइल बाटे मँहगा लगनवां में।।
गहना पेन्हबू झमाझम,
कहाँवाँ चोरी करीं हैम;
अबहीं नइखे तनिको गम तहरा मनवाँ बमें।।
बबुआ भइलन सादी जोग,
हँसी टोला-परोसा लोग;
रोग हमरा बाटे तहरा टिपुदनवां में।।
घर में धइल बाटे अन,
देखि के भइलू धनेधन;
बोलत बाड़ू चनाचन, मन का सानवाँ में।।
कहत 'भिखारीदास' जे दिन होई रुपया पास;
आस पूरन होई, तोप देब गहनवां में।।

बारहमासा–

बारहमास एक विलापिय गीत है जिसमें बाहर महीनों का वर्णन मिलता है। बारहमासा गीत में दुख, इन्तज़ार, प्रेम और विलाप का समावेश होता है। बारह महीनों में नए-नए मौसम का आगमन, प्राकृतिक में नई-नई बदलाव और बसन्त में कोयल की कूक एवं बारिश की पहली बूँद, प्रीतम को प्रदेश में रह रहे प्रियतमा की याद दिलाती है और वो अपने पति को याद कर बारह महीनों का वर्णन करते हुए बारहमास गीत को गाती है तथा अपने प्रिय की याद में विलाप भी करती है।[9]

उदाहरण–('बिदेसिया' नाटक से)

आवेला आसाढ़ मास, लागेला अधिक आस,
बरखा में पिया घरे आइतन बटोहिया।
पिया अइतन बुनियाँ में,
राखि लिहतन दुनियाँ में,
अखड़ेला अधिका सवनावाँ बटोहिया।
आई जब मास भादो,
सभे खेली दही-कादो,
कृस्न के जनम बीती असहीं बटोहिया।
पलंग बा सूनवाँ, का कइलीं एगुनवाँ से,
भारी ह महिनवाँ फगुनवाँ बटोहिया।
अबीर के घोरि-घोरि,
सब लोग खेली होरी रंगवाँ में
भँगवा परल हो बटोहिया।
कोइलि के मीठी बोली,
लागेला करेजे गोली,
पिया बिनु भावे ना चइतवा बटोहिया।
चढ़ी बइसाख जब, लगन पहुँची तब,
जेठवा दबाई हमें हेठवा बटोहिया।
मंगल करी कलोल, घरे-घरे बाजी ढोल,
कहत 'भिखारी' खोज पिया के बटोहिया।

पूर्वी–

द्रुत लय में गाए जाने वाले भोजपुरी लोक-नाट्य पारम्परिक धुनों में सर्वाधिक लोकप्रिय धुनों में एक है 'पूर्वी' लोक धुन, जुसमें शृंगार रस की प्रेम रसधार और करुण रस की वेदनाओं की अनुभूति श्रोताओं

को एक साथ होती है। इसकी धुनें गहरी करुणा के साथ कर्णप्रिय और मधुरता को अपने में समाहित किए हुए रहती है जो श्रोताओं के रोंगटे खड़े कर देती हैं।[10] यहीं कारण है कि भिखारी ठाकुर ने अपने नाट्य गीतों में पूर्वी को एक विशेष स्थान दिया है।

उदाहरण–('बिदेसिया' नाटक से)

सिरि गणपति के चरन के सरन गहि,
कहि के सुनावत बानीं गीत में बिदेसिया।
मचिया ऊपर धनि, छतिया में हानि-हानि,
पति के धयान ध के, रोवे प्यारी धनियाँ।

झूमर–

झूमर महिलाओं के समूह द्वारा हल्के नृत्य के साथ भोजपुरी क्षेत्र में सर्वाधिक गाया-बजाय जाने वाला लोक गीत है। यह सदाबहार लोक गीत है इसे सभी ऋतु में, सभी समुदाय के द्वार सभी छोटे बड़े उत्सव में सुन्दर स्त्रियों के झुण्ड के द्वार गाया-बजाया जाता है। झूमर बिहार के महिलाओं का सबसे अधिक पसन्दीदा लोक गीत है। जब भी ये सुन्दर स्त्रियाँ खुश होती है या मस्ती करने का उत्सव इन्हें मिलता है, झूम-झूम कर झूमर गाने लगते हैं। इसकी धुने इतने कर्णप्रिय और मधुर होते हैं कि मानवीय हृदय स्वभावतः उस ओर आकर्षित हो जाती है। भिखारी ठाकुर के द्वारा इनके नाट्य गीतों में सर्वाधिक झूमर गीत का ही उपयोग किया गया है। जब नाट्य परिदृश्य में नायिकाएँ झूमर गीत पर हर्षित होकर थिरकती हैं तो दर्शकों के भी पैर स्वतः थिरकने लगते है। यह एक मनोहर दृश्य होता जब रस निष्पति से दर्शकों का मन तृप्त हो जाता है।

उदाहरण–('बेटी-बेचवा नाटक से)

ननद अपन भइया सो वनवा द हो,
हमरा नाक के झुलनियाँ।
तीन पाढ़ के सारी मँगा द,
रँगल झूला बैगनियाँ। ननद...
छोटे झूला के छव आँगूर तोई,
लागल पीठ पर कमनीयां। ननद...
चन्द्रहार, हैलक, बननी,
झूमका पाँव में के पैंजनियाँ। ननद...
बाजू, बहरबूटा, जोसन,
कँगना पर मछुआ के घनियाँ। ननद...
कहत 'भिखारी' बिआह भइल
खुसी से, चढ़ल सोना-चानियाँ। ननद...

निष्कर्ष–

भिखारी ठाकुर के भोजपुरी लोक नाट्य में सांगीतिक छंद एवं पारम्परिक लोक धुनों का बड़ा ही विशेष महत्व है। लोक नाट्य, लोक नृत्य, लोक वाद्य एवं लोक संगीत के विभिन्न प्रारूपों का विस्तार इन छंदों और धुनों के बिना असंभव सा प्रतीत होता है। भोजपुरी के महान कलाकार भिखारी ठाकुर ने भी अपने नाट्य-गीतों को इन छंदों और धुनों में ही पिरोया है जो नाट्य परिदृश्य को दर्शकों के लिए आकर्षक, सुन्दर और प्रभावशाली बनाया है जो सामाजिक कुरीतियों, सांस्कृतिक उत्थान में अवरोधकों की ग्रामीण जनता में से दूर करने का यह सभी सांगीतिक नाटक एक सबल माध्यम के रूप में दिखाई देता है। अब इसके पुनः विकास और आधुनिकीकरण की ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता दिखाई पड़ती है। इस लेख में अनेकानेक छंदों और पारम्परिक लोक धुनों के प्रकार, विशेषता और प्रयोग का वर्णन किया गया है। इस प्रकार के लेखों से हमारी संस्कृति और परंपरा संरक्षित रहेगी और राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय साहित्यिक मंच पर हमारी संस्कृति और परम्पराओं को प्रतिष्ठित रूप से पहचान भी मिलेगी ऐसी हम अपेक्षा करते हैं।

सन्दर्भ सूची–

1. शर्मा, राम किशोर (2021) इकाई-14 छंद स्वरूप और प्रकार, नई दिल्लीः इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, पृष्ठ-108
2. https://educalingo.com/hi/dic-hi/caubola
3. https://www.hindisahity.com/chhand-pribhasha-bhed-udaharan/
4. शुक्ल, शिवप्रसाद (2019) इकाई-12
   कबीर के काव्य में छंद और अलंकार, नई दिल्लीः इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, पृष्ठ-56

5. https://hindisarang.com/chhand-in-hindi/
6. शर्मा, राम किशोर (2021) इकाई-14 छंद स्वरूप और प्रकार, नई दिल्लीः इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, पृष्ठ-185
7. तिवारी, हंसकुमार और शर्मा, राधावल्लभ (1977) भोजपुरी संस्कार-गीत, पटनाः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृष्ठ-350-356
8. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव (1770) भोजपुरी लोक-गीत प्रयाग : हिन्दी संगीत साहित्य, पृष्ठ-26
9. यादव, वीरेन्द्र नारायण; (2005) भिखारी ठाकुर रचनावली, पटनाः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृष्ठ-38
10. कुमार, डॉ. सुरेन्द्र (2019) भोजपुरी संस्कृति एवं लोक नाटकों में सांगीतिक परम्परा, नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ-130

संदर्भित नाट्य सूची–

1. बिदेसिया
2. बेटी-बेचवा
3. कलयुग-प्रेम
4. पुत्र-बध
5. राधेश्याम
6. गंगा-स्नान

मध्य भारत की जनजाति के संस्कार गीत : एक अध्ययन

अरुण कुमार

शोध सारः-

आदिम शैली में अपना जीवन-यापन करने वाली प्रजाति जिस के विचार में रुढिवादिता होती है, जनजाति अभिधान प्राप्त करते है। विश्व में दूसरी सबसे बड़ी जनजातीय जनसंख्या वाले भारत देश में अनेक जनजातियाँ रहती हैं जो अपने संस्कारों के आधार पर एक दूसरे से भिन्न हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में मध्य भारत में निवास करने वाली जनजातियों जैसे कोल, भील, गौंड इत्यादि के संस्कार गीतों के अध्ययन का लिखित रूप है।

इस शोध कार्य को करने में मैंने पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से तथ्य सामग्री प्राप्त करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध पत्र किसी भी पत्रिका अथवा पुस्तक में पूर्ण अथवा आंशिक रूप से न तो प्रकाशित किया गया है और न ही किसी पुस्तक अथवा पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजा गया है।

सूचक शब्दः- *जनजाति, साहित्य, समुदाय, परिभाषाओं, धारिता, वर्ग*

उद्देश्यः-

मध्य भारत के जनजातियों के संस्कार गीत पर विचार करने का मेरा मुख्य उद्देश्य है कि मैं इन गीतों में निहित सांगीतिक, साहित्यिक तथा भावनात्मक तत्व को गहराई से समझ सकूँ। मुझे आशा है की इस शोध पत्र के माध्यम से जनजातीय संस्कार गीतों को लिखित रूप में प्रस्तुत कर सकूँ, जो कि भविष्य में इस विषय से सम्बन्धित एक उपयोगी तथ्य सामग्री के रूप में उपलब्ध हो सकेगी।

प्रस्तावना :-

प्रस्तुत शोध पत्र में मध्य भारत की जनजातियों के संस्कार गीतों का अध्ययन प्रस्तावित है। मध्य भारत में निवास करने वाली जनजातियों का हिन्दू संस्कृति से निकटता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, प्रस्तुत शोध-पत्र में वर्णित संस्कार गीतों से इस बात का सहज अनुमान होगा।

विषय प्रवेशः-

मानव का वर्तमान स्वरूप उसके आदिम संस्कृति के परिष्करण का परिणाम है। वर्तमान जनजातीय संस्कृति आदिमानव के निकट समझी जा सकती है। जनजातीय संस्कृति अपनी प्राचीन परम्पराओं तथा रूढ़ विचारों के कारण विशिष्टता का अंगीकरण करती है। जनजातीय संस्कृति, जनजातियेत्तर संस्कृतियों से सभ्यता के आधार पर भिन्नता दर्शाती हैं। सृष्टि के आरम्भ में मानव पूर्णतः असभ्य था। समय के साथ उसने अपनी सभ्यता का विकास किया। इस विकास की दौड़ में मानव समाज का एक वर्ग पिछड़ता गया जो आज भी अपनी आदिम संस्कृति से बहुत अधिक परिवर्तित नहीं हो सका है। जो वर्ग अपनी सभ्यता के विकास की ओर उन्मुख रहा उस ने आज 'सवर्ण' अभिधान प्राप्त किया है तथा जो अविकसित रह गया वे 'जनजाति' शब्द से अभिहित हैं। 'मानवशास्त्रीय साहित्य में अंग्रेजी शब्द ट्राइब के समानार्थक कई नामों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए आदिम (प्रिमिटिव), देशज (इंडिजेनस), देशी जातियां (एबोरिजिनल्स), मूल निवासी (नेटिव), भोला-भाला (नैव), जंगली (सेवेज),

* शोधार्थी, संगीत संकाय, राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

आरंभिक निवासी (ओरिजिनल सेटलर्स), आदिवासी, असभ्य, बर्बर, वन्य-जनजाति, वनजाति, दलित वर्ग (डिप्रेस्ड क्लासेज), सरल समाज, पिछड़ा हिन्दू (बैकवर्ड हिन्दूज) इत्यादि। भारत में जनजातियों का सम्वैधानिक नाम अनुसूचित जनजाति (शेड्यल्ड ट्राइबस) है।'

आर. एन. मुखर्जी के अनुसार उस मानव समूह को जनजाति कहा जाता है जिसके सदस्य आम अभिरुचि, प्रदेश, भाषा, सामाजिक नियम तथा आर्थिक पेशों से बंधे होते हैं।

डॉ. रिवर्स के अनुसार जनजाति सरल प्रकार का सामाजिक समूह होती है जिसके सदस्य आम बोली का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध जैसे आम उद्देश्य की पूर्ति के लिए साथ-साथ काम करते हैं।

डी. एन. मजूमदार के अनुसार जनजाति परिवारों का एक समूह होती है जिसके सदस्य एक ही भाषा का प्रयोग करते है, एक ही क्षेत्र में निवास करते हैं, विवाह तथा पेशे से सम्बन्धित समान निषेधों का पालन करते हैं तथा उनके बीच सुविकसित पारम्परिक विनिमय तथा आपसी लेन-देन की व्यवस्था पायी जाती है।

''भारतीय जनजाति के इतिहास पर विचार करने से पूर्व एक तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है। वह यह है कि जनजाति शब्द से बोध में आने वाले भारतीय वनवासी समाज की पहचान ब्रिटिश काल की जनगणनाओं से प्रारंभ हुआ। परतंत्र भारत में ब्रिटिश सरकार ने सुनियोजित योजना के तहत भारत की एक बड़ी वनवासी जनसंख्या को शेष हिन्दू समाज से अलग करने की कोशिश की। ब्रिटिश काल में यह सम्भव भी था, जब सम्पूर्ण आदिवासियों को गैर हिन्दू साबित किया जा सके।'' जनजातियों को हिन्दू समाज से अलग देखना उचित नहीं है। प्राचीनतम हिन्दू धार्मिक ग्रंथों में जनजातियों के अन्य समाज से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध का अनेक स्थानों पर वर्णन प्राप्त होता है। वर्तमान समय में भी जनजातियों के सांस्कृतिक व्यवहार का अध्ययन करने पर हिन्दू संस्कृति तथा जनजातियों की संस्कृति में अनेक समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। जनजातीय समुदाय द्वारा भगवान शंकर, माता दुर्गा, भगवान विष्णु आदि देवताओं की पूजा करना, मकरसंक्राति, वसंत पंचमी, होली इत्यादि त्यौहारों को उल्लास पूर्व मनाना स्वयं सिद्ध करता है कि सनातन धर्म तथा जनजातियां एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। जनजातियों को सनातन संस्कृति का पूर्व रूप कह सकते हैं।''ब्रिटिश सरकार का रवैया हमेशा से ही समुदायों के आधार पर देश तोड़ने का रहा है। अपनी इसी योजना के तहत ब्रिटिश काल के विद्वानों ने भारतीय जनजातियों को भी पश्चिमी परिभाषाओं के तहत विवेचित करना प्रारंभ कर दिया तथा इसी काल में आर्य, अनार्य एवं द्रविड़ जैसी धारणाओं को मजबूती से लोगों के अन्दर अलग-अलग तरह की भावनाएं भरी गयी। आर्यों का अनार्यों तथा द्रविड़ों पर अत्याचार और उन्हें जंगलों में रहने के लिए मजबूर करना इत्यादि विचारों को पुरातात्विक साक्ष्यों के बिना स्थापित करने का प्रयास किया गया। ये विचार भारतीय इतिहास के आधार को ब्रिटिश मंसूबो के हिसाब से तैयार किए गए थे।''

विश्व में अफ्रीका के बाद जनजातीय समुदाय की सबसे अधिक धारिता भारत में है। 'भारत में वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार जम्मू-कश्मीर को छोड़ कर जनजातियों की संख्या 6.78 करोड़ थी। अर्थात् देश की कुल आबादी का 9.08 प्रतिशत थी। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या 8.45 करोड़ से थोड़ा अधिक थी अर्थात् देश की कुल जनसंख्या का 8.14 प्रतिशत थी।' भारत की अनेकता में एकता की संस्कृति का दर्शन जनजातियाँ में स्पष्ट रूप से किया जा सकता है। यदि सभी सरकारों के द्वारा घोषित समूहों को जनजाति माना जाए तो पीपुल ऑफ इंडिया, ए.एस.आई. (1992) के अनुसार भारत में कुल 635 जनजातीय निवास करती हैं। इतने विशाल समुदाय को एक वर्ग में रख कर अध्ययन करना असम्भव है अतः अध्ययनकर्ताओं द्वारा जनजातियों को वर्गीकृत किया गया। इनके वर्गीकरण के निम्न आधार हैं-

1. भौगोलिक वर्गीकरण
2. प्रजातीय वर्गीकरण
3. सांस्कृतिक वर्गीकरण
4. आर्थिक वर्गीकरण

1. भौगोलिक वर्गीकरण :-

उक्त वर्गीकरण का आधार भौगोलिक है। भौगोलिक वर्गीकरण के अंतर्गत सर्वप्रथम उत्तर तथा उत्तरी-पूर्व क्षेत्र आता है जिसके अंतर्गत कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमांचल प्रदेश, उत्तराखंड तथा असम के पहाड़ी क्षेत्र आते हैं। द्वितीय क्षेत्र है मध्यवर्ती। इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर में गंगा के मैदान से दक्षिण के कृष्णा नदी तक का है। विशाल विंध्याचल तथा सतपुडा की पर्वत श्रृंखलाएं इसी क्षेत्र में आती हैं। इसके अंतर्गत बंगाल, बिहार, उड़ीसा, दक्षिण उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, दक्षिण राजस्थान के क्षेत्र आते हैं। तृतीय है दक्षिणी क्षेत्र। इस परिक्षेत्र में हैदराबाद, मैसूर, कोचीन, आंध्रप्रदेश तथा तमिलनाडु आते हैं।

2. प्रजातीय वर्गीकरण :-

इस वर्ग में जनजातियों को तीन उपवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है। प्रथम नीग्रो, द्वितीय आदि अग्नेय तथा तृतीय मंगोल। नीग्रो प्रजाति के लोगों का कद छोटा सिर चौड़ा, दृशकाय, होठ मोटा तथा नाक चौड़ी होती है। दक्षिण भारत तथा असम के नागा इसी प्रजाति के हैं। आदिम आग्नेय वर्ग में भील एवं चेंचू आदि प्रजातियां आती हैं। मंगोल प्रजाति की जनजातियां असम के सीमांत प्रान्तों में ब्रह्मपुत्र की घाटियों में पाये जाते हैं।

3. सांस्कृतिक वर्गीकरण :-

इसके अंतर्गत चार वर्ग किये गये प्रथम वर्ग में उन जनजातियों को रखा गया जो अत्यधिक आदिम हैं। ये लोग सभ्य समाज से भयभीत रहते हैं। इनका निवास स्थान घने जंगलों में होता है। द्वितीय वर्ग के अंतर्गत ऐसे जनजातीय समूह आते हैं जिनके जीवन में आदिम शैली की अपेक्षा कुछ परिवर्तन आ गया है। इस वर्ग के जनजातियों में गरीब तथा अमीर का भेद पाया जाता है। तृतीय श्रेणी में वे जनजातियाँ आती हैं जो आधुनिकता की चपेट में आने से अपनी मूल संस्कृति को भूल गयी हैं। चतुर्थ वर्ग में उन जनजातियों को स्थान दिया गया है जिन्होंने बाह्य संस्कृतियों के सम्पर्क में रह कर भी अपनी मूल संस्कृति को बचाया है।

4. आर्थिक वर्गीकरण :-

आर्थिक दृष्टिकोण से जनजातीय समुदाय की स्थिति जनजातियेत्तर समाज की अपेक्षा अत्यंत दयनीय है। जनजातियों द्वारा धन अथवा संपत्ति का सृजन नहीं किया जाता है। यह सोच आदिमानव से मिलती-जुलती है। आदिमानव खानाबदोस था इस लिए वह संपत्तियों का सृजन नहीं करता था यही परिपाटी आज भी जनजातियों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। हलांकि आज के अधिकतर जनजातियाँ खानाबदोस नहीं हैं फिर भी संपत्ति अथवा धन के सृजन नहीं करती हैं। पशुपालन, कृषि, शिकार, वन्य उत्पादों का बाजारों में विक्रय इत्यादि जीविकोपार्जन के मुख्य साधन होते हैं। वर्तमान में कुछ जनजातीय समुदाय के लोगों द्वारा सरकारी तथा निजी प्रतिष्ठानों में नौकरी प्राप्त करना उनके सामाजिक विकास एवं स्वयं के प्रति जागरूकता का द्योतक है।

जनजातियों के संस्कार अशास्त्रीय नहीं हैं। अलग-अलग जनजातियों के अलग-अलग संस्कार हैं तथा इन संस्कारों की क्रियाविधि भी एक दूसरे से भिन्न है। सामान्यतः मध्य भारत के अंचल में जनजातियों द्वारा मुख्य रूप से जन्म, विवाह तथा मृत्यु संस्कार को अपनाया जाता है। सनातन धर्म में किसी भी संस्कार में जितनी महत्ता मन्त्रों को दी जाती है, जनजातीय संस्कृति में लोक गीतों ने वह स्थान प्राप्त किया है। जनजातियों के भी अपने आचार्य, पुरोहित तथा पंडित होते हैं जिनका विशेष सम्मान होता है फिर भी लोक गीतों को उल्लेखनीय स्थान प्राप्त है।

सामान्यतः सभी जनजातियों में प्रथम संस्कार जन्म के समय होता है। परिवार में शिशु के जन्म को जनजातियों द्वारा शुभ संकेत माना जाता है। जनजातीय समुदाय में पुत्र तथा पुत्री में लिंग के आधार पर भेद नहीं किया जाता है। पुत्र अथवा पुत्री के जन्म पर उत्सव का परिवेश सृजित होता है। जनजातियों में पुत्र जन्म पर सोहर के गायन की परम्परा है। कोल जनजाति द्वारा गाया जाने वाले सोहर की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

एक पीरा आई ओसरवा, दुसरा दरवजवा,
तीसर के भये नन्दलाल,

मंडिला मोरा जगमग हो।
सासू दाबय करिहइयां,
नन्दी तो पिड़ुलिया
स्वामी जी दबाय छनगुरिया,
मंडिला मोरा जगमग हो।
सासुजी गावत ननदी बजावत,
अंगना मा आवे ससुरजी।
बहु कौन ताप किन्हेंउ, ललन बड़े सुंदर,
मंडिला मोरा जगमग हो।
सासुजी कहें, ननद जी कहें,
ब्रजबासिन ननदी, ब्रजबासिन हो।

जनजातीय समुदाय में विवाह एक अत्यंत महत्वपूर्ण संस्कार है। यह संस्कार कई दिनों तक चलता है। कुछ जनजातियों में बहुविवाह का प्रचलन है तो कुछ में एकल विवाह का। कुछ जनजातियों में अपनी बहन की बेटी से किवाए की परम्परा है जिसे 'दूध लौटाना' कहते हैं। सामान्यतः दूध लौटाने जैसी परम्परा गौंड़ जनजाति में होती है। जनजातियों में समान गोत्र में विवाह का निषेध है। विवाह के समय विभिन्न अवसरों पर गायन किये जाने वाले कुछ गीतों की पंक्तियाँ अधोलिखित है-

मांगर माटी के गीत :-

विवाह के लिए महिलाएं मिट्टी लेने जाती हैं। उस समय गाये जाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

निर्मल रात जुन्हैया आँगन मोरे।
ओई आए चन्दा रात जुन्हैया आँगन मोरे।
जेमय राम जुन्हैया आँगन मोरे।
घूंटय राम जुन्हैया आँगन मोरे।

प्रस्तुत पंक्तियों में स्त्रियाँ कहती हैं, आज सुहानी रात है, चांदनी मेरे आंगन में उतरी है। मेरे आंगन में राम जी भोजन कर रहे हैं।

स्त्रियों द्वारा मिट्टी खोदते समय गायन किये जाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

माटी खानय बैठीं छोटी बहू हो,
उता हाय दइया हो दइया, बीछी मारय हो।
बीछी मारय मुड़े तकाय हो।

उक्त पंक्तियों के माध्यम से कोल महिलाएं कहती हैं कि छोटी बहू मिट्टी खोदने लगी उसी समय बिच्छू ने डंक मार दिया। इस डंक का असर ऐसा हुआ सर चकरा गया।

हरदी पीसनें का गीत

विवाह के लिए हल्दी पीसते समय यह गीत गाया जाता है।

चुरा-मुरा चुरा-मुरा, हरदी पिसाय रे
केकर लगुन धराय।
सारे साजन मंडवा गड़ाए,
केकर लगुन धराय।
काहे का सारे साजन मंडवा गड़ाए,
सीतो बहिनी लगुन धराय।
काहे का सीतों बहिनी बैठी जंघ जोरी,
केकर लगुन धराय।

भावार्थ- हल्दी पीसते समय चूरमुर-चूरमुर ध्वनि हो रही है। ये हल्दी किसके लिए पीसी जा रही है? किसकी विवाह का मुहूर्त बन रहा है? सेल और साजन मिल के मंडप दल रहे हैं लेकिन यह मंडप किसके लिए पड़ रहा है? आज सातो बहनों का विवाह हेतु लग्न बन रहा है। सातो बहने जंघा जोड़ कर बैठी हैं। सातों बहनों के विवाह हेतु मुहूर्त बन रहा है।

सुहाग गीत

कउन दिसा से उची रे बदरिया,
कउन दिसा को ही जाय
पूरब दिसा से उची रे बदरिया,
पछिम दिसा को ही जाय
बिनतिन बैठी है बनरी,
की सुना मेघिन बिनती हमार।

ननचू का बुंदिया छमाबा मोर मोघिय,
सेंदुर परइ दे मोर मांग
ननचू का बुंदिया छमाबा मोर बहिना,
सेंदुर परइ दे मोर मांग
राजा के सोहागवा।

माघा मै परिखेउं पूसा मा परिखेउं,
परिखेउं जेठ बइसाख
अब कईसे के बुंदिया छिमा करउं ढरिया,
घुमड़ि के लगिगे असाढ़
राजा के सोहागवा।

बिनतिन बइठी है ढेरिया,
सुना भइया बिनती हमार
काहे मा जोगायउं सर केर भौरिया,
काहे मा मगिया कै सेंदुर
राजा के सोहागवा।

बिनतिन बइठे हैं भइया,
सुन बहिनी बिनती हमार
ननचू का बुंदिया छ्माबा मोरि बहिनी,
सेंदुर परइदे मोरी मांग
राजा के सोहागवा।

बिनतिन बइठे हैं भइया,
सुन बहिनी बिनती हमार
ढाल मा जोगायउं सर केर भौरिया,
तरबरिया जोगई मगिया कै सेंदुर
राजा के सोहागवा।

पूरब दिसा से उची रे बदरिया,
पछिम दिसा रही छाय।
राजा के सोहागवा।

प्रस्तुत पंक्तियों में दुल्हन के द्वारा कुछ देर बारिश रोकने के लिए बादल से विनती की जा रही है। दुल्हन मेघिन (बादल) से कहती है कि मैं तुम्हें अपनी बहन मानते हुए कह रही हूँ कि मेरी मांग में सिंदूर पड़ जाने दो जो की अभी सूनी है। इसमें सिंदूर पड़ने तक अपनी बूंदों को रोक लो। दुल्हन के प्रतिउत्तर में मेघिन कहती है कि मैं ने माघ, पूस, जेठ, बैसाख के महीने तक प्रतीक्षा करती रही इतने महीनों में तुम्हारा विवाह सम्पन्न नहीं हुआ और अब आषाढ़ का महीना आ गया। अब मेरा रुकना कठिन है। मेघिन का कथन सुन कर दुल्हन अपने भाई से कहती है कि मेरी सूनी मांग कैसे भर पाएगी? बदरिया तो थम ही नहीं रही है। मेरे मौर की रक्षा किस प्रकार हो? दुल्हन का भाई उसे आश्वस्त करते हुए कहता है कि मेरी ढाल तुम्हारे मौर की रक्षा करेगी और मेरी तलवार तुम्हारे सिंदूर की। इस प्रकार मांग में सिंदूर भरने की रस्म पूरी होती है।

निष्कर्षः-

जनजातियों के संस्कारों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् सनातन संस्कारों से इनकी समानता तथा हिन्दुओं से जनजातियों का नैकट्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मध्य भारत की जनजातियों के संस्कार तथा संस्कार के गीत हिन्दू संस्कृति के ही समान है। समाज में विभेद के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा वन्य क्षेत्र में रहने वाले समाज के लोगों को हिन्दुओं से अलग करना चाहा। इसी क्रम में पाश्चात्य लेखकों द्वारा अनेक किताबों में जनजातियों को हिंदुयेत्तर समुदाय दिखाने का पूरा प्रयास किया गया। किन्तु जनजातियों की संस्कृति तथा संस्कार स्पष्ट करते हैं की जनजातियाँ हिन्दू सभी समाज का पूर्व रूप है। ये वर्ग हिन्दू समुदाय से अलग नहीं है।

बनारस घराने की गायकी के संवाहक पंडित राजन मिश्र

गरुण मिश्र

सार-संक्षेप-

बनारस घराने की ख्याल गायकी को उच्च शिखर प्रदान करने में पद्मभूषण पं. राजन मिश्र जी का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने अपने अनुज पद्मभूषण पं. साजन मिश्र जी के साथ लगभग पाँच दशक तक संगीत जगत में एक अनूठे कलाकार के रूप में काशी के संगीत का प्रचार-प्रसार किया। देश-विदेश के असंख्य मंचों पर अपने प्रभावशाली गायकी से संगीत के श्रोताओं के हृदयस्थल में विराजमान रहे एवं यह आवाज सृष्टि के अंतकाल तक लोगों के दिलों को गुंजायमान करती रहेगी। पं. राजन मिश्र जी न केवल एक गायक बल्कि एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार, संगीत चिंतक तथा जीवन दर्शन के भी ज्ञाता रहे हैं। आपका सहज एवं सरल व्यक्तित्व, लोगों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। पं. राजन मिश्र जी ने संगीत को जीने की कला सभी संगीत प्रेमियों को सिखाया। प्रस्तुत विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य पं. राजन मिश्र जी के व्यवहारिक एवं सांगीतिक जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को उजागर करना है। तथ्य संकलन हेतु कुछ पुस्तकों एवं विभिन्न विद्वानों के विचारों को इन्टरनेट द्वारा प्राप्त कर इस शोध प्रपत्र में सम्मिलित किया गया है।

सूचक शब्द- *संगीत, बनारस घराना, संगीतज्ञ, पं. राजन मिश्र, गायकी।*

बनारस, भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगरी के रूप में विख्यात है। इसे देश की सांस्कृतिक राजधानी भी माना जाता है। बनारस संगीत के क्षेत्र में भी सदा अग्रणी रहा है। यहाँ समय-समय पर अनेक ऋषि-मुनियों, कला-साधकों एवं विद्वानों ने जन्म लिया एवं अपनी साधना व तपस्या के प्रभाव से इस धरा को अभिसिंचित किया है। बनारस घराने में ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा से लेकर चैती, होरी, कजरी तथा झूला इत्यादि अनेक गायन शैलियाँ विद्यमान हैं। संगीत की तीनों विधाओं गायन, वादन तथा नृत्य में यहाँ अनेक महान संगीतज्ञों जैसे- पं. प्रसिद्ध मनोहर जी, पं. शिवदास प्रयाग जी, पं. राम सहाय जी, पं. भैरो सहाय जी, पं. दरगाही मिश्र जी, पं. ननकू लाल मिश्र जी, पं. शिवा-पशुपति जी, पं. बड़े रामदास जी, पं. छोटे रामदास जी, पं. कंठे महाराज जी, पं. हरिशंकर मिश्र जी, पं. अनोखे लाल मिश्र जी, सितारा देवी, पं. गुदई महाराज जी, पं. किशन महाराज जी, पं. हनुमान प्रसाद मिश्र जी, पं. गोपाल मिश्र जी, पं. बैजनाथ मिश्र जी, पं. महादेव मिश्र जी, पं. अमरनाथ-पशुपति नाथ जी, पं. गणेश प्रसाद मिश्र जी, श्रीमती गिरिजा देवी जी इत्यादि अनगिनत सशक्त हस्ताक्षर, संगीत जगत की गौरव गाथा बन चुके हैं। इन महान संगीतज्ञों में पं. राजन-साजन मिश्र जी ने बनारस घराने का प्रतिनिधित्व करते हुए लगभग 54 वर्ष तक सह-गान किया तथा संगीत जगत के शीर्षस्थ कलाकर के रूप में ख्याति अर्जित की।

पंडित राजन मिश्र जी का जन्म 28 अक्टूबर, सन् 1951 को काशी के कबीरचौरा नामक मोहल्ले में हुआ। उनके पिताजी पं. हनुमान प्रसाद मिश्र जी तथा माताजी श्रीमती गगन किशोरी जी, दोनों ही

शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007, मो. : 9453187811,
Email : garunmishra1994@gmail.com

एक कुशल संगीतकार थे। आपके पिता पं. हनुमान प्रसाद मिश्र तथा चाचा पं. गोपाल मिश्र जी का नाम भारतवर्ष के श्रेष्ठ सारंगी वादकों में बड़े ही आदर सहित लिया जाता है। दोनों भ्राता सारंगी वादक होने के साथ एक कुशल गायक एवं संगीत चिंतक भी थे। पं. राजन मिश्र जी की प्रारंभिक संगीत शिक्षा एवं गंडाबन्धन बनारस घराने के गायनाचार्य पं. बड़े रामदास जी से हुआ। तदोपरान्त उन्होंने अपने पिताजी तथा चाचाजी से संगीत की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की। सांगीतिक शिक्षा के साथ ही उन्होंने जीवन दर्शन, सामाजिक मूल्य एवं अन्य व्यवहारिक ज्ञान भी दिया, जिसका प्रभाव पं. राजन-साजन मिश्र जी के व्यक्तित्व एवं संगीत दोनों पर पड़ा। पिताजी की आज्ञा से दोनों भ्राता पं. राजन मिश्र तथा उनके अनुज पं. साजन मिश्र जी ने सह-गान करना प्रारम्भ किया। दोनों भाइयों के आपसी सांगीतिक सामन्जस्य तथा एक-दूसरे के प्रति प्रेम के कारण इस जोड़ी को 'दो जिस्म एक जान' तथा इनके संगीत को "Duet is as beautiful as solo" ऐसा कहा जाता है।

बाल्यकाल से ही घर में सांगीतिक परिवेश होने के कारण पाँच साल की उम्र से ही संगीत की शिक्षा प्रारम्भ हो गई तथा दोनों भाइयों ने कम उम्र से ही काशी के मंदिरों, देवालयों तथा अन्य संगीत कार्यक्रमों में गाना शुरू कर दिया। तत्पश्चात् बड़े संगीत समारोह के रूप में काशी के 'संकट मोचन संगीत समारोह' से अपने सांगीतिक यात्रा को शुरू की।

पं. राजन मिश्र जी एक संगीत साधक होने के साथ ही उच्च कोटि के दार्शनिक, विश्लेषक, महान संगीत चिंतक, उत्कृष्ट वाग्गेयकार तथा एक सद्गुरु थे। स्वरों को, राग को या संगीत को देखने का उनका एक अलग नजरिया था जिसमें हमें प्रेम, समर्पण व भक्ति भाव का दर्शन होता है। बंदिशों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुतिकरण आपके गाने की प्रमुख विशेषता है। आप आचार्य रजनीश 'ओशो' से बेहद प्रभावित थे एवं उनके द्वारा बताई गई तथ्यात्मक जीवन दर्शन को अपने व्यवहारिक जीवन में यथा सम्भव पालन भी किया करते थे। परमात्मा की सर्वव्यापकता, अस्तित्व एवं सृष्टि के बारे में चिन्तन इत्यादि के सम्बन्ध में अपने विचारों को समृद्ध बनाने का श्रेय 'ओशो' को देते थे। ओशो का प्रभाव उनके व्यवहारिक जीवन के साथ ही उनके सांगीतिक दृष्टिकोण पर भी पड़ा। खेल, कसरत, परिष्कृत खान-पान, श्रेष्ठ साहित्य पठन, पर्यटन, भ्रमण, किस्से, कहानियाँ तथा मनोविनोद इत्यादि क्षेत्रों में आपकी विशेष रुचि रही।

इस सदी के महान गायक पंडित राजन मिश्र जी का निधन 25 अप्रैल, 2021 को कोरोना नामक वायरस के संक्रमण से हो गया। अपने जीवन के अंतकाल तक आपने अनेक शिष्य-शिष्याओं को संगीत एवं जीवन दर्शन की विधिवत् शिक्षा दिया। आपके अनेक शिष्य, देश-विदेश के अनेक स्थानों में रहकर संगीत का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं तथा देश के प्रतिष्ठित मंच पर अपनी प्रस्तुतियों से श्रोताओं को आनन्द की अनुभूति करा रहे हैं। इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए आपके अनुज एवं देश के प्रख्यात संगीतज्ञ पं. साजन मिश्र जी भी शिष्यों को विधिवत् संगीत की शिक्षा दे रहे हैं तथा अपने सुपुत्र श्री स्वरांश मिश्र जी के साथ देश के प्रतिष्ठित समारोह में अपने दिव्य गायकी से श्रोताओं को सराबोर कर रहे हैं। पंडित राजन मिश्र जी के दोनों सुपुत्र पं. रितेश मिश्र जी तथा पं. रजनीश मिश्र जी भी युगल गायकी करते हुए इस समृद्ध परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। पं. रितेश-रजनीश मिश्र जी आकाशवाणी के सर्वोच्च श्रेणी के कलाकार हैं तथा अनेक पुरस्कार एवं सम्मान से विभूषित हैं। इसी क्रम में पं. राजन-साजन मिश्र जी के अनगिनत शिष्यों के द्वारा इस परम्परा का निर्वाह किया जा रहा है।

पं. राजन मिश्र जी के गायकी की प्रमुख विशेषताएँ-

- पं. राजन मिश्र जी के गायकी में बनारस की परम्परागत घरानेदार शिक्षा का व्यवस्थित रूप से प्रभाव दृष्टिगत होता है।
- राग की क्रमबद्ध बढ़त, आलाप, बोल बाँट, सरगम, तान आदि के प्रस्तुतीकरण में संतुलन आपके गाने में दिखता है।
- श्रेष्ठ साहित्य का चयन तथा उसका स्पष्ट उच्चारण करने के साथ भावानुरूप उस साहित्य की अभिव्यक्ति करने में आप सिद्धहस्त थे।
- सह गायन में अद्भुत समन्वय तथा दोनों भ्राताओं का भावपूर्ण स्वर लगाव श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देने वाला था। युगल गायकी में ऐसा सामन्जस्य दुर्लभ ही है।
- लय व ताल का विधिवत् ज्ञान तथा इनका

विद्वतापूर्ण प्रयोग उनके गायन में देखने को मिलता है। किसी भी प्रचलित-अप्रचलित ताल में अधिकारपूर्ण गायकी, आपकी प्रमुख विशेषता रही है।

- राग में निहित अलंकरणों का संतुलित प्रयोग तथा प्रत्येक राग का आवाह्न, प्रार्थना एवं समर्पण भाव से करते थे।
- रागों में चमत्कारिक प्रयोग एवं तैयारी के साथ मधुरता का अद्भुत संगम देखने को मिलता है।
- आप चारों पट की गायकी में निपुण थे तथा आपके ख्याल में ध्रुपद, धमार, ठुमरी, टप्पा आदि की आंगिक विशेषता भी प्रदर्शित होती थी।
- ठुमरी, दादरा, इत्यादि उपशास्त्रीय गायन शैलियों में निपुण होते हुए भी अपने अपनी सांगीतिक यात्रा में ख्याल गायकी को ही प्रमुख रूप से प्रतिस्थापित किया।
- समान स्वर के राग जिनको एक के बाद एक गाना चुनौतीपूर्ण होता है, ऐसे राग आप सहजतापूर्वक बहुधा गाया करते थे।
- आप राग की शुद्धता पर विशेष बल दिया करते थे। राग के दायरे में रहते हुए सौन्दर्यपूर्ण, रंजक तथा भावपूर्ण गायकी आपकी विशेषता रही है।

गायन कार्यक्रम एवं सम्मान-

- देश-विदेश के लगभग सभी समारोहों में निरन्तर पं. राजन-साजन मिश्र जी का संगीत गुंजायमान होता रहा है।
- दूरदर्शन पर भी आपके कार्यक्रमों का निरन्तर प्रसारण होता रहता है।
- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की ख्याल गायकी को विदेशों में भी लोकप्रिय बनाने में आपकी अहम भूमिका रही है।
- वर्ष 1974 में आपको पहली बार में आकाशवाणी द्वारा 'ए ग्रेड' तत्पश्चात् 1982 में 'टॉपग्रेड' की सूची में आपको शामिल किया गया।
- 2017-18 में वर्ल्ड म्यूजिक टूरभैरव से भैरवी तक किया, जिसमें आपने 13 देशों में 54 कार्यक्रम किये।
- पद्मभूषण पुरस्कार, राष्ट्रीय तानसेन सम्मान, संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, कुमार गंधर्व सम्मान, कालिदास सम्मान, डी. लिट् उपाधि आदि अनेकानेक अवॉर्ड एवं सम्मान से पंडित राजन-साजन मिश्र जी को सम्मानित किया गया है।

संगीत के परिप्रेक्ष्य में पं. राजन मिश्र जी के बहुमूल्य विचार-

'When we go into music, all the tiredness vanishes. We lead you in it ourselves with the sound of our music. That is a God gift and we are so blessed. We are very proud of our Indian classical music that makes you very relaxed and that relaxation the whole world needs now. It is very much required to be relaxed to be stopped.

शास्त्रीय संगीत के बारे में एक ऐसी धारणा है कि हमें समझ नहीं आएगा लेकिन शास्त्रीय संगीत को बिना समझे, बिना सीखे ज्यादा समझा जा सकता है बशर्ते आप अपने आँख को बन्द कर लें, हृदय को खोल दें तो सारे संगीत समझ में आने लगते हैं। जिन लोग का यह वक्तव्य है कि हमें शास्त्रीय संगीत नहीं समझ में आता है, उनसे आप यह जरूर पूछिये कि पॉप, रॉक ये सब संगीत उनको कितना समझ आता है? संगीत समझने के लिये हृदय चाहिये। हृदय का दरवाजा खोलिये और एकाग्रता पूर्वक आँख बंद करें तो सभी संगीत समझ आने लगता है।

साहित्य राग के रस को निर्धारित करता है। राग साहित्य को निर्धारित नहीं करता। जिन लोगों ने पहले से धारणा बनाया हुआ है कि अमुक राग शृंगार रस का है, उस शृंगार रस के राग में वीर रस की भी बंदिश है और वीर रस की बंदिश को वीर रस के हिसाब से ही गाया जाता है। राग वही है उसमें शृंगार रस, वीर रस तथा करुण रस की भी बंदिश है। मेरा व्यक्तिगत ख्याल यह है कि साहित्य ही राग दर्शन कराता है।

एक जीवन में एक राग सध नहीं सकता। यमन का गन्धार लग जाए, तोड़ी का ऋषभ लग

जाए तो समझिये कि थोड़ा जीवन सफल हो रहा है। एक सुर लगाइये और दिल में उतरिये वही संगीत है।

राग को पूर्व निर्धारित करके प्रोग्राम में नहीं जाता हूँ। यह बहुत ही चुनौतीपूर्ण है। इस चुनौती को स्वीकार करने से एक लाभ होता है कि आपकी रचनात्मकता बढ़ जाती है। जैसे कि आपने निर्धारित किया कि अगले प्रोग्राम में आपको मालकौस गाना है और आप मालकौस का कई दिनों तक रियाज़ किये। जब आप स्टेज पर पहुँचेंगे तो मालकौस में सूझना बन्द हो जाएगा। कारण यह है कि आप उस राग को इतना गा चुके हैं जिससे उसमें एकरसता आ जाती है।

पं. राजन मिश्र जी के सम्बन्ध में विभिन्न संगीतज्ञों के विचार एवं उनके अनुभव-

- पं. विश्वमोहन भट्ट जी के अनुसार, 'मेरे बहुत कम दोस्त हैं जिनसे मेरा दिल मिलता हो उनमें से एक राजन भाई थे। बड़े ही सरल हृदय तथा हँसमुख व्यक्ति थे। जब भी मिलते थे चुटकुलों की अम्बार लगा देते थे। हँसना, बोलना, खुश रहना और दूसरों को खुशी देना और संगीत में तो उनका कोई सानी था ही नहीं। उनका क्या सुर, क्या तान, क्या गमक, क्या बन्दिश और क्या प्रस्तुतीकरण था- अप्रतिम। मेरे तीन पीढ़ी के साथ उनके अच्छे सम्बन्ध थे। मेरे पिताजी के साथ चेस खेलते थे फिर मेरे एवं मेरे बेटे के साथ भी उन्होंने बहुत खुशियों का समय गुजारा। ऐसा इन्सान जो तीन पीढ़ियों के साथ सामन्जस्य रखता हो और पता ही ना चले। किसी भी विषय पर उनका ज्ञान अत्यन्त प्रेरणादायी था'
- Sukanya Shankar: I saw both Rajan Misra and Sajan Misra ji in Landon before I met them and then of course I met them in Delhi with Guruji. I think of all the wonderful concerts, talks, jokes and a great time we had. Rajan ji has a great sence of humour and Guruji loved them so much and then I started to get more and more friendly with Rajan ji somehow.
- उस्ताद अकरम खाँ के अनुसार 'हम लोग को उन्होंने छोटे भाई की तरह प्यार दिया। हँसी-मजाक भी खूब करते थे, हर तरह से खुश मिज़ाज रहते थे। उनकी बातें बहुत ही उम्दा हुआ करती थी। बहुत ही अच्छे से अपने छोटे एवं अपने बड़ों का आदर करते थे। उन्होंने बहुत सारी चीजें हमको सिखाई उनमें से संगीत में भी बहुत सी अच्छी चीजें हमें सिखाई। आज भी राजन भैया मेरे दिल में हैं और कभी भी हमसे अगल नहीं हो सकते।'
- पं. उदय भवालकर जी के अनुसार, पं. राजन जी एक चतुस्त्र गायक थे, जिनके गायन में सभी प्रकार की खूबियाँ झलकती थी। खासकर मैंने जो देखा कि राग दरबारी कान्हड़ा, श्री, एवं मियां मल्हार जैसे राग जब गाते थे तथा ध्रुपद अंग का उल्लेख करते थे। उनकी गायकी में एक ठहराव देखने को मिलता है जो आमतौर पर ध्रुपद गायकी में हमलोग करते हैं। स्वर को अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से लगाते थे तथा उनके प्रोग्राम में तानपूरे का एक अलग आकर्षण रहता था। खरज तथा गमक अंग भी उनके गाने में दिखता था। उनकी गायकी में सूत और मींड का काम मुझे बहुत ही आकर्षित किया।
- विदुषी अश्विनी भिंडे जी के अनुसार, मैंने पंडित जी के गायन में देखा कि एक राग को कितना बड़ा कर सकते थे। मुझे याद है कि मेरे पास गुर्जरी तोड़ी की एक रिकॉर्डिंग हुआ करती थी। एक घंटे से ऊपर का लाइव रिकॉर्डिंग थी। यह आज से लगभग बीस साल पहले की बात है। मैंने उस गुर्जरी तोड़ी को इतनी बार सुना। इतना विशाल एवं विराट रूप उन्होंने प्रस्तुत किया था। हर सुबह मेरे घर में वह गुर्जरी तोड़ी बजती थी। ऐसा लगता था कि गुर्जरी तोड़ी में अब कुछ बचा ही नहीं, इसको सुनने के बाद। ये सामर्थ्य मुझे उनकी गायकी में दिखा। जिस सहजता से व्यक्तिगत रूप से पेश आते थे

शायद उसी सहजता से राग को भी एक व्यक्ति समझकर उस राग के निकट चले जाते थे।

- उस्ताद शाहिद परवेज़ के अनुसार 'राजन भाई एक जगह संगीत समारोह में गये थे। कोई आध्यात्मिक बाबा थे, जिनके लिये कार्यक्रम किया गया था तो उन बाबा से पं. राजन मिश्र जी की कुछ बातचीत हुई। जब राजन-साजन जी ने वहाँ प्रोग्राम किया तो उन्होंने उनकी तारीफ की। इस पर राजन भाई ने कहा कि हम अभी तो सीख रहे हैं। इस बात पर उस बाबा ने उनको कहा कि तुम एक बूंद हो, क्या तुम सागर बन सकते हो? तो राजन भाई ने कहा कि नहीं। तो बाबा ने उनसे बड़ा ही खूबसूरत बात बोला कि सागर में मिल जाओ, सागर बन जाओगे।'

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि पं. राजन मिश्र जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन शास्त्रीय संगीत की सेवा में अर्पित किया एवं अपनी संगीत साधना से प्राप्त संगीत के अनमोल खजाने को सम्पूर्ण समाज के कल्याण हेतु समर्पित किया। संगीत जगत में आपका नाम एवं आपका सांगीतिक योगदान सूर्य की भांति सदैव प्रदीप्तमान रहेगा। वर्तमान में पं. साजन मिश्र एवं उनके पुत्र और पं. राजन मिश्र जी के पुत्र बंधु आपकी संगीत परंपरा का निर्वहन कर रहे हैं।

संदर्भ सूची-

[1] Recording Earth. (2021, April 27). Remembering Rajan - English Interview [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=khmNGeb1pig0

[2] National Khabar. (2018, September 15). Divine Gayaki of Pt Rajan-Sajan Mishra [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=k3CA_5PhQA_k

[3] Vrindaban Gurukul by Pandit Hariprasad Chaurasia. (2016, March 15).Anubhav - Baithak with Pandit Rajan and Sajan Mishra 14th Nov 2014 [Video]. Youtube. https://www.youtube.com/watch?v=kVMuaUjKSvAI

[4] Vrindaban Gurukul by Pandit Hariprasad Chaurasia. (2016, March 15).Anubhav - Baithak with Pandit Rajan and Sajan Mishra 14th Nov 2014[Video]. Youtube. https://www.youtube.com/watch?v=kVMuaUjKSvAI

[5] Living With Music. (2021, May 29). Gratitude Series:post 10[Video]. Facebook. https://www.facebook.com/livingwithmusic.tao/videos/1 81229057236203/?extid=kCL-UNK-UNK-UNK-AN_GK0T-GK1C&ref=ksharing

[6] Living With Music. (2021, October, 24). Creator of the MOHAN VEENA and the winner of the GRAMMYAWARD, Pandit Vishwa Mohan has mesmerized the world with his pristine pure, delicate yet fiery music [Video]. Facebook. https://www.facebook.com/livingwithmusic.tao/videos/ 254009553409814/?extid=kCL-UNK-UNK-UNK-AN_GK0T-GK1C&ref=ksharing

[7] Living With Music. (2021, October 23). Smt Sukanya Ravishankar, a name everyone who is even slightly connected with the music world would relate to. Sukanyaji, not just the wife of legendary Bharat Ratna, Pandit Ravishankar, but His friend, strength and much much more. She for last many years been taking extreme care to keep His legacy alive [Video]. Facebook. https://www.facebook.com/livingwithmusic.tao/videos/ 261450859194883/?extid=kCL-UNK-UNK-UNK-AN_GK0T-GK1C&ref=ksharing

[8] Living With Music. (2021, October 9). Memories & Moments Series[Video]. Facebook. https://www.facebook.com/livingwithmusic.tao/videos/789967151720378/?extid=kCL-UNK-UNK-UNK-AN_GK0T-GK1C&ref=ksharing

[9] Arvind Kumar Azad. (2021, June 11). Punyasmaran: A tribute to the legendary Padmabhushan Pt. Rajan Mishra Ji[Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=kOmmmaRhl6GM

[10] Arvind KumarAzad. (2021, June 11). Punyasmaran:A tribute to the legendary Padmabhushan Pt. Rajan Mishra Ji[Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=kOmmma Rhl6 GM

[11] Living With Music. (2021, October 26). Ustad Shahid Parvez Khan is a sitar maestro of global acclaim and is regarded as one of the finest Indian Classical musicians alive. He is one of the most brilliant musical gems of the famous Etawah tradition and belongs to the seventh generation of this musical lineage[Video]. Facebook.https://www.facebook.com/livingwithm usic.tao/videos/271527961554351/?extid=kCL-UNK-UNK-UNK-AN_GK0T-GK1C

भारतीय संगीत में ध्यान : एक अध्ययन

डॉ. रामशंकर, आदित्य नाथ तिवारी

सार :-

संगीत तथा ध्यान का बहुत निकट का सम्बन्ध है क्योंकि दोनों ही मन तथा आत्मा से जुड़े हैं संगीत में ध्यान का बहुत महत्व है। ध्यान की क्रिया से हमारा बाह्य जगत से सम्पर्क विच्छेद हो जाता है तथा हम अपने मन में अपनी अनुभूतियों को चित्रित करते हैं तथा उसका आनन्द लेते हैं। ध्यान की क्रिया में हम अकेले ही होते हैं। इस क्रिया में बाह्य संसाधन अथवा किसी प्राणी मात्र की कोई भूमिका नहीं होती है। संगीत के सम्बन्ध में ध्यान और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। ध्यान की उपस्थिति में ही संगीत की साधना एक नूतन आयाम को स्पर्श करती है। इस शोध पत्र में ध्यान तथा संगीत के मध्य सम्बन्ध पर चर्चा की जाएयेगी।

सूचक शब्द :- *ध्यान, चिंतन, एकाग्रता, एकांतता, गायन, वैदिक*

विषय प्रवेश :-

अपने मन में अपने ही द्वारा अनुभव की गयी बातों को सजीव चित्रित करना ध्यान कहलाता है। ध्यान मन की क्रिया है जो कि चित्त की एकाग्रता से ही सम्भाव्य है। चित्त की एकाग्रता तथा अभीष्ट लक्ष्य की ओर ध्यान के केन्द्रीकरण से कार्य को निर्णायक स्थिति में पहुंचाने की क्षमता का विकास होता है। अभीष्ट स्थान अथवा विषय में उत्कर्ष पर स्थापित होने के लिए ध्यान मुख्य भूमिका का निर्वहन करता है। अपने मन को एकाग्र कर के किसी दिशा की ओर अपने विचारों का प्रवृत करना ध्यान कहलाता है। सामान्यतः चिंतन, मनन तथा विचार करने को भी ध्यान कहते हैं। किसी भी स्थिति अथवा समय में ध्यान अथवा चिन्तन का प्राकट्य मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। ज्ञान, कर्म तथा भक्ति तीनों ही मार्ग में ध्यान अपनी प्रमुख भूमिका में उपस्थित होता है। 'ध्यान केवल उस चेष्टा या इच्छा शक्ति को कहते हैं; जिसका प्रभाव ज्ञान प्रक्रिया पर पड़ता है।'[1] सामान्यतः हम कह सकते हैं कि किसी भी निश्चित विषय में मस्तिष्क के केन्द्रीकरण को 'ध्यान' शब्द से सम्बोधित करते हैं। 'ध्यान उपनिषदों का प्रमुख विषय है अतः उपनिषदों के अनुसार ध्यान का अर्थ है एकाग्रता की वृद्धि, सजातीय ज्ञान की धारा।'2 ध्यान के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक मत प्रस्तुत किये हैं। 'सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता ध्यानम्' 3 अर्थात् चैतन्य में एकांतता ध्यान है। अन्य विद्वानों ने भी चित्त को स्थिर करने को ही ध्यान कहा गया है। 'चिंताभावनापूर्वकः स्थिरौध्यवसायोध्यानम्'4 अर्थात् चिंता भावना पूर्वक स्थिर अध्यवसाय ही ध्यान है। इसी प्रकार ध्यान को अनेक अर्थों में प्रयोग करते हैं। जैसे :- ध्यान लगाना, चित्त की एकाग्रता इत्यादि। वैदिक युग से आधुनिक युग तक के वांग्मय पर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता हैं कि ध्यान की प्रासंगिकता प्रत्येक समय तथा प्रत्येक विषय में विपुल मात्रा में हैं। संगीत के सम्बन्ध में ध्यान की सुदीर्घ परम्परा ज्ञातव्य है। सामान्य अर्थ में कहें तो संगीत के प्रस्तुति अथवा श्रवण में यदि ध्यान नहीं दिया गया तो संगीत की प्रभावित कर सकने वाली क्षमता का ह्रास होता है। ध्यान का आविर्भाव कब हुआ यह कहना दुष्कर है किन्तु वैदिक वांग्मय में ध्यान की चर्चा होना इस और संकेत करता है की

* सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**स्नातकोत्तर गायन, (संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), U.G.C, N.E.T.

उस समय तक ध्यान अपने पूर्ण अस्तित्व में था। वैदिक काल में संगीत के दो रूप वर्णित हैं प्रथम लौकिक जो की जन सामान्य के मनोरंजान का साधान था। दूसरा शास्त्रीय जो नियम बद्ध था। 'लौकिक गीतों में गाथा, नाराशंसी, रैभी आदि गीत प्रकार प्रचलित थे।'[5] चूँकि ये गीत नियमबद्ध नहीं थे। अतः इनके सम्बन्ध में कुछ लिखित सामग्री प्राप्त नहीं होती है। शास्त्रीय गायन जो की साम गायन था, में साम के स्वरूप तथा इसके देवता के भी रूप का वर्णन प्राप्त होता है ; जो की बिना ध्यान के असम्भव ही है। उत्तर वैदिक काल में जाति गायन प्रचार में आया। संगीत में जाति गायन का स्थान देवतुल्य था। पंडित शारंगदेव ने जाति गायन को ब्रह्महत्या का निवारक मानते हैं। जातियों के दो भेद बताये गये हैं - शुद्धा तथा विकृता। प्रथम शुद्धा जाति षाड़जी का ध्यान जगदेकमल्ल द्वारा इस प्रकार लिखा गया है—'मैं सबकी जननी षाड़जी को निरंतर प्रणाम करता हूँ। वीणा ध्वनि के श्रवण से सकुतूहल कामरिपु होने पर भी भगवान शंकर के द्वारा जिनका आलिंगन किया जा रहा है, जिनका करतल पाश और अंकुश के चिह्नों से युक्त हैं। जिनकी कान्ति अरुण है।'[6] आर्षभी का ध्यान करते हुए जगदेकमल्ल जी लिखते हैं 'जिनके निस्सीम वाणी और मन के अत्यंत दूरवर्ती महत्व का तिरस्कार करने में प्रवृत्त पद्मासन ब्रह्मा भी उपहास के पात्र बनते हैं। मैं उस शुककान्ति आर्षभी को प्रणाम करता हूँ।'[7] 'ध्यान के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री के आधार पर जगदेकमल्ल पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने जाति के ध्यान वर्णित किये।'[8]

संगीत की आत्मा राग है। अतः हमारे मनीषियों ने राग में ध्यान पर विचार किया है। अलग अलग समय में प्रासंगिक रहे रागों के वर्गीकरण जैसे- गीति के अनुसार राग वर्गीकरण, राग-रागिनी वर्गीकरण, ऋतुओं के आधार पर राग वर्गीकरण, समय के आधार पर राग वर्गीकरण इत्यादि, का ध्यान अलग अलग विद्वानों ने अपने ग्रंथों में वर्णित किया है। किन्तु संगीत के लिए वर्तमान समय में प्रयोग परम्परा में ध्यान की क्या प्रासंगिकता है इसपर चर्चा करेंगे।

स्वर की साधना के लिए ध्यान परम आवश्यक है। बिना ध्यान के स्वर की साधना सम्भव ही नहीं है। जब तक ध्यान नहीं होगा तब तक हम नहीं जान सकते की मेरा स्वर लग रहा है या इसमें कुछ कमी रह गई है। सुर को लगा लेने के बाद अगली कड़ी है स्वर का उच्चारण। हमारा उच्चारण दोषयुक्त ना रहे; इसमें आकार साकार हो; इसके लिए ध्यान की आवश्यकता है। स्वर, लय का ध्यान जागृत करने के पश्चात् आता है राग का ध्यान। राग की संकल्पना स्वर, लय इत्यादि से है। राग ध्यान जिसे हम अनुभव करते हैं उसे दूसरों तक पहुंचा सकें इसके लिए आवश्यक है कि हमारा तंत्र अथवा कंठ सुरीला हो क्योंकि रागों का ध्यान सही स्वर के लगाव से ही सम्भव है। यदि स्वर ही नहीं लगा तो हम राग के ध्यान की चर्चा कैसे करेंगे? उदाहरण के लिए हम राग भैरव को लेते हैं ; इस राग में यदि कोमल ऋषभ नहीं लगा तो ये राग भैरव ही नहीं हुआ। ऐसे में हम 'भैरव' राग के रागध्यान तक कैसे पहुंचेंगे। राग के अपने स्वरूप को ही राग ध्यान कहते हैं। राग का स्वरूप स्थापित कर के जब हम उस राग के स्वरूप का ध्यान करते हैं ; तब हम उस राग के अथवा उस राग के स्वरों के लगाव को बिना सोचे ही गा सकते हैं। राग अनुसार स्वरों को सही स्थान पर लगा देना कठिन कार्य है परन्तु आप के निरंतर अभ्यास करते रहने से एक दिन ऐसा आएगा कि आप राग के स्वरों को उसके सही स्थान पर लगा सकेंगे तब राग आपको दिखाई पड़ने लगेगा यही राग ध्यान है। उसके बाद यह नहीं सोचना पड़ेगा कि राग का कौन सा स्वर कितने श्रुति चढ़ाना है और कितना उतारना है। राग एक अविरल धारा में प्रवाहमान हो जाएगा तथा स्वर अपने आप लगना शुरू हो जाएंगे। इस प्रवाह को ही प्रवाहमान गायन की संज्ञा दी जाती हैं। एक बार राग अपने स्वरूप में खड़ा हो गया तो उसके विवादी स्वर भी लग जाएंगे तो भी उस राग का स्वरूप नष्ट नहीं होगा। राग के इस स्वरूप की अनुभूति उसे ही होती है, जिसने अच्छी तालीम ली है तथा निरंतर साधनारत है। आम जनता तो केवल उस स्वर-लय-ताल का आनंद लेती है। अभिनव गीतांजलि भाग चार में राग भैरव का परिचय देते हुए पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग' जी संगीत के क्रियात्मक तथा शास्त्र पक्ष के संबंध में कहते हैं - 'कुछ लोगों का कहना है कि शास्त्रीय

संगीत के लिए संगीत शास्त्र का परिपक्व ज्ञान होना आवश्यक है, किन्तु यह कोई नहीं बताता कि संगीत शास्त्र का सही ज्ञान होगा कैसे? क्या बिना स्वर ज्ञान के शास्त्र ज्ञान होना संभव है? मेरे विचार से तो स्वर ज्ञान के बिना संगीत शास्त्र के ज्ञान की आशा करना आकाश में बाग लगाने के समान है।'[9] हमारी शास्त्र परंपरा को संजीवित करने वाले ऋषि-मुनियों ने उस परम तत्व को समझा महसूस किया और लेखनी के माध्यम से अंकित किया। जब तक हमारी साधना उन मनीषियों के आसपास तक नहीं पहुंचेगी, तब तक उनके कहे हुए शास्त्र को हम नहीं समझ पाएंगे। ठीक उसी तरह जैसे हम कहते हैं- रुको, मत जाओ तथा रुको मत, जाओ। इन दो वाक्यों में बस विराम चिन्ह का स्थान बदल गया; जिस कारण अर्थ भी बदल गया। इसी प्रकार यदि हम नहीं समझेंगे की विराम चिन्ह कहाँ लगाना है अर्थात् किन स्वरों को कैसे लगाना अथवा उनका कहन कैसा है तब हम शास्त्र के अर्थ का अनर्थ कर बैठेंगे।

किसी भी विषय में अथवा शैली का नवीनीकरण अत्यंत आवश्यक है किन्तु यह नवीनीकरण बिना अपनी जमीन अथवा आधार छोड़े होना चाहिए। कहने का तात्पर्य है कि शास्त्र के आधार पर ही प्रयोग परम्परा के तत्व को समझा जा सकता है। आज के ध्यान को समझने के लिए हमें अत्यंत उच्च स्तर की साधना की आवश्यकता है। पूर्व के आचार्यों ने जो कुछ कहा वो उनका अनुभव था; आज शायद अपनी साधना के माध्यम से हम वहां तक नहीं पहुँच सके सम्भवतः इसीलिए उनकी बात सहजता से नहीं स्वीकार कर पाते हैं। गुरु जी लोग अपनी उम्र के आखिरी पड़ाव में कहते थे कि जीवन में एक राग ही समझ जाओ तो जीवन धन्य हो जाएगा। विदुषी एन. राजम जी ने एक इंटरव्यू में कहा 80 वर्ष बाद अब लगता है कि थोड़ा-थोड़ा स्वर समझ में आने लगा है। एक इंटरव्यू में पंडित राजन मिश्रा जी ने कहा 'कितने राग गाओगे? एक स्वर लगा दो और किसी के दिल में उतर जाओ वही संगीत है। संगीत तुम्हारे जीवन में चैन ले आए तभी संगीत है।' इन सब उद्धरणों का सार है कि जिन लोगों ने अपनी साधना के आधार पर संगीत में उंचाइयों को स्पर्श किया है; उनके इस यात्रा में ध्यान ने अहम भूमिका निभाई है। इन श्रेष्ठजनों की बातों को अनुभव करने के लिए हमारी साधना का उस स्तर तक पहुंचना आवश्यक है। ठीक इसी प्रकार पुरातन आचार्यों द्वारा वर्णित शास्त्र को जिसे उनलोगों ने अनुभव कर के लिखा है उसे समझने के लिए हमारी साधना का स्तर उतना ऊँचा होना चाहिए। पंडित दामोदर जी ने संगीत दर्पण में भी रागों के ध्यान को प्रस्तुत किया है। मेघ राग की रागिनी के रूप में भूपाली को रखा गया है तथा इसका ध्यान इस प्रकार दिया गया है :-

'गौरद्युतिः कुंकुमलिप्तदेहा।
तुंगस्तनी चन्द्रमुखी मनोज्ञा।।
कांतं स्मरंती विरहेण दूना।
भूपालिकेयं रसशांतियुक्ता।।'[10]

अर्थात् जो गौर वर्ण की काँति वाली है। जिसके शरीर पर केसर का लेप है। जिसके स्तन ऊँचे हैं। जो चंद्रमुखी और रमणीय है, जो विरह से त्रस्त और शांत रस युक्त है। ऐसी भूपाली रागिनी है।

इसी प्रकार पंडित दामोदर ने अन्य राग तथा रागिनियों के 'ध्यान' दिए हैं। इन ध्यान में श्रृंगार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पंडित दामोदर का समय लगभग 16 शताब्दी का था जो की मुगल काल था। इस समय संगीत मंदिरों से निकल कर दरबारों में आ गया। अतः संगीत की विषय वस्तु में भगवान की भक्ति के स्थान पर राजा की प्रसंशा तथा श्रृंगार रस के काव्यों को महत्व दिया गया। शायद इसी का परिणाम है कि इस समय संगीतकारों को कभी भगवत भक्ति के माध्यम रहने वाले संगीत में स्त्री के स्तन तथा उसकी रमणीयता दिखने लगी थी।

निष्कर्षः-

राग के अपने स्वरूप को ही रागध्यान के नाम से संबोधित कर सकते हैं। रागध्यान के विषय में जानने, समझने तथा चर्चा करने से पूर्व आवश्यक है कि हमें स्वर तथा लय का ध्यान जागृत करना चाहिये; क्योंकि राग का ध्यान तभी साकार होगा जब उस राग का सही स्वर लगे और ऐसा तभी होगा जब राग के स्वरों का ध्यान जागृत किया

जाए। ध्यान पर पूर्व के आचार्यों ने विचार किया है तथा लेखन के माध्यम से सृजन भी किया है। ध्यान का उल्लेख वैदिक काल से ही प्राप्त होता है किन्तु राग के ध्यान का उल्लेख मध्यकाल में मिलता है। राजनैतिक शासन व्यवस्था में जब संगीत को प्रतिबंधित किया जाने लगा तब रागध्यान को लिख कर इसे संरक्षित करने का प्रयास किया गया। तत्कालीन समय की ऐसी मांग थी। तब आचार्यों ने ऐसा किया लेकिन मेरे मत से राग का ध्यान लिखा नहीं जा सकता है। क्योंकि किसी एक राग का जो स्वरूप एक कलाकार के मन में उभर कर आता है आवश्यक नहीं है कि वही स्वरूप अन्य को भी अनुभव हो।

उद्देश्य :-

मुझे आशा है कि इस शोधपत्र के माध्यम से राग के ध्यान के सम्बन्ध में तथ्यों तथा निजविचारों को लिखित रूप में प्रस्तुत कर सकूँ, जोकि भविष्य में इस विषय से सम्बन्धित एक उपयोगी तथ्य सामग्री के रूप में उपलब्ध हो सकेगी।

पाद टिप्पणी :-

1. कुलकर्णी वसुधा : भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, वसुधा कुलकर्णी प्रकाशन, सोजती गेट जोधपुर, 1990 पृ. 106
2. यशोविजय ज्ञान सागर गीता : भारतीय संगीत में राग ध्यान की अवधारणा (शोध प्रबंध), पंजाब विश्वविद्यालय, 2004 पृ. 1
3. वेदांलकार रघुबीर : उपनिषदों में योग विद्या के. सी. पब्लिसर्स, दिल्ली, 1991 पृ. 68
4. यशोविजय ज्ञानसार उद्घृत गीता : भारतीय संगीत में राग ध्यान की अवधारणा (शोध प्रबंध), पंजाब विश्वविद्यालय, 2004 पृ. 1
5. शर्मा पंकज माला, सामगान-उद्भव व्यवहार एवं सिद्धांत, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 1996 पृ. 20
6. गीता, भारतीय संगीत में राग ध्यान की अवधारणा (शोध प्रबंध), पंजाब विश्वविद्यालय, 2004 पृ. 99
7. गीता, भारतीय संगीत में राग ध्यान की अवधारणा (शोध प्रबंध), पंजाब विश्वविद्यालय, 2004 पृ. 99
8. संगीत संवाद-7 आचार्य वृहस्पति के साथ, संगीत पत्रिका, दिसम्बर 2003 पृ. 23
9. 'रामरंग' पंडित रामाश्रय झा : अभिनव गीतांजलि भाग 4 संगीत सदन प्रकाशन इलाहबाद, 2000 पृ. 3
10. दामोदर पंडित, संगीत दर्पण हिंदी अनुवाद डॉ. विश्वंभर नाथ भट्ट, संगीत कार्यालय हाथरस, 2015 पृ. 112

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कुलकर्णी वसुधा, भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, वसुधा कुलकर्णी प्रकाशन, सोजती गेट जोधपुर, 1990
2. यशोविजय ज्ञान सागर गीता, भारतीय संगीत में राग ध्यान की अवधारणा (शोध प्रबंध), पंजाब विश्वविद्यालय, 2004
3. वेदांलकार रघुवीर, उपनिषदों में योग विद्या के. सी. पब्लिसर्स, दिल्ली, 1991
4. शर्मा पंकज माला, सामगान-उद्भव व्यवहार एवं सिद्धांत, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 1996
5. गीता, भारतीय संगीत में राग ध्यान की अवधारणा (शोध प्रबंध), पंजाब विश्वविद्यालय, 2004
6. संगीत संवाद-7 आचार्य वृहस्पति के साथ, संगीत पत्रिका, दिसम्बर 2003
7. 'रामरंग' पंडित रामाश्रय झा, अभिनव गीतांजलि भाग 4 संगीत सदन प्रकाशन इलाहबाद, 2000
8. दामोदर पंडित, संगीत दर्पण हिंदी अनुवाद डॉ. विश्वंभर नाथ भट्ट, संगीत कार्यालय हाथरस, 2015

पं. भातखंडे लिखित हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका-अनुसंधान एक अध्ययन

प्रो. विशाल विजय कोरडे

सारांशः-

पं. भातखण्डे पेशे से वकील थे, परंतु वे इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि संगीत कर्ण विद्या है। अतः गुरू के तालीम के बिना इसे समुचित रूप से गाया नहीं जा सकता और न ही समझाया जा सकता है। इसलिये उन्होंने संगीत के शास्त्र ग्रंथो का अध्ययन किया एवं संगीत के क्रियात्मक पक्ष की भी शिक्षा ली। उनका मानना था कि किसी भी कला की संपूर्ण जानकारी के लिए उसके दोनो पक्षो का ज्ञान एवं अभ्यास नितांत आवश्यक है। उनके ग्रंथो का प्रकाशन सन 1909-1937 तक हुआ। अपने संगीत को वैज्ञानिक कसौटी पर रखकर सुव्यवस्थित रूप देने वाले भातखण्डे प्रथम मनीषी गई थे। इस प्रकार उनके दुर्लभ संगीत ग्रंथों का प्रकाशन तथा उनका निचोड़ एकत्रित करके एक सुगम ढाँचा भावी पीढ़ी के लिए खडा कर गए। पं. भातखण्डे ने लगभग 6500 पृष्ठों के मुद्रित तथा प्रकाशित ग्रंथ संगीत जगत को दिये है।

शोधबिंदु : क्रमिक पुस्तक मालिका, संगीत शास्त्रकार, पं. विष्णु नारायण भातखण्डे, वाग्गेयकार, हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति।

भूमिका

भारतीय शास्त्रीय संगीत में पं. विष्णुनारायण भातखण्डे संगीतशास्त्र एवं कला को अपनी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 से 6 में लिपिबद्ध किया है, जिसका उपयोग आज संगीत सिखनेवाले विद्यार्थी और शिक्षक कर रहे है। एक शतक के बाद भी इस ग्रंथ के सिद्धांत आज भी संगीत क्षेत्र के लिए मार्गदर्शक हो रहे है। इसलिए यह संशोधन कार्य संशोधन पत्र के स्वरूप में प्रस्तुत है।

अनुसंधान पद्धतिः-

प्रस्तुत विषय वस्तु को समझने के लिए शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक एवम् विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है।

शोध के उद्देश्य :-

1) पं. विष्णुनारायण भातखण्डे द्वारा संशोधित कार्य नवीनता से संगीत क्षेत्र में रखना।
2) संगीत छात्रों के लिए उपयुक्त।
3) भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति :-

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-1(1)- सन 1909 मे हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। पं. भातखण्डे जी ने इस भाग में विद्यार्थियों की दृष्टि से 10 आश्रय रागों का स्वर पहचान, उनका परिचय एवं 10 ही रागों में एक सरगम गीत एवं दो मध्यलय की बंदिशे दी गयी है।

---

*सहायक प्राध्यापक, श्री शिवाजी कला, वाणिज्य व विज्ञान, महाविद्यालय अकोला, महाराष्ट्र,
E-mail : vishalkorde16@gmail.com

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-2(2)- सन 1921 में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका का द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। द्वितीय भाग पुनः भाग-1 में वर्णित रागों का थोड़ा विस्तार करके सरगम गीत, लक्षण गीत, ख्याल एवं ध्रुपद जैसी पुरानी बंदिशों का संकलन किया गया है। इस भाग में राग यमन-45, राग अल्हैया बिलावल-28, राग बिलावल-5, राग खमाज-31, राग भैरव-42, राग पूर्वी-35, राग मारवा-27, राग काफी-25, राग आसावरी-24, राग भैरवी-27, तथा राग तोडी-39 की कुल 328/319 बंदिशों का संग्रह प्राप्त होता है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-3(3) सन 1922 मे हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका का तृतीय भाग प्रकाशित हुआ। तृतीय भाग में 15 रागों में लगभग 512/513 बंदिशों का संग्रह किया गया है। राग भूपाली-36, राग हमीर-32, राग केदार-43, राग कालिंगडा-18, राग बिहाग-47, राग देस-38, राग तिलक कामोद-27, राग वृन्दावनी सारंग-40, राग भीमपलासी-37, राग पीलू-26, राग जौनपुरी-40, तथा राग मालकंस-35 इस प्रकार इसमे कुल 512 बंदिशों का संग्रह प्राप्त होता है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4(4) सन 1923 मे हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका का चतुर्थ भाग प्रकाशित हुआ। क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4 में कुल 20 राग मे 534 बंदिशे संकलित की गयी है। इसमे शुद्धकल्याण 24, कामोद-20, छायानट-22, गौड सारंग-27, हिंदोल-26, शंकरा-29, देशकार-23, जयजयवंती-21, रामकली-21, पूरिया धनाश्री-24, वसंत-29, परज-27, पूरिया-29, ललित-31, गौडमल्हार-25, मिया मल्हार-26, बहार-36, दरबारी कान्हडा-31, अडाणा-27, तथा मुलतानी में 36, इस प्रकार 534 बंदिशों का संकलन किया गया है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-5(5), क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-5 में 68 अप्रचलित रागों की 255 बंदिशें संकलित की गयी है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-6(6), क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-6 मे 68 अप्रचलित रागों की 239/237 बंदिशें संकलित की गयी है।

पं. भातखण्डे जी ने सन 1929 से 1931 तक हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका के 5-6 का लेखन कार्य किया। सन 1936 में श्री भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर के क्रमिक पुस्तक मालिका के 5-6 वे भाग का मुद्रण प्रारंभ कर देने की आज्ञा प्रदान की। पुस्तकें दोनों भाग छपकर तैयार हो गये थे। परन्तु इसका प्रकाशन होने से पूर्व ही भातखण्डे जी का स्वर्गवास हो गया। इस पुस्तिका का प्रकाशन 1937 में हुआ।

क्रमिक पुस्तक मालिका के भाग 1 से 4 राग वर्गीकरण पद्धति से बंदिशें दी गयी है तथा भाग 5 एवं 6 में रागांग पद्धति के अनुसार बंदिशें दी गयी है।

निष्कर्ष :

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-1 से 6 इस ग्रंथ का उपयोग भारत के सभी विश्वविद्यालयों में संदर्भ ग्रंथ के रूप में प्रयोग किया जाता है। पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा संपूर्ण भारत में 15 वर्ष यात्रा करके संगीत शास्त्र एवम् कला को अपने ग्रंथ में लिपिबद्ध किया है। क्रमिक पुस्तक मालिका के सहायता से आज हम मध्ययुगीन रचनाकारों की बंदिशें सीख सकते है। उनका अध्ययन कर सकते है।

गुरूशिष्य परंपरा से प्राप्त अप्रचलित रागों का समावेश पं. भातखण्डे द्वारा क्रमिक पुस्तक मालिका के भाग-5 एवं् भाग-6 में किया गया है। पं. भातखण्डे के इस महान संगीत कार्य से सभी संगीतप्रेमी, विद्यार्थी, शिक्षक, कलाकार और शोधार्थी लाभान्वित होंगे।

संदर्भग्रंथ सूची :

1. भातखण्डे, विष्णु नारायण (1954), 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति', क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-1, संपादक लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस

2. भातखण्डे, विष्णुनारायण (1979), 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति', क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-2, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश
3. भातखण्डे, विष्णुनारायण (1988), 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति', क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-3, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश
4. भातखण्डे, विष्णुनारायण (1987), 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति', क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश
5. भातखण्डे, विष्णुनारायण (1979), 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति', क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-5, संपादक व प्रकाशक लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तरप्रदेश
6. भातखण्डे, विष्णुनारायण (2013), 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति', क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-6, संपादक व प्रकाशक लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश

ऊँकार - सृष्टि का सर्वोच्च संगीत

श्रीमती स्मिता उदय कोल्हटकर

सार संक्षेप :

भारतीय विचारधारा के अनुसार इस परमात्म स्वरूप ऊँकार की उपासना को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। शास्त्रों के आधार पर ऊँकार यानि अकार, उकार, मकार तथा बिंदु इन साढ़े तीन मात्राओं से युक्त; सृष्टि व्यापी; सारे मंत्रो का अधिपति, भोग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति कराने वाला परमशुद्ध नादचैतन्य।

ऊँकार साधना ही परम भक्ति है जिससे अंतिम लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है यह विचार प्रकट करने का शोधार्थी द्वारा कष्टसाध्य प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : *ऊँकार, प्रणव, उपनिषद्, सगुण-निर्गुण, ब्रह्म।*

प्रस्तावना :

ऊँकार बिंदु संयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ऊँकाराय नमो नमः।।

शिव षडक्षर स्तोत्र के श्लोकानुसार ऊँकार जो बिंदुसंयुक्त है, योगीजन उसका नित्य ध्यान करते हैं, इस लोक में जो भोग एवं मोक्ष का प्रदाता है उस ऊँकार को नमस्कार है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों एवं तत्ववेत्ताओं के अनुसार ऊँ शक्ति, सामर्थ्य और ईश्वरीय संपदाओं का रूप है। ऊँ ही ब्रह्म बीज है जिसे धारण करने से दैवीय शक्ति का प्रादुर्भाव होकर मनुष्य अपने अंतिम लक्ष्य तक पहुंच सकता है। अतः ऊँकार की साधना से दैवीय शक्तियों के साथ मुक्ति का मार्ग भी सुगम बनता है। इसी ऊँकार के महात्म्य को शोधार्थी विस्तार से बताना चाहती है।

ऊँकार की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए संतश्री ज्ञानेश्वर महाराज ने अपनी ज्ञानेश्वरी के प्रथम दोहे में कहा है कि -

ऊँ नमोजी आद्या। वेदप्रतिपाद्या।
जय जय स्वसंवेद्या। आत्मरूपा।।1

अर्थात् ऊँकार रूपी एक आदि बीज है जो आत्मचेतन होते हुए जो जानने योग्य है।

उसके आगे के श्लोक में श्री ज्ञानेश्वरजी लिखते हैं कि -

अकार चरणयुगुल। उकार उदर विशाल।
मकार महामंडल। मस्तकाकारें।।
हे तिन्ही एकवटले। तेथ शब्दब्रह्म कवळलें।
ते मियां श्री गुरूकृपा नमिलें। आदिबीज।।2

अर्थात् - संत ज्ञानेश्वर जी गणेश जी को ऊँकार का स्वरूप मानते हुए तीन मात्राओं के बारे में विस्तार से बताते हैं कि ऊँकार में रहने वाली प्रथम मात्रा 'अकार' की है तथा वो गणेश जी के दो पैर है। दूसरी 'उकार' की मात्रा उनका विशाल उदर है तथा तीसरी 'मकार' की मात्रा इनके बडे वृत्ताकार मस्तक के समान है। आगे की पंक्ति में ज्ञानेश्वर जी कहते हैं कि इन तीनों का जहाँ एक-दूसरे में मिलन होता है वहीं से इस विश्व का 'शब्दब्रह्म' आदिबीज 'ऊँकार' में से ही प्रकट होता है।

ऊँकार स्वयंभू होकर परमात्मा का शुद्ध स्वरूप है जिसमें से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। सृष्टि की

* शोध छात्रा : गायन विभाग फकेल्टी ऑफ परफोर्मिंग आर्ट्स, द महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, वडोदरा, smitak1970@gmail.com] 99251 48715

सारी व्यवस्थाएँ उसी के उद्‌गम से आरंभ होती है और गतिशील रहती है। वेदांत के मुताबिक इस सृष्टि की उत्त्पत्ति, स्थिति एवं लय सभी ऊँकार ही है। यह ऊँ साढ़े तीन अक्षरों से बना है - 'अ', 'उ', 'म' तथा अर्धबिन्दु। ऊँकार की तीन मात्राएँ - अकार, उकार एवं मकार अनुक्रम से जागृति, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओं के प्रतीक मानी जाती है। 'ऊँकार' की ध्वनि नाभि प्रदेश से आरंभ होकर उसका उच्चारण कंठ, होंठ, मुख से होता है तथा इसका बीज कुंडलीनी में निहित होता है।

अकार की मात्रा जागृति यानि हमारे तन की - श्वास-प्रश्वास की है। उकार की मात्रा स्वप्न अर्थात् मन से संबंधित एवं 'तेज' की है। तथा मकार की मात्रा आत्म तत्व की अर्थात् ज्ञान की है।

ऊँकार के अकार, उकार, मकार की मात्राओं की विशिष्टता की तालिका :[3]

विषय	अकार	उकार	मकार
देव	ब्रह्मा	विष्णु	महेश
स्थिति	जागृति	स्वप्न	सुषुप्ति
प्राणायाम	पूरक	कुंभक	श्रेचक
उच्चार	कंठय	ओष्ठय	ओष्ठय अनुनासिक
मात्रा	श्वास की	तेज की	ज्ञान की
मात्रा	देह की	मन की	आत्मा की
मात्रा	संसार	संसार	परमार्थ
मात्रा	प्रवृत्ति	प्रवृत्ति	निवृत्ति
मात्रा	उत्पत्ति	स्थिति	लय
मात्रा	शक्ति	शक्ति	शांति
पंचमहाभूत	वायु	अग्नि	आकाश

पंतजलि ऋषि अपने योगसूत्र में लिखते है कि-

'तस्य वाचकः प्रणवः।'[4]

अर्थात् - उस ईश्वर नामक चेतन तत्व के अस्तित्व का बोध कराने वाला शब्द ऊँकार यानि 'प्रणव' है।

माण्डूक्योपनिषद् में ऊँकार का वर्णन एवं उसकी सर्वात्मकता बतायी है। इसके पहले श्लोकानुसार -

ओमित्येतदक्षरमिद सर्व तस्योपव्याख्यानम भूतं भव वित्यदिति सर्वमोंङ्कार एव।
यच्चान्यत्त्रिकालातील तदप्योङ्कार एव।।[5]

अर्थात् - ऊँ यह अक्षर ही सबकुछ है। भूत, भविष्य एवम् वर्तमान भी सबकुछ ऊँकार रूप है। उसका यह व्याख्यान है। इससे भिन्न जो त्रिकालातीत तत्व है वही ऊँकार है।

मांडूक्य का दूसरा श्लोक -

सर्व ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पाद्।।6

अर्थात् यह सबकुछ ब्रह्म है। यह आत्मा ब्रह्म ही है। वह आत्मा चतुष्पाद है।

यहाँ आत्मा को चतुष्पाद बताते हुए ऊँकार की साढ़े तीन मात्राओं से जोडा गया है। एक पाद अकार, दूसरा उकार, तीसरा मकार तथा बिंदु चौथा पाद है और यहीं चार पाद चार अवस्थाओं से संबंधित है।

कठोपनिषद् में यमराज भी नचिकेता को ऊँकार की महिमा बताते हुए कहते हैं कि - सकल वेद और संपूर्ण तपस्या में लक्ष्य रूप जिस पद का वर्णन है और जिस पद की इच्छा करके ब्रह्मचर्य का अवलंबन करते हैं उस पद का संक्षिप्त नाम ही 'ऊँ' है।

ऊँकार की महिमा का वर्णन करते हुए भगवद् गीता के आठवें अध्याय के 13 श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने लिखा है कि -

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।7

अर्थात् ऊँ इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुए मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिंतन करता हुआ जो पुरूष शरीर का त्याग करता है वह परमगति को प्राप्त होता है।

छांदोग्य उपनिषद के श्लोकानुसार -

'वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम।।[8]

अर्थात् सामगान का आधार भी ऊँकार ही है।

तैत्तरीय उपनिषद के श्लोकानुसार -

'ओमिति ब्रह्म। ओमितीद सर्वम्।
ओमित्येतदनुकृतिर्हस्म वा
अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति।
ओमिति सामानि गायन्ति।
ऊँ शोमिति शस्त्राणि सन्ति।
ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति।
ओमिति प्रसौति।

ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति।
ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्रवानीति।
ब्रह्मैवोपाप्रोति।।' [9]

ऊँ यह ब्रह्म है। ऊँ ही यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला सारा जगत है। ऊँ यह अक्षर निसंदेह ही अनुमोदन है। ऊँ शब्द का उच्चारण करके ही उपदेश का आरंभ किया जाता है। ऊँ बोलकर ही सामवेद के मन्त्र गाए जाते हैं। याज्ञिक लोग ऊँ, सोम ऐसा बोलकर यज्ञ साधनों की प्रशंसा करते हैं। ऊँ ऐसा बोलकर अध्वर्युः यजमान की बात का यज्ञ में उत्तर देता है। ऊँ बोलकर ही ब्रह्मा ईश्वर की स्तुति करते हैं अथवा याज्ञिक कर्म करने की आज्ञा देते हैं। ऊँ बोलकर ही अग्निहोत्र याज्ञिक कर्म करने की आज्ञा देता है। अध्ययन करने के लिए उद्यत ब्राह्मण की प्राप्ति की इच्छा से अध्ययन कार्य आरंभ करता है वह ब्रह्म को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है।

'तैत्तरीय उपनिषद' के ब्रह्मानंदवल्ली में गान्धर्व (संगीत) द्वारा प्राप्त आनंद को ब्रह्मानंद के तुल्य कहा गया है तथा उससे निष्पन्न होने वाले रस को विशुद्ध एवं आनंदमय बताया गया है। 'बैजू' के एक ध्रुवपद में उन्होंने ' ऊँकार' की महिमा का गान इस प्रकार किया है -

प्रथम मनि ऊँकार, देवन मनि महादेव
ज्ञान मनि गोरख, वेद मनि ब्रह्म
गीत को संगीत मनि, संगीत को स्वर मनि
स्वर को अक्षर मनि ताल लगन्ता
कहत बैजू बावरे सुनहुँ गोपाल लाल
दिन मनि सूरज रैन मनि चंदा।

अर्थात् भारतीय आध्यात्म चिंतन मूल रूप से ऊँकार या प्रणव पर स्थित है। स्वामी विवेकानंद ने भी 'ऊँकार' को समस्त नाम पर रूपान्तरों की एक जननी कहा है। पाइथोगोरस ने 'ऊँकार' को सृष्टि कहा है। कोई भी स्तोत्र, स्तुति, वेद मंत्र का शक्ति जागरण ऊँकार के बिना जागृत नहीं होता। मंदिरो में बजने वाली शंख की ध्वनि ऊँकार के प्रतीक के रूप में बजायी जाती है। सप्त स्वर की उत्पत्ति भी ऊँकार को ही माना जाता है। अरविन्द कहते है - समस्त नाद का आदि तथा अंत प्रणव है जिसकी ओर साधक को बढ़ना है और अंत में उसी में लीन होना है।

ज्ञानेश्वरी के बाहरवें अध्याय के श्लोकानुसार-

तरी व्यक्त आणि अव्यक्त। हें तूंचि निभ्रांत।
भक्तीं पाविजे व्यक्त। अव्यक्त योगें।।[10]

अर्थात् इस विश्व में सभी व्यक्त एवं अव्यक्त (सगुण-निर्गुण) दोनों ही ऊँकार है। भक्ति से व्यक्त स्वरूप की तथा योग से अव्यक्त स्वरूप की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार से ऊँकार ही ईश्वर है, परमात्मा है और कभी भी क्षरित न होने वाला अक्षरब्रह्म है।

उपसंहार :

उपरोक्त सभी विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सगुण एवं निर्गुण ऊँकाररूपी नादचैतन्य के दो स्वरूप है। ऊँकार का वाचिक उच्चार सगुण रूप का द्योतक है तथा मकार के अंत में अतिसूक्ष्म होने वाला नाद, जो लय होकर शून्यतम हो जाता है वह निर्गुण निराकार का द्योतक है। हमारे शास्त्रानुसार भक्ति भी मूल रूप से दो प्रकार की सगुण एवं निर्गुण मानी गयी है और निरपेक्ष रहकर प्रेमपूर्वक किया गया आत्मसमर्पण ही भक्ति की पराकाष्ठा है। यही पराकाष्ठा संगीत के माध्यम से सुगम बनती है। अतः ऊँकार साधना भक्ति संगीत ही है। क्योंकि ऊँकार के उच्चारण में ही संगीत समाया हुआ है जिसका संबंध हमारे श्वास-प्रश्वास से भी है। अतः ऊँकार ही ऐसा सर्वोपरि भक्ति योग है जिसमें भक्ति मार्ग का अवलंबन करते हुए कर्म के माध्यम से मुक्ति की ओर कदम बढाते हैं। अतः केवल ऊँकार के उच्चारण में सगुण एवं निर्गुण साधना का अपूर्व संगम होते हुए भक्तियोग, कर्मयोग तथा ज्ञानयोग जैसे तीनों योगों का अपूर्व मिलन है। अर्थात् ऊँकार साधना सगुण से निर्गुण की ओर शब्द से निःशब्द की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, व्यक्त से अव्यक्त की ओर, भक्ति से मुक्ति की ओर तथा नर से नारायण की ओर ले जाने वाली है। अतः ऊँकार के उच्चारण से संसार एवं परमार्थ अर्थात् भोग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो सकती है। यही मनुष्य का परम लक्ष्य है तथा यही भक्ति का परम लक्ष्य है।

पाद टिप्पणी :

1) श्री ज्ञानेश्वरी/गीता प्रेस, गोरखपुर/1-1/पृ. 9
2) श्री ज्ञानेश्वरी/गीता प्रेस, गोरखपुर/1-2/पृ. 9
3) डॉ. जयन्त करंदीकर/ऊँ शक्ति शब्द स्वर साधना/पृ. 52
4) स्वामी रामदेव/योगदर्शन/पृ.18
5) मांडुक्य उपनिषद/गीता प्रेस, गोरखपुर/श्लोक-1
6) मांडुक्य उपनिषद/गीता प्रेस, गोरखपुर/श्लोक-2
7) श्रीमद् भगवत गीता/गीता प्रेस, गोरखपुर/8-73
8) छांदोग्य उपनिषद/गीता प्रेस, गोरखपुर/1-7-1
9) तैत्तरीय उपनिषद pdf /www.shdvef.com/प्रथम वल्ली-शिक्षावल्ली/ आठवां अनुवाक
10) श्री ज्ञानेश्वरी/गीता प्रेस, गोरखपुर/12-23

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1) पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, भगवती देवी शर्मा/सामवेद संहिता/युगान्तर चेतन प्रेस, हरिद्वार/गुरू पूर्णिमा संवत् 2054.
2) स्वामी चिन्मयानंद/नारद भक्ति सूत्र/सेंट्रल चिन्मय ट्रस्ट/2012.
3) शान्ताराम आठवले/ऊँकार रहस्य /आनंद मुद्रणलय, पूणे/1996.
4) परमहंस योगानन्द/योगी कथामृत/योगदा सत्संग सोसायटी ओफ इंडिया- सेल्फ रियलाइझेशन फेलोशिप/मराठी आवृत्ति-2005.
5) स्वामी तुलसीदास/श्रीरामचरित मानस/गीता प्रेस, गोरखपुर/ओक्टोबर- 2013.
6) साक्षात्कार

रागों का समय सिद्धान्त : एक विश्लेषण

डॉ. कुमार अम्बरीश चंचल

सार

हिंदुस्तानी संगीत पद्धति में राग रागिनी गायन अथवा वादन का समय निर्धारित रहता है। रागों में प्रयुक्त उत्तरांग-पूर्वांग, वादी-सम्वादी स्वरों को देखकर गाने का समय निश्चित किया जाता है साथ ही राग में प्रयुक्त स्वरों के अनुसार रागों के गाने का नियम बताया गया है। रे - ध कोमल एवं शुद्ध ग प्रयुक्त होने वाले रागों को सन्धिप्रकाश कहते हैं। रे - ध शुद्ध प्रयुक्त होने वाले रागों को दूसरे प्रहर का राग यानी संधिप्रकाश के बाद गाए जाने वाले राग कहते हैं। ग नि कोमल प्रयुक्त होने वाले राग को तीसरे व चौथे प्रहर का राग कहते हैं। तीसरा और चौथा प्रहर दिन अथवा रात्रि में 2 से 6 बजे तक रहता है। तीव्र मध्यम प्रयुक्त होने वाले राग अधिकतर रात्रि में गाए जाते हैं।

उपर्युक्त नियम के विपरीत कुछ राग नियम के बंधन से मुक्त हैं, जैसे बसंत की अवधारणा नियंता दिन के उत्तरार्ध में होनी चाहिए और बाहर राग के लिए मध्य रात्रि का समय निश्चित है, किंतु वसंत ऋतु में इन्हें अभ्यास में हर समय ग्रहण करने की प्रथा है। ठीक वैसे ही है राग भैरवी का समय प्रातः काल है, पर आजकल संगीत सभाओं की समाप्ति में रात्रि अथवा दिन के किसी भी समय में गाने का प्रचलन है। राग के स्वभाव के साथ-साथ प्रकृति का अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। अतः जहां कुछ रागों में समय नियम बंधन के समान प्रतीत होता है वहीं कुछ रागों में समय नियम से गाना मनोवांछित सुख प्रदान करने में भी सक्षम प्रतीत होता है।

सूचक शब्द *- राग, ऋतु, समय, स्वर, शुद्ध, कोमल, तीव्र, नियम, संधिप्रकाश।*

'राग' शब्द का अर्थ है ऐसा स्वर समूह जो रंजक हो, यानि सुख या आनन्द देने वाला है। इस रंजकता के अलावा 'राग' में और कुछ विशेषताएँ भी हो है। लोकगीत या अन्य धुनें रंजक तो होती है किन्तु उन्हें हम राग नहीं कहते है। इस बात को विस्तार से यहाँ समझाना तो संभव नहीं है, इसलिये इतना ही कहकर छोड़ देते हैं कि राग एक शास्त्रीय रचना है जिसमें रंजकता के साथ-साथ नियमों का बन्धन भी रहता है।[1]

भारतीय संगीत की यह प्रमुख विशेषता रही है कि प्रत्येक राग के गाने-बजाने का एक निश्चित समय माना गया है। शास्त्रकारों ने अपने अनुभव तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर विभिन्न रागों के पृथक-पृथक समय निश्चित किया है। यह अकाट्य सत्य है कि रागों को उनके निश्चित समय पर गाने बजाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है। कभी-कभी अपवाद भी देखने को मिल जाता है।[2]

रागों के समय सिद्धान्त की परम्परा के संकेत भारतीय संगीत में अतिप्राचीन काल से ही देखा जा सकता है। वेद अथवा सामगान को विशिष्ट ऋतुओं में गाये जाने का वर्णन मिलता है। डॉ. शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे के अनुसार ''यजुर्वेद में 'रथंतर' साम को तीन स्तोमों में वंसत ऋतु में 'बृहत्साम' को पंद्रह स्तोमों से ग्रीष्म ऋतु में तथा 'वैरूप साम' को शरत ऋतु में गाने का संकेत है। अथर्ववेद के अनुसार वसंत ऋतु में 'बृहत्साम' 'रथंतर' का ग्रीष्म ऋतु के मासों में, 'यज्ञायज्ञिय' व 'वामदेव्य' का वर्षा ऋतु

सहा. आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी।

तथा 'वैरूप' व 'वैराज' साम का शरदमासों में अनुष्ठान का विधान है। इससे संकेत मिलता है कि वैदिक काल में भी संगीत के विशिष्ट रूप को विशिष्ट समय पर गाने का विधान था। इसको हम भारतीय संगीत में रागों के ऋतु एवं समय सिद्धान्त की शैशवा अवस्था कह सकते है।[3]

'यथोक्तकाल एवैते गेयाः पूर्वविधानतः। राजाज्ञया सदा गेया न तु कालं विवारयेत।।' अर्थात् प्राचीन आचार्यों के अनुसार रागों को यथा योग्य काल में गाना चाहिए, परन्तु राजाज्ञा हुई हो तो समय के नियम की उपेक्षा करके चाहे जब गा लेना चाहिए।[4]

पं. भातखण्डे ने रसों के सम्बन्ध में जैसे तीन स्वर जोड़ियों वाले रागों के तीन समूहों को माना है तद्वत उन्होंने उन्हीं जोड़ियों का अपनी परम्परा में राग समय के निर्धारण में भी उपयोग किया है। इस सम्बन्ध में पूर्वांगवादी 'जिनका वादी स्वर पूर्वांग में हो' उत्तरांगवादी 'जिनका वादी स्वर उत्तरांग में हो' और सन्धिप्रकाश 'जो दोनों सन्ध्याकाल में गाए बजाए जाते हों' राग इस परिभाषा का भी उपयोग किया है। उनके मत से पूर्वांगवादी रागों का गायन काल दिन के 12 बजे से रात्रि 12 बजे तक है और उत्तरांगवादी रागों का काल रात्रि के 12 बजे से दिन के 12 बजे तक है। कोमल रे - ध वाले रागों को सन्धि प्रकाश राग माना है।[5]

भारतीय संगीत में रागों के समय निर्धारित करने के कई नियम है, जिसका आधार विभिन्न स्वर समुदायों का प्रयोग, वादी-सम्वादी की महत्ता, अध्वदर्शक स्वर आदि है। उसे निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है।[6] यह सत्य है कि रागों को उनके समय पर गाने-बजाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है। निम्न चार सिद्धान्तों के आधार पर रागों का समय निश्चित किया जाता है,

1. अध्वदर्शक स्वर
2. वादी-सम्वादी स्वर
3. पूर्वांग-उत्तरांग
4. रे ध और ग नि 7

अध्व-दर्शक स्वर के आधार पर समय निश्चित करता मध्यम स्वर को अध्वदर्शक कहते है। यह स्वर समय निश्चित करने में पथप्रदर्शक का काम करता है। प्रातः काल रे ध कोमल स्वरों वाले रागों में शुद्ध मध्यम की प्रधानता रहती है। यदि इस स्थान पर तीव्र म को प्रधान कर दिया जाए तो यही सायंगेय राग हो जाता है। देखा जाता है कि प्रातः गेय सन्धिप्रकाश रागों में शुद्ध मध्यम प्रधान रहता है जैसे- भैरव, कालिंगड़ा में। पुनः दोनों मध्यमों से युक्त रामकली, ललित आदि सन्धि प्रकाश आदि राग आते है। इनमें तीव्र की अपेक्षा शुद्ध मध्यम का ही प्राधान्य रहता है। क्रमशः तीव्र प्रधान होता चला जाता है। जैसे- मारवा, श्री आदि रागों में। पूर्वी में दोनों मध्यम आते हैं परन्तु तीव्र म दोनों में आते है परतु तीव्र म की प्रधानता रहती है। इसके बाद कल्याण, हमीर, केदार आदि तीव्र मध्यम के महत्व वाले रागों में शुद्ध मध्यम की प्रधानता पुनः होने लगती है। जैसे- बागेश्री, मालकंस, काफी आदि। अतः स्पष्ट होता है कि शुद्ध मध्यम प्रातः कालीन रागों का द्योतक है और तीव्र मध्यम सायंकालीन। यद्यपि कुछ राग इसके अपवाद भी हैं। जैसे- तोड़ी राग प्रातःकाल गाते हैं परन्तु इसमें तीव्र मध्यम स्वर की प्रधानता है। फिर भी मध्यम स्वर की सहायता से एक स्थूल नियम का ज्ञान आसानी से हो जाता है कि प्रातः काल में शुद्ध मध्यम, क्रमशः दोनों मध्यम का प्रयोग हुये भी शुद्ध मध्यम की प्रधानता, पुनः दोनों मध्यमों के प्रयोग में तीव्र मध्यम की प्रधानता और अन्त में पूर्णतः तीव्र मध्यम का प्राधान्य हो जाता है। इन्हीं रागों को क्रमशः प्रातः कालीन, मध्यान्ह कालीन अपरान्ह कालीन और सायंगेय या रात्रिगेय रागों में बांटा जा सकता है।[8]

2. वादी-सम्वादी स्वर- जिस प्रकार दिन के दो भाग किये गये है उसी प्रकार सप्तक के भी दो भाग किये गये है- उत्तरांग और पूर्वांग। संख्या की दृष्टि से सा, रे, ग, म पूर्वांग में और प, ध, नि, सां उत्तरांग में आते हैं। सर्वप्रथम शास्त्रकारों ने यह नियम बनाया होगा कि जिन रागों का वादी स्वर सा, रे, ग, और म स्वरों में से हो, उनका गायन समय दिन के पहले हिस्से अर्थात् 12 बजे दिन से 12 बजे रात्रि के भीतर और जिन रागों का वादी प, ध, नि और सां में से हो, उनका गायन समय दिन के दूसरे हिस्से अर्थात् 12 बजे रात्रि से 12 बजे दिन के भीतर होना चाहिए उपर्युक्त नियम बनाने के बाद हमारे शास्त्रकारों

ने कुछ अपवाद भी पाये होंगे। अतः उन्हें इस नियम में संशोधन करना आवश्यक हो गया होगा। उदाहरणार्थ भीमपलासी राग में वादी मध्यम और सम्वाद षड्ज है। सप्तक का पूर्वांग सा से म तक मानने से वादी-सम्वादी दोनों सप्तक के पूर्वांग में आ जाते है, किन्तु यह उचित नहीं। राग का दूसरा नियम यह भी है अगर वादी स्वर सप्तक के पूर्व अंग से है तो सम्वादी स्वर उत्तर अंग से होगा। अगर वादी स्वर उत्तरांग अंग से है तो सम्वादी स्वर पूर्व अंग से होगा। इस दृष्टि से भीमपलासी और भैरवी राग इस नियम के प्रतिकूल है। दोनों रागों में वादी म और सम्वादी सा है। उपर्युक्त नियमानुसार भैरवी भी भीमपलासी के समान पूर्वांग प्रधान राग होना चाहिए और उसका गायन समय 12 बजे दिन से 12 बजे रात्रि के भीतर किसी समय होना चाहिए, किन्तु जैसा कि हम सभी जानते है कि भैरवी प्रातः कालीन राग है। ठीक इसी प्रकार की कठिनाई अन्य-अन्य रागों में मिलती है।[9]

इन सब अपवादों को देखते हुए विद्वानों ने सप्तक के पूर्वांग तथा उत्तरांग स्वरों का विस्तार कुछ बढ़ा दिया है अब पूर्वांग को सा से प तक अर्थात ''सा रे ग म प'' कर दिया है तथा उत्तरांग को बढ़ाकर म से सा तक कर दिया है। इस प्रकार मध्यम तथा पंचम स्वर सप्तक के दोनों विभागों में आ गये है पूर्वांग सा रे ग म प तथा उत्तरांग म प ध नि सां'[10]

वादी सम्वादी दोनों सप्तक के एक हिस्से से नहीं होने चाहिये। राग का यह नियम है कि वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में आता है तो उसका गायन-समय दिन के पूर्व अंग में होगा और अगर उत्तरांग में आता है तो उसका गायन समय दिन के उत्तर अंग में होगा।[11]

3. पूर्वांग उत्तरांग- जिस राग का पूर्वांग अधिक प्रधान होता है, वह 12 बजे दिन से 12 बजे रात्रि तक की अवधि में तथा जिस राग का उत्तर अंग अधिक प्रबल होगा वह 12 बजे रात्रि से 12 बजे दिन की अवधि में किसी समय गाया-बजाया जायेगा। उदाहरण के लिये केदार, भूपाली, दरबारी कान्हड़ा, भीमपलासी आदि पूर्वांग प्रधान राग दिन के पूर्व अंग में और सोहनी, बसंत, हिंडोल, बहार, जौनपुरी आदि उत्तरांग प्रधान राग दिन के उत्तर अंग में गाये-बजाये जाते है। इन्हें क्रमशः पूर्व राग और उत्तर राग भी कहते है। इस सिद्धान्त के कुछ राग अपवाद स्वरूप है, जैसे- राग हमीर स्वरूप की दृष्टि से यह उत्तरांग प्रधान राग है, किन्तु दिन के पूर्व अंग में गाया जाता है।[12]

4. रे ध (कोमल), रे ध (शुद्ध) तथा ग नि (कोमल) वाले राग- सम्पूर्ण रागों को मुख्यतः 3 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, रे ध (कोमल), रे ध (शुद्ध), और ग नि (कोमल) वाले राग निम्नवत हैं-

(क) रे ध (कोमल)- जिन रागों में रे ध (कोमल) लगते हैं, वे संधिप्रकाश राग कहे गये हैं क्योंकि उनका गायन उस समय होता है जब दिन और रात्रि (प्रकाश) की सन्धि होती है। दूसरे शब्दों में सूर्योदय-सूर्यास्त का समय सन्धिप्रकाश काल कहलाता है। भारत में सूर्योदय और सूर्यास्त का समय ऋतु के अनुसार बदला करता है अतः सन्धिप्रकाश का समय 4 बजे से 7 बजे तक प्रातः काल तथा 4 से 7 बजे तक सायंकाल माना जाता है। इस काल की अवधि में पूर्वी, मारवा और भैरव थाट के सभी राग गाये जाते है जैसे भैरव, कालिंगड़ा, जोगिया, ललित, रामकली, श्री, मारवा, पूर्वी, पूरियाधनाश्री आदि। मारवा और पूरिया दोनों सर्वसम्मति द्वारा सन्धिप्रकाश राग है किन्तु इनमें ऋषभ कोमल है ऋषभ-धैवत दोनों नहीं जैसा कि सन्धिप्रकाश रागों का लक्षण हमारे शास्त्रकारों द्वारा मान गया है। अतः यह समस्या उठ खड़ी होती है कि या इन रागों को सन्धिप्रकाश राग न कहा जाये और सन्धिप्रकाश रागों के लक्षण में परिवर्तन किया जाये। परिवर्तन सम्भव नहीं क्योंकि दोनों सर्व सम्मति से सन्धिप्रकाश राग स्वीकार किये जा चुके है तथा साथ ही साथ इन रागों का गायन सन्धिप्रकाश के समय भला मालूम पड़ता है। अतः उनके गायन समय में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। तो प्रश्न यह है कि क्या सन्धिप्रकाश राग की विशेषताओं में कुछ संशोधन किया जा सकता है? प्रत्येक सन्धिप्रकाश राग में ऋषभ कोमल अवश्य होता है साथ ही गान्धार भी सदैव शुद्ध पाया गया है अतएव रे ध कोमल के बजाय यदि रे कोमल और ग शुद्ध सन्धिप्रकाश रागों की विशेषता कही जाए तो अपेक्षाकृत अत्यधिक तर्क युक्त होगा।[13]

(ख) रे ध शुद्ध वाले राग- इस वर्ग में रे ध शुद्ध वाले राग गाये बजाये जाते है। इसका गायन समय 7 बजे से 10 बजे तक दिन व रात दोनों कालों में होता है। यदि कोमल रे अधजगी मुद्रा का परिचायक होता है तो शुद्ध रे पूर्ण जागरण का द्योतक है। इस वर्ग में बिलावल, खमाज और कल्याण थाट के राग आते है जैसे- बिलावल, देशकार, भूपाली, खमाज, गौड़सारंग, बिहाग कल्याण एवं केदार इत्यादि। इन वर्ग के रागों में एक विशेषता पाई जातीी है कि इसमें सदैव शुद्ध गन्धार का प्रयोग होता है। कारण यह विदित है कि इनमें गन्धार कोमल होने से उस राग की गणना ग नि कोमल वाले रागों के वर्ग में होगी। अतः इसे रे ध शुद्ध के स्थान पर रे ग शुद्ध वाला वर्ग ही कहा जाना चाहिये।[14]

इस वर्ग के रागों का समय प्रातः 7 से 10 तथा रात्रि 7 से 10 तक सर्वमान्य है कुछ विद्वान इस वर्ग की अवधि 7 से 12 बजे तक मानते है। प्रथम मत अधिक ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि 7 से 12 तक मानने से तोड़ी तथा उसके प्रकार 12 के बाद गाये जायेंगे परन्तु प्रचार में ऐसा नहीं है। राग तोड़ी का गायन समय 12 बजे दिन के पूर्व ही होता ह। रे ग शुद्ध वाले रागों के वर्ग में म का स्थान कुछ कम नहीं है। प्रातः 7 से 10 गाये जाने वाले रागों में शुद्ध मध्यम तथा रात्रि 7 से 10 में गाये जाने वाले रागों में तीव्र मध्यम वाले रागों की प्रधानता होती है। उदाहरणार्थ बिलावल एवं उसके प्रकार सुबह गाये जाते हैं तथा कल्याण एवं उसके प्रकार रात्रि में गाये जाते हैं। वस्तुतः इस नियम के अनेक अपवाद रागों में परिलक्षित होते है। जैसे- हिंडोल जो सुबह गाया जाता है एवं खमाज, दुर्गा, देश आदि राग जो रात्रि में गाया जाता है। इस प्रकार हम देख सकते है कि हिंडोल में तीव्र में और शेष रागों में शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया जाता है।[15]

(ग) ग नि (कोमल) वाले राग- इस वर्ग के रागों की अवधि प्रातः एवं रात्रि 10 से 4 तक होती है परन्तु कुछ विद्वान 12 से 4 तक भी मानते है। इनमें प्रथम अवधि अधिक उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि इस वर्ग में चार थाटों के राग आते है तोड़ी, आसावरी, भैरवी, काफी। इसलिये इसकी अवधि अन्य रागों की अपेक्षा बड़ी होनी चाहिये। दूसरा कारण यह है कि तोड़ी भैरवी, देशी आदि इस वर्ग के राग 12 बजे के पूर्व ही प्रारम्भ हो जाते है। अतः इस वर्ग के रागों का समय 10 बजे से माना जाना चाहिये। राग पटदीप जिसका गायन समय दिन का चौथा प्रहर है इस नियम का अपवाद है। इसमें तो ग कोमल हैं, किन्तु नि शुद्ध है। इसी प्रकार मधुवन्ती भी उपुर्यक्त नियम का अपवाद है। इसमें गन्धार तो कोमल है, किन्तु निषाद शुद्ध है। अतः ग नि कोमल वाले रागों के वर्ग को केवल कोमल ग वाला वर्ग कहा जाय, तो अधिक उपयुक्त होगा। अतः स्वर की दृष्टि से हम सभी रागों को तीन वर्गों में विभाजित कर सकते है। 1. रे कोमल ग शुद्ध वाले राग, 2. रे-ग शुद्ध वाले राग, 3. ग कोमल वाले राग।[16]

उपर्युक्त चार राग समय सिद्धान्त के अलावा ऋतुओं के आधार पर भी रागों का गायन समय निश्चित होना परम् आवश्यक है, जिसकी चर्चा पूर्व में ही किया गया है। रागों की ऋतुओं का पं. दामोदार ने सविस्तार वर्णन संगीत दर्पण में किया है।

''श्रीरागो रागिणीयुक्तः शिशिरे गीयते बुधैः।
वसंतः ससहायस्तु वसंततौ प्रगीयते।।''

अर्थात् श्री राग एवं उनकी रागिनियों को शिशिर ऋतु में गाना चाहिए, वसंत राग तथा उसका परिवार वसंत ऋतु में गाया जाता है।[17]

''भैरवः ससहायस्तु ऋतौ ग्रीष्मे प्रगीयते।
पंचमस्तु तथा गेयो रागिण्या सह शारदे।।''

भैरव राग तथा उसका परिवार ग्रीष्म ऋतु में गाया जाता है। पंचम राग तथा उसका परिवार शरद ऋतु में गाया जाता है।[18]

''मेघरागो रागिणीभिर्युक्तो वर्षासु गायते।
नट्टनारायणो परागः रागिण्यासह हेमके।।''

अर्थात् मेघ तथा उसकी रागिनियों को वर्षा ऋतु में जाते हैं तथा नटनारायन राग तथा उसका रागिनियों को हेमन्त ऋतु में गाते हैं।[19] ऋतुओं में शृंगारिक भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति की जा सकती है। वर्षा कालीन रागों में मेघ मल्हार, गौड. मल्हार, मियां मल्हार एवं देश आदि रागों को गाने का प्रचलन है। वर्षाकालीन रागों में शुद्ध स्वरों से ही राग की रचना की गई है। इन रागों में कोमल स्वरों का अल्प प्रयोग

किया जाता है। दोनों 'नि' स्वरों का प्रयोग सभी रागों में प्रायः समाद रुप से किया गया है। कुछ रागों में कोमल 'ग' का भी अल्प प्रयोग दृष्टिगत होता है विशेष जयजयवन्ती और मल्हार में ऋतुकालीन राग होने के नाते उक्त ऋतु में इन रागों को चौबीसों घण्टे गाया बजाया जा सकता है। देश सर्वकालिक होते हुए भी बडे. चाव से इस मौसम में हर जगह गाया बजाया जाता है। इनके गीतों में वर्षा ऋतु का अधिक चित्रण भी मिलता है। इनके स्वर शृंगारिक भावनाओं को अच्छी प्रकार से व्यक्त करते हैं।[20]

निष्कर्ष

रागों के समय सिद्धान्त हेतु उपर्युक्त विचारधारा से स्पष्ट होता है कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक पहले रे ध कोमल वाले अथवा संधिप्रकाश राग पुनः रे ध शुद्ध वाले राग और अंत में ग नि कोमल वाले राग आते हैं। यही क्रम सूर्यास्त से आगामी दिन के सूर्योदय तक पुनः चलता है अर्थात सूर्यास्त के साथ रे ध कोमल वाले पुनः रे ध शुद्ध वाले और अंत में ग नि कोमल वाले रात्रिगेय राग गाए जाते हैं। रागों का समय चक्र सर्वदा इसी रूप में चला करता है। इन सब को प्रभावित करने वाला स्वर मध्यम होता है। क्योंकि इन नियमों से भी अधिक प्रभावशाली नियम मध्यम स्वर के दोनों रूपों के प्रयोग का है। इसका जो रूप प्रयुक्त होगा उसके अनुकूल ही समय का वास्तविक निर्धारण किया जा सकता है। अतः इस स्वर द्वारा समय का वास्तविक ज्ञान हमें प्राप्त हो सकता है। परंतु इसके अलावा कुछ ऐसे राग भी सामने आए हैं, जो राग गायन नियम के बंधन से मुक्त होते गए। उदाहरणार्थ बसंत राग की अवधारणा नियमित दिन के उत्तरार्ध में होनी चाहिए एवं राग बहार के लिए भी मध्य रात्रि का समय निश्चित है परंतु वसंत ऋतु में इन्हें अभ्यास में हर समय ग्रहण करने की प्रथा है। ठीक इसी प्रकार राग भैरवी का समय प्रातः काल होने पर भी आजकल किसी भी संगीत की सभाओं में समाप्ति के समय इसे गाया बजाया जाता है।

संगीत का मुख्य उद्देश्य तो मन का रंजन करना है कुशल कलाकार को चाहिए कि संगीत के उद्देश्य को सामने रखकर ''रंजको जनचित्तानां'' को लक्ष्य में रखकर ही रागों का व्यवहार करना चाहिए। रागों के समय नियम को बंधन के रूप में न मानकर विवेक के आधार पर समय सिद्धांत को पथ प्रदर्शक के रूप में स्वीकार करना ही उचित जान पड़ता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. ठाकुर, पं. ओंकारनाथ (2006), संगीतांजलि-प्रथमभाग, पं. ओंकारनाथ ठाकुर एस्टेट, मुम्बई पृ.सं. 7
2. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र (2008) राग परिचय, भाग-2, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद पृ.सं. 156
3. कुमार, यमन अशोक (2015), संगीतरत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन, चंडीगढ़ पृ0सं0 311
4. दामोदर, पंडित (2015), संगीत दर्पण, संगीतकार्यालय, हाथरस उ.प्र. पृ.सं. 75-76
5. ठाकुर, पं. ओंकारनाथ (1979), संगीतांजलि, तृतीय भाग, पं. ओंकारनाथ ठाकुर एस्टेट, मुम्बइ पृ.सं. 15-16
6. (1960) संगीत पत्रिका फरवरी पृ.सं. 39
7. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र (2005) वाद्य शास्त्र, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद पृ. सं. 163
8. नारायन, गर्गलक्ष्मी (1960), संगीत पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस उ.प्र. पृ. सं. 39-40
9. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र (2008), राग परिचय, भाग-2, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं. 57-58
10. संगीत शास्त्र दर्पण, शांति गोवर्धन, भाग प्रथम, पृ. सं. 50-51
11. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र (2008), राग परिचय भाग-2, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं. 159-160
12. वसंत, (1963) संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस उ.प्र. पृ.सं. 98
13. कुमार, यमन अशोक (2015), संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन, चंडीगढ़ पृ.सं. 312
14. वही, पृ.सं. 312
15. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र (2008) राग परिचय, भाग-2, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद पृ0सं0 161
16. नारायन, गर्गलक्ष्मी (1960), संगीत पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस उ.प्र. पृ.सं. 41
17. दामोदर, पंडित (2015), संगीत दर्पण, संगीत कार्यालय, हाथरस उ.प्र. पृ.सं. 77
18. वही, पृ.सं. 77
19. वही, पृ.सं. 77
20. कुमार, यमन अशोक (2015), संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन, चंडीगढ़ पृ.सं. 313

विभिन्न घराने के संगीतज्ञों द्वारा नवनिर्मित राग एवं ख्याल रचनायें

श्यामा कुमारी

सार संक्षेप

राग शास्त्रीय संगीत की आधार पृष्ठभूमि के रूप में देखे जाते हैं। रागों की अवधारणा तथा ख्याल रचनायें विभिन्न घरानों के आधार पर नियमों तथा परम्परानुसार शिक्षण द्वारा परिष्कृत होकर हम सभी के समक्ष आती है। एक ही राग के कई भिन्न-भिन्न नियम हम अनेक घरानों में देख सकते हैं। इसी प्रकार विभिन्न घरानों के संगीतज्ञ नव प्रयोगों द्वारा रागों का नव सृजन करते रहते हैं। यह नवीन प्रयोग रागों की अवधारणा को नव स्वरूप प्रदान करते हैं। वर्तमान में अनेक नवीन राग हमें देखने को मिलते हैं जो कि हम सबके सामने बहुत ही सौन्दर्य एवं रसपूर्ण रूप में प्राप्त हुये हैं। इस शोध प्रपत्र में उन्हीं रागों एवं रचनाओं के विषय में विस्तार से चर्चा की गयी है।

मुख्य शब्द *- घराना, ख़याल, रचनायें, नवीन, संगीतज्ञ।*

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत भारतीय संगीत एवं परम्परा का बहुत ही महत्वपूर्ण भाग है। शास्त्रीय संगीत की उत्तर भारतीय परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है जिसमें समय के साथ-साथ विभिन्न परिवर्तन होते चले आ रहे हैं। वैदिक काल के समय से वर्तमान समय के ख़याल गायन परम्परा बहुत ही दीर्घ कालान्तर पर सृजित हुई है। ख़याल शैली 13वीं शताब्दी से उत्पन्न मानी जाती है तथा मोहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायकों सदारंग-अदारंग द्वारा इसका अधिक प्रचार-प्रसार किया गया। गायन वादन घराने की परम्परा तथा विशिष्ठ गुणों से साथ किया जाने लगा जो ख़याल गायकों को गुरू द्वारा कठिन परिश्रम एवं शिक्षा-दीक्षा प्रदान करने के उपरान्त आत्मसात् होती है। 'घराना' शब्द मुगल काल से प्रचार-प्रसार में आया, जबकि संगीत अपनी स्वर्णिम अवस्था में था। गुरूओं को राजाश्रय प्राप्त था जिस कारण से वे पूरे परिश्रम, लगन एवं मन से शिष्यों को संगीत की बारीकियाँ सिखाते थे। पंडित शारंगदेव ने संगीत की इस शिक्षा की ओर इशारा किया है-

''सुसम्प्रदायों गीयते गीयते गायनाग्रणी''[1]

गायकी के आधार पर गायन के मुख्य पाँच घराने माने गये है-ग्वालियर घराना, जयपुर घराना, किराना घराना, आगरा घराना और पटियाला घराना ये पांचों घराने गायन के मुख्य घराने के रूप में देखे जा सकते हैं जो कि अपनी मौलिक गायकी एवं मुख्य सिद्धांतों का पालन करते हुये चले आ रहे हैं। हर घराने के कुछ मुख्य राग और बंदिशे होती हैं जिन्हें उस घराने का गायक प्रचलित करता है। अनुवांशिकता, संयम, स्वर, प्रामाण्य, लय संस्कारिता, स्वर व स्वर सानिध्य कुछ ऐसे तत्व है जिनका कम व अधिक प्रयोग ही विभिन्न घरानों की गायकी की पहचान के रूप में परिलक्षित होता है।

घराना तथा गायकी जिस रूप में सजीव रूप प्राप्त करते हैं वह ख़याल रचना अथवा बंदिश के नाम से जानी जाती है। विभिन्न साहित्यिक पदों का समावेश राग भाव रस, अलंकार, भाषा को आधार मानकर स्वरों में संजोकर प्रस्तुत करने के लिये ख़याल रचना का सहारा लिया जाता है। ख़याल रचना एवं बंदिश का सृजन एवं विभिन्न वाग्गेयकार की कलात्मकता, विचार, बौद्धिक स्थिति, राग बरतने

* असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

के ढंग आदि पर पूर्ण रूप से निर्भर होती है। संगीत रूपी ललित कला बंदिश एवं रचना एक सुनिबद्ध आकृति के रूप में दिखती है। कला प्रेमी की आंतरिक इच्छा होती है कि उत्स्फूर्त नजाकत का समावेश उसकी कलाभिव्यक्ति में हो। कलात्मक सृजन के संबंध में यह बात विशेषतः अनुभव की गयी है कि जाने अनजाने कलाकार के मन में निहित नजाकत की प्रस्तुति की इच्छा ही उसकी मार्गदर्शक तत्व या प्रेरणा स्रोत होती है। साहित्य की नजाकत का परमोच्च स्तर कविता द्वारा अभिव्यक्त होता है। कविता में भी आगे की सीढ़ी है, कम शब्दों में बृहत आशय को व्यक्त करने वाली चयनित शब्दावलियों की योजना तभी हम कविता के भावात्मक विश्व में प्रवेश कर पाते है। कविता को जब स्वर से सजाया जाता है तो उसका जन-जन में स्वागत अधिक होने लगता है।[2] अतः खूयाल रचना एवं बंदिश में साहित्य एवं स्वर का सुन्दर समन्वय ही एक नवीन भावाभिव्यक्ति को प्रगट करती है।

पं. विनायक राव पटवर्धन के अनुसार-बंदिश रचनाकार के सांगीतिक अनुभव का सार है। यह रचनाकार द्वारा अनुभूत राग का प्रकटीकरण है।

प्रो. सुमति मुटाटकर के अनुसार-बंदिश एक नर्त्तन का पात्र है, जिसमें हम संगीत भरते हैं।

डॉ. विजया चांदोलकर के अनुसार-प्राचीन काल से भारतीय संगीत में राग तथा ताल में बंधी पद रचना को सामान्य रूप से गीत भी कहा जाता है। इसे हम आज बंदिश तथा वाद्य संगीत के संदर्भ में गत कहते हैं।

बंदिश निर्मित करने के तत्व - किसी भी रचना में राग का पूरा स्वरूप प्रतिबिंबित होना चाहिये। राग का केवल चलन ही नही बल्कि राग के कुछ संवदेनशील स्वरों का अर्धपूर्ण उच्चारण सही होना चाहिए; जिससे राग प्रकृति स्पष्ट होगी। इस प्रक्रिया में अल्पत्व, बहुत्व तथा राग प्रकृति के अनुरूप आस, मींड जैसे अंगों का प्रयोग होना चाहिए।

(1) **स्वरावली में लयात्मक संतुलन -** बहुतांश बंदिशें कम से कम दो या तीन स्वरापंक्तियों से बनती हैं। इसलिए यह बात मानकर चलते हैं कि प्रत्यक्ष में कम से कम हर बंदिश में दो या तीन स्वरावलियाँ होती हैं। इन स्वरावलियों में अंतिम स्वरावली के बाद तुरन्त 'मुखडेघ' की शुरूआत होती है अन्यथा अंतिम स्वरावली मध्य 'सा' पर पूरी होती है।

उदाहरण स्वरूप - राग श्री की रचना इस प्रकार है-

ए री हूँ तो आ ऽ स न गई री पा ऽ स न गई री ऽ ऽ ऽ

गरेसानिसा सा ऽ सां सां सांनि रें निध प प प म ध म ग रे

लय की दृष्टि से इस स्वरावली का हर स्वर दूसरे स्वर से जुड़ा हुआ है। यह संतुलन न रखा जाये तो स्वरावली का संतुलन बिगड़ना स्वाभाविक है। लयांतर के पहले लिए गये स्वरावली का आने वाली स्वरावली से एक विशिष्ट नाता-संबंध होना चाहिए जो लय से जुड़ा है। इस तरह के समन्वय से जिस प्रकार की रचना हमें प्राप्त होगी वह 'बंदिश' कहलाने योग्य रचना होगी। इस प्रकार के संतुलन को हम 'आन्तर्संतुलन' कहेंगे।

अन्तर्संतुलन में एक ही प्रकार की स्वरावली की रचना होना आवश्यक नहीं है। महत्व इस बात का है कि यह सन्तुलन होना आवश्यक है तथा यह अन्तर्संतुलन संकल्पना में सूक्ष्मता है और वह लचीली भी है। उसका अस्तित्व केवल संस्कारित श्रोताओं को ही अनुभव होता है और उनकी सत्यता केवल प्रात्यक्षिक द्वारा ही बताई जा सकती है।

(2) **संतुलित रचना का ताल से संबंध -** रचना के संतुलन तथा ताल से संबंध का महत्व बहुत अधिक है। हमारे हिन्दुस्तानी संगीत में अनेक तालों का प्रयोग किया जाता है जो कि विभिन्न मात्राओं में निबद्ध है। जैसे 16 मात्रा तीनताल, तिलवाड़ा, झूमरा 14 मात्रा, रूपक 7 मात्रा, एकताल 12 मात्रा, आड़ा चौताल आदि बंदिश की रचना इस प्रकार होनी चाहिये कि वह रचना ताल की मौलिकता को निभा पाये यानि तीनताल 16 मात्रा के बोल एवं रचना इस प्रकार हो कि वह तिलवाड़ा से अलग स्पष्ट रूप से दिखाई दे इसी प्रकार झूमरा की रचना इस प्रकार हो कि वह आड़ा चौताल की रचना से स्पष्ट अलग दिखाई दे।

(3) **ताल के संदर्भ में बंदिश का लचीलापन -** विशिष्ट सुबद्ध बंदिश के लिए ताल का चुनाव भी विशिष्ट होता है, तथापि कुछ बंदिशें ऐसी लचीली होती है कि बदले हुए ताल में वह गायी जाए तो

बंदिश के नियमों को विशेष हानि नहीं पहुँचती। अतः झपताल में निबद्ध की गयी बंदिश (10 मात्रा) एकताल में (12 मात्रा) गायी जा सकती है तथा एकताल में निबद्ध की गयी बंदिश आड़ा चौताल या झूमरा (14 मात्रा) में गायी जा सकती है। तथा झूमरा की बंदिश तिलवाड़ा में (16 मात्रा)। एक बात का मुख्य रूप से ध्यान रखना होगा कि इन तालों में 2 मात्रा से अधिक का फर्क नहीं होना चाहिये वरना बंदिश के स्वरूप में हानि हो सकती है।

किसी भी राग की बंदिश श्रोताओं के आकर्षण का केन्द्र होती है। कई बार बंदिश संरचना के सभी नियमों का पालन करने के बाद भी यह संभव होता है कि बंदिश आकर्षक न हो। बंदिश आकर्षक होने से श्रोता का ध्यान खींच सकती है। जिन गुणों के अंतर्गत बंदिश आकर्षक बनती है वह है-'आमद', कमनीयता, शब्द रचना तथा राग के भावानुरूप बंदिश का साहित्य आशय।

आमद - बंदिश के उठान को कहा जाता है। यह द्रुत ख़्याल में स्पष्ट दृष्टव्य होती है परन्तु विलम्बित में इसका उतना स्पष्ट दर्शन नहीं हो पाता है। बंदिश की आमद तथा स्वर प्रयोग रागानुसार वैचित्र्य प्रदान कर सकते है। श्रोताओं के मन में बंदिश के प्रति रोमांच का भाव बंदिश की सुंदर आमद द्वारा प्रगट होता है।

कमनीयता - बंदिश की कमनीयता का अर्थ है—सौंदर्य, लालित्य। बंदिश में कमनीयता दो प्रकार से स्पष्ट होती है। पहले प्रकार में स्वरावली के स्वरों के अंतर में रचना कमनीय होती है। यह रचना राग स्वरूप पर निर्भर होती है। इसके निकष निर्देशित करना कठिन है। फिर भी यह अनुमान हम कर सकते हैं कि स्वरावली के अंतर्गत दो स्वरों की संगति सा-म या सा-प संगति से निबद्ध होने से वह स्वरावली सुंदर बनती है। उदाहरण-रे ग ध प ग रे सा इसमें ग-ध संगति सा-म संगति बनाती है।

दूसरे प्रकार में जब दो स्वरावलियों के संबंध सुंदर होते हैं, तब वह कमनीय महसूस होते हैं। यह संबंध स्वरावली के अंतर्गत सुंदरता हो या न हो, वह कमनीय ही महसूस होते हैं। उदाहरण-पगरेसा, साधपग, पगरेंसां।

अब हम राग एवं उनमें रचित बंदिशों पर चर्चा करेंगे तो हमें ज्ञात होगा कि रागों के निर्माण के लिए हमारे ग्रंथकारों ने कुछ मुख्य नियम बनाये हैं जिनके अंतर्गत हमें रागों का वर्तमान स्वरूप एवं संख्या प्राप्त होती है। वर्तमान समय में विभिन्न घराने के मूर्धन्य कलाकारों द्वारा अनेक नवीन रागों की निर्मिति की गयी है जिनके स्वरूप तथा राग व्यवहार एवं वर्तन के विषय में हम अब विस्तार से चर्चा करेंगे।

पं. गोविन्द नारायण नातू - नातू साहब ग्वालियर घराने के कलाकार के रूप में देखे जाते हैं वे रचनाकार श्रेष्ठ वाग्गेयकार भी कहे जाये तो इसमें कोई क्षति न होगी। ग्वालियर की ख़्याल गायन परम्परा के अनुशासन तथा पं. राजाभैया पूँछवाले तथा उस परम्परा के अन्य आचार्यों के सानिध्य ने इन्हें पारंगत किया। ख़्याल, टप्प ख़्याल, ख़्यालनुमा एवं टप्पे की ग्वालियर की गायन शैली मुख्य रूप से आपमें विराजमान थी। आपके द्वारा की गयी रचनाओं को पुस्तक 'गीत समूह' के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है।

नव निर्मित राग-

राग - कर्नाटी

आरोह - सा, ग म प ध नि सां

अवरोह - सां ध नि प, म प म ग रे सा

चलन - नि़ सा, गम, प, गम निप, म, ग, मप नि मप [नि]ध ऽ
नि सां, [नि]ध, नि प, म ग, म प म, ग सा।

रचना - त्रिताल मध्य लय

स्थायी - काहु के मन की री कोऊ कैसे जाने
अपनी कहे काहु की न माने लाख मनावे।
अंतरा - सीतल पर पीर सब कोऊ माने
जबलों ना बीतत निज पर ही बीतत छिन
मो कल पाये।4

राग - मोद कल्हार-

आरोह - सा, [सा]मरेप, म॑पध, प, [प]नि ध [सां]निसां

अवरोह - [प]सां, धनिप, म॑पध म॑प, [म]ग — — म रे सा

चलन - [म]रे [म]रे प, [प]गमप, [प]ध म॑प, [म]ग [म]ग, म (म) रे,
[सां]नि़ ध़ [सा]नि़ सा।

रचना - त्रिताल (मध्य लय)

स्थाई - सुनि मयूर नाचे घन गरजत
बरसत मेहा बूंद बूंद सों
सियरी पवन बहे सुखदाई।
अंतरा - हरख होत निरखत चहूँ ओरा हरित
साज सों सजि वसुंधरा
गावत कोकिल आज बधाई।।

इस प्रकार राग शिव तिलक की रचना इनके द्वारा की गयी है जो कि शंकरा एवं तिलक कामोद का सुंदर सम्मिश्रण है तथा गोविन्द मंजरी राग भी पं. गोविन्द नारायण नातू द्वारा रचित नवीन राग है।

पं. दीपक चटर्जी - प्रयाग नगरी में जन्म के कारण पं. दीपक चटर्जी जी के हृदय में संगीत साहित्य व भारतीय-संस्कृति का होना स्वाभाविक सी बात है। रामपुर सहसवान घराने की ख्याल गायकी को आपने आत्मसात किया तथा संगीत जगत को अपना योगदान प्रदान कर रहें है। गायन की अन्य विधाओं में भी ये पारंगत है तथा इनके द्वारा नवीन रागों की जो रचना की गयी है जैसे-राग कनक भैरव, सुर मंजरी, जयंत मेधा, गुनरंजनी।

राग कनक भैरव - यह राग पंडित जी द्वारा उनकी माता को समर्पित है। वादी स्वर मध्यम तथा संवादी स्वर षड्ज है। धैवत स्वर वर्जित, गायन समय प्रातः काल माना गया है। राग जाति षाडव-षाडव के अंतर्गत आती है।

आरोह - सा रे ग म प नि सां
अवरोह - सा नि प, म ग, म रे सा
पकड़ - रे ग म, प नि प म, ग म रे सा

स्थाई - वदंन वार बाँधो बाँधो रे
मोरे पिया घर आए।
अंतरा - सगुन भई शुभ बेला आई
सेज बिछाऊँ आंगन सजाऊँ
'रसिक रंग' घर आए।।

राग सुर मंजरी - काफी थाट के अंतर्गत लिया गया यह राग रात्रि के द्वितीय प्रहर में गाया-बजाया जा सकता है।

इस राग का वादी स्वर पंचम तथा संवादी स्वर षड्ज माना गया है। इस राग में रिषभ स्वर वर्जित है तथा सा ग और प न्यास के स्वर माने गये। यह राग मिश्र एवं चंचल प्रकृति का मधुर राग है।

चलन - (1) सा, नि़ सा ग ग ग - सा
(2) सा नि – प़ – नि़ सा ग ग ग म॑ प -
म॑ ग – ग़ सा नि़ – सा – – – ।

तीनताल - रचना

स्थाई - जिया नहि लागे तोरे बिना
बाट निहारूँ मोरे सजना।
अंतरा - कैसे बजाऊँ बिताऊँ कैसे रतियाँ
'रसिकरंग' कछु सूझे नहि बतियाँ
बांट निहारूँ मोरे सजना।।

पं. वि.रा. आठवले- पं. वि.रा. आठवले आगरा घराने के प्रसिद्ध कलाकारों में अपना स्थान रखते हैं। इनके द्वारा कई नवीन रागों की निर्मिति हुई है तथा अनेक नई रचनायें अन्य रागों में भी 'नाद पिया' उपनाम के साथ प्राप्त होती हैं। इनके द्वारा नवनिर्मित रागों में राग ललितकली, ललित बिलास, राग भिन्न भैरव, राग चन्द्र भैरव, पट काफी, कौसीबहार, मधु कल्याण।

राग-चन्द्र भैरव

आरोह - सा ग म ध नि सां,
अवरोह- सां नि ध म, प ग मपममु रे सा सा
चलन - ग, मपममु ग॒रे सा,ध नि़ ध,नि सा, सा ग ऽ
म, म ध ऽ म, म प, ग मपममु ग॒रे ऽ सा,
ग म ध, म प मगम ध नि,ध, ध नि सां,
रें सां, नि सां, ध नि॒धम, म,प, ग, मपममु, ग॒रे सा।

तीनताल

स्थाई - करत मोसे काहे बरजोरी छेड़ो ना मोहे नाद पिया
अंतरा - नारी नर सबही देखत है, चर्चा करेंगे छोड़ो जी कलाई।

राग - कौंसी बहार

आरोह - सा ग़ म, म प, ग़ म नि़ ध नि सां
अवरोह- सा नि़ प, म प, ग़ म, सा ग म ग़ नि़ सा
चलन - सा, नि़ सा ग़ ऽ सा, सा ग़ म, म प, ग़ म,
सा ग़ म ग़ सा,सा नि़ ध़, ध़ नि़ सा।

रचना - तीनताल

स्थाई - चंद्र जाके भाल बिराजे
और सोहे सर पर गंग।
अंतरा - ऐसी मूरत प्यारी भई,
नैने को नादपिया को, भयो आनंद।[6]

अश्विनी भिड़े देशपांडे - अश्विनी भिड़े देशपांडे जयपुर अतरौली घराने की मूर्धन्य कलाकार मानी जाती है। इनकी गायकी श्रोताओं को हृदय स्पर्शी सुख दे जाती है। डॉ. अश्विनी भिड़े देशपांडे जी द्वारा पुस्तक राग रचनांजली जो कि दो भागों में प्राप्त होती है लिखी गयी है। इनके द्वारा राग नंदध्वनि की रचना की गयी है जो इस प्रकार है-

राग - नंदध्वनि

आरोह- सा रे ग म प नी सां
अवरोह- सा नि प ग म प ध नि ध प रे सा
(अनुमानिक)

मध्य लय झपताल

स्थाई - हाँसत चहूँ ओर तिनपातवियाँ
सज सिंगार कर सब द्रुम डरिया
आयो है सवन मास।
अंतरा - कोयल कुहुक कुहुक मधुर सुर सुनाए
दादुर ताल दे मोर नाचे
आयो है सावन मास...।[7]

कुमार गंधर्व द्वारा नव सृजित राग
राग - मालवती

आरोह - सा रे म, प ध सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।
स्वरूप - ध़ स रे म, प ध प, ग - - -, प ध प।
ध सां नि ध, नि प गं, प ध प म ग रे, सा रे म ग रे सा।

राग - मालवती - एकताल, लय - ठाय

स्थाई - चलारे चला जारे बदरा तू
जाय ससुरिया घर, छाय गरज रिहोरे।
अंतरा - गरज सुण आवां, सांवरी हो घन म्हारी
की दो ऊके मन म्हारा, खेतापे नी लाग्यो रे॥ [8]

राग - मघवा

आरोह - सा म ग म नि ध नि सां
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।
स्वरूप - सा म ग म प, म नि ध नि सां। सा नि ध प म ग रे सा।

त्रिताल, मध्य लय

स्थाई - सावन झार आयो, चलोरी सखी खेलें
आंगन बिच आप, बीराजी बाँध्यो झूला।।
अंतरा - झूला दे अरी वोरी, गावोरी सखी राग।
डरी हो नहीं ऐलो, बीरासी बाँध्यो झूला।।[9]

पंडित अमर नाथ, (इंदौर घराना) जी द्वारा नव सृजित राग-
राग - काफी मल्हार

यह राग काफी एवं मल्हार के मिश्रण से उत्पन्न राग माना गया है।

रचना - त्रिताल

स्थाई - बदरा आए हो, बरसे बिन जाना ना
झूठी आस ज्यों श्यामल रंग सो गगन रंगाना ना।
अंतरा - उमड़ घुमड़ की प्रीत बोलियाँ बोल लुभाना ना
मेहर शुकर की बरखा करने हाँ बिलगाना ना।।[10]

राग - मारू बसंत

आरोह - स ग म ध नि सां
अवरोह - सा नि ध़ प म ग म॑ ग रे सा।

त्रिताल - मध्य लय

स्थाई - मारू बसंत गात मन मेरो आज
सुधि बीते दिनन की जागी जात।
अंतरा - सौ बसंत बीते प्रीतम बिन
सौसो गई बहार।[11]

इस प्रकार अनेक नवीन राग एवं रचनायें विभिन्न घराने के कलाकारों द्वारा की गयी है तथा आगे भी होती रहेगी। किसी भी कला को जीवित रखने के लिये उसमें नवीन प्रयोगों का होते रहना अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा प्रो. स्वतंत्र : भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण,अनुभव पब्लिशिंग हाउस, 2014
2. वही, पृ. 273
3. हलदनकर पं. श्री कृष्ण बबन राओ, रस पिया, बंदिशें, संस्कार प्रकाशन, 2001
4. नातू पं. गोविन्द नारायण, गीत समूह, संस्कार प्रकाशन, मुम्बई, 2014, पृ.164
5. चटर्जी पं. दीपक, 'रसिक रंग' रचना, आकांशा पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2016, पृ. 270
6. हलदणकर पं. श्री कृष्ण (वबनराव), नाद बैभव, संस्कार प्रकाशन, मुम्बई, 2009, पृ. 145
7. देशपांडे डॉ. अश्विनी भिड़े, राग रचनांजलि, भाग-2, राजहंस प्रकाशन, मुम्बई, 2010, पृ. 151
8. प्रकाश डॉ. राहुल, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में ऋतुकालीन बंदिशें रूप राग, भाग-2, कनिष्क पब्लिकेशन्स, 2021, पृ. 396
9. वही, पृ. 398
10. वही, पृ. 401
11. वही, पृ. 403

काफ़ी गायन शैली में कतिपय विशिष्ट कलाकारों का योगदान

ओशीन भाटिया नी दिव्या भाटिया

सार

पंजाब में सूफ़ी गायन अत्यन्त प्रचलित विधा है। पंजाबी साहित्य का एक बड़ा हिस्सा काफ़ी है जिसका काव्य व गायन शैली पंजाब में सूफ़ी गायन में प्रयोग में लाया जाता है। यह विधा पंजाब की है व काफ़ी को पंजाब व उसके आसपास के क्षेत्रों में गाया जाता है। काफ़ी सूफ़ी काव्य है जिसकी गायन शैली भारतीय संस्कृति के लिए बहुमूल्य भेंट है।

यह विधा भाव व भक्ति से पूर्ण है वह इसे सूफ़ी संतों व सिक्ख गुरुओं ने लिखा व इसे रागबद्ध कर गायन भी किया। काफ़ी को 'सूफ़ियाना कलाम' भी कहा जाता है व इसे निबद्ध व अनिबद्ध दोनों प्रकारों से गाया जाता है। काफ़ी गायन विधा का अपना कोई विशिष्ट प्रकार नहीं है अपितु इस पर अन्य कई गायन शैलियों का प्रभाव देखने को मिलता है। काफ़ी गायन विधा भारत के लिए बहुमूल्य भेंट है व इस गायकी के तथ्यों एवं कलाकारों के योगदान को गहनता से अध्ययन उपरांत सामने लाने का मेरा मुख्य उद्देश्य है। काफ़ी शैली के विषय में इस शोधकार्य को करने के लिए पुस्तकों तथा साक्षात्कार के माध्यम से सामग्री प्राप्त करने का मेरा प्रयास रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र किसी भी पत्रिका अथवा पुस्तक में पूर्ण अथवा आंशिक रूप से न तो प्रकाशित किया गया है और न ही प्रकाशन के लिए भेजा गया है।

सूचक शब्द : *काफ़ी, सूफ़ी कलाम, कलाकार, योगदान, गायन शैली*

शोध पत्र

पंजाब के आंचलिक संगीत में काफ़ी गायन अत्यन्त लोकप्रिय गायन शैली है। काफ़ी भारतीय संगीत की एक मधुर, सजीली, सशक्त, भावपूर्ण, सांगीतिक व भक्ति से ओत-प्रोत काव्य व गायन विधा है। काफ़ी पंजाब प्रांत व पाकिस्तान के पंजाब (स्वतंत्रता पूर्व पंजाब) के कवियों व गायकों द्वारा अपनाई गई। इसे सूफ़ी कवियों ने लिखा व गाया। उन्होंनें जाति, धर्म, ऊँच-नीच के भेदभाव को भूलाकर इसे खुदा की इबादत में लिखा व गाया। काफ़ी सूफ़ी फ़कीरों द्वारा लिखी गई वह रचना है जिसमें प्रेम तत्व की प्रधानता होती है और वह प्रेम सांसारिक न होकर आध्यात्मिक होता है। सूफ़ी कवि परमात्मा से मिलन के लिए व्याकुल आत्मा, बिरह और तड़प की अभिव्यक्ति काफ़ी द्वारा करते हैं। यह हृदयस्पर्शी गीत विलक्षण स्वर-संगतियों से संयुक्त होने के कारण हृदय पर चमत्कारपूर्ण एवं अनिर्वचनीय प्रभाव डालने में समर्थ होते हैं।

काफ़ी, सूफ़ी साहित्य व सूफ़ी गायन का हिस्सा है। पंजाब प्रांत में सूफ़ी गायन में काफ़ी को गायक अपने-अपने ढंग से गाते हैं। काफ़ी को प्रचलित तौर पे 'सूफ़ियाना कलाम' भी कहा जाता है व काफ़ी को इस शैली में गाया जाता है। ''काव्य क्षेत्र में यह गीत व स्थायी पद हैं जिसको गाने के लिए और तुकों को जोड़ा जाए। गीत गाते समय स्थायी पंक्तियाँ बार-बार आती हैं। सूफ़ी फकीर मस्ती भरे गीत गाते हैं और गीत की मुख्य पंक्ति उनके आसपास बैठे

शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। F-24/60, Sector-3, Rohini, Delhi-110085 oshinmusic1@gmail.com, मो. 9899476469

मुरीद दोहराते हैं, ऐसा गीत काफ़ी है।''[1] काफ़ी पंजाब की धरती की उपज है व यह गायन शैली आध्यात्मिक परम्पराओं के मिश्रण से उत्पन्न हुई। ऐसा माना जाता है कि यह सांगीतिक शैली मुसलमानों के आगमन के बाद पंजाब में आई किन्तु कुछ लोगों का मत इससे भिन्न है। काफ़ी गायन विधा को सूफ़ी गायकी के अन्तर्गत ही माना गया है। सूफ़ी फ़कीरों ने काफ़ी के काव्य के साथ इनकी धुनें भी बनाई व इन्हें रागबद्ध भी किया। इसी कारण यह काव्य प्रकार सबसे अधिक गायन शैली के रूप में प्रचलित हुआ व सूफ़ी मजलिसों की शान बना रहा। काफ़ी के माध्यम से सूफ़ी संतों ने अपने विचारों का प्रकटीकरण किया।

''काफ़ी पंजाबी कविता का वह रूप है, जिसमें मुसलमान सूफ़ी भगत अपने आध्यात्मिक अनुभव को बयान करते थे। जैसे सिक्ख गुरुओं की रचनाओं को शब्द, भक्तों की रचनाओं को भजन, उसी प्रकार बहुत सारे हालातों में सूफ़ी भक्तों की रचनाओं को काफ़ी कहते हैं।''[2]

काफ़ी के विषय में विद्वानों के कई मत हैं, जिस कारण से काफ़ी की एक परिभाषा निश्चित करना कठिन है। विद्वानों द्वारा काफ़ी के संदर्भ में कुछ मत प्रस्तुत हैं। **तस्सदुक़ हुसैन** के अनुसार काफ़ी का अर्थ है ''जो पूर्ण हो, काफ़ी हो जो, कफायत करने वाला हो।''[3] कुरान के 39वें सुरे में काफ़ी को अल काफ़ी कहा गया है। सूफ़ी लोग अरबी इतिहास की विचारधारा अनुसार गुफ़ाओं में रहते थे। गुफ़ाओं में वह ख़ुदा की इबादत में स्तुतियाँ गाते थे जिसे काफ़ी कहा गया है। काफ़ी विशेषतः ख़ुदा की इबादत में गाए जाने वाले वह गीत है जिसमें ख़ुदा से इश्क़, आत्मा का परमात्मा से मिलन की बात हो। यह इश्क़-ए-हक़ीकी होता है जिसमें मस्ती में सूफ़ी संत अपने ईष्ट के लिए काफ़ी को लिखते व गाते थे। लाजवन्ती रामकृष्णा जी के अनुसार ''काफ़ी फारसी शब्द काफिया से लिया गया है जिसका अर्थ तुकांत है। यह पंजाबी सूफ़ी काव्य को दर्शाता है। इस काव्य से ईश्वर के प्रति श्रद्धा और कभी-कभी अन्य सूफ़ी मतों या विश्वासों का प्रकटीकरण होता है।''[4]

कुछ विद्वानों के अनुसार काफ़ी एक सांगीतिक राग है व कुछ के अनुसार काव्य छंद है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में 'काफ़ी' नाम का राग है, काफ़ी काव्य का अस्तित्व उससे भी पुराना माना गया है। काफ़ी राग, छंद व सांगीतिक रचना के रूप में प्रचलित है किन्तु वहीं कुछ विद्वान इसे कोई विशेष छंद नहीं मानते। उनके अनुसार यह वो गायन विधि है जिसे सूफ़ी फ़कीर मस्ती में गाते थे वह उनके ईद-गिर्द मुरीद दोहराते थे, ऐसे गीत को काफ़ी कहा गया है।

काफी का रचनाकाल

काफ़ी के रचनाकाल के विषय में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार काफ़ी का आरम्भ **बाबा शेख़ फ़रीद जी** द्वारा हुआ। दूसरे मतानुसार काफ़ी का आरम्भ सिक्ख गुरुओं द्वारा हुआ। इस तथ्य के विषय में प्रमाणों का अभाव है। बाबा शेख़ फ़रीद जी द्वारा रचनाऐं सिक्ख ग्रन्थ 'आदि ग्रन्थ' में संकलित हैं। उनकी रचनाऐं बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं है। उनके द्वारा लिखी गई काफ़ियाँ अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं है, सिक्ख ग्रन्थ में उनकी रचनाओं को शब्द कहा गया है। गुरु नानक देव जी द्वारा लिखी हुई काफ़ियाँ 'आदि ग्रन्थ' में अंकित है। इस आधार पर वह अधिकतर मतानुसार काफ़ी का आरम्भ **गुरु नानक देव जी** द्वारा माना जाता है। गुरु नानक देव जी द्वारा लिखी गई काफ़ी का उदाहरण पेश हैं :

राग आसा, काफ़ी, महला-1, अंग-418[6]

जैसे गोइल गोइली तैसे संसारा।।
कूड़ु कमावहि आदमी बांधहि घर बारा।।
जागह जागह सूतिहो चलिआ वणजारा।। रहाउ
नीत नीत घर बांध अहि जे रहणा होई।
पिंड पवै जीउ चलसी जे जाणै कोई।।
ओही ओही किआ करहु है होसी सोई।।
तुम रोवहुगे ओस तो तुम्ह कउ कउणु रोई।।
धंधा पिटिहु भाईहो तुम्ह कूड़ु कमावहु।।
ओह न सुणई कत ही तुम्ह लोक सुणावहु।
जिस ते सुता नानका जगाए सोई।।
जे घरु बूझै आपणा तां नीद न होई।।

गुरु नानक देव जी ने राग आसा, मारु, सूही में काफ़ियाँ लिखी व उन्हीं का अनुसरण करते हुए गुरु अमरदास, गुरु रामदास व गुरु अर्जुनदेव जी ने रागबद्ध काफ़ियाँ लिखी जो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में विद्यमान है।

काफ़ी गायन शैली के प्रकार

काफ़ी गायन विधा के प्रकारों को गायन शैली नहीं अपितु भाषा के आधार पर काफ़ी को वर्गीकृत किया गया है। काफ़ी विशेषतः दो प्रकार की होती है :

1. मुल्तानी काफ़ी
2. सिंधी काफ़ी

1. मुल्तानी काफ़ी–काफ़ी के इस प्रकार में मुल्तानी भाषा का प्रयोग किया जाता है। यह कब अस्तित्व में आई यह कहना कठिन है। काफ़ी को काफ़ी ही कहा जाता था किन्तु जब यह प्रचलन में आई व घरानेदार गायकों ने इसे अपनाया व गाया तब यह मुल्तानी काफ़ी कहलाने लगी। पाकिस्तान पंजाब के मुल्तान तथा आस-पास के क्षेत्रों में प्रयुक्त मुल्तानी जो पंजाबी की उपभाषा है, इसमें रचित काफ़ियों को 'मुल्तानी काफ़ी' कहा जाता है। यह भाषा मुल्तान के ज़िलों मुजफरगढ़, डेरा, गाज़िखाँ और डेरा इस्माइल खाँ के दक्षिण भागों और झंग एवं बहावलपुर राज्यों में बोली जाती है। बाबा शेख फ़रीद की बाणी में भी इस भाषा का रंग देखने को मिलता है। उदाहरण प्रस्तुत है :-

फरीदा काले, मैंडे कपड़े काले, मेंडा वेस।
गुनहि भरिआ मैं फिराँ लोक कहै दरवेस।।

मुल्तानी काफ़ी की सांगीतिक विशेषताएँ

मुल्तानी काफ़ी का गायन किन्हीं विशेष नियमों के अन्तर्गत ही हो, ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। मुल्तानी काफ़ी शास्त्रीय गायकों ने अपने अंदाज़ में गाया, लोक-गायक व कव्वाल कलाकारों ने अपने अंदाज से। उस्ताद मुबारक अली ख़ाँ (पाकिस्तान) शाम चौरासी घराने के अनुसार - ''काफ़ी की गायकी के किसी नियम में नहीं रखा जा सकता। पीर-फ़कीरों ने इसे खुले अंदाज़ में गाया, जिसमें साधारण धुन थी, इसे लोक-संगीत से प्रभावित मानना ज़्यादा उचित होगा। किन्तु पटियाला व शाम चौरासी घराने के अधिकतर कलाकारों ने इसे ठुमरी के अंदाज़ से गाया।''[7] मुल्तानी काफ़ी को निबद्ध व अनिबद्ध दोनों प्रकारों से गाया जाता है। मुल्तानी काफ़ी को राग मुल्तानी में गाया जाए ऐसा भी कोई नियम नहीं है। मुल्तानी काफ़ी को अधिकतर राग सिंधी भैरवी, राग तिलंग में गाया जाता है।

मुल्तानी काफ़ी ''तत्ती, रो-रो, मैं बाट निहारां, साँवल मोड़ मोहारा'', इस काफ़ी को उस्ताद सलामत अली खाँ ने राग सिंधी भैरवी में गाया है वह गाते समय यह भी बताया कि काफ़ी आरफ़ाना कलाम है। इसमें बोल काफ़ी के है किन्तु गाने का ढंग ठुमरी जैसा है।

2. सिंधी काफ़ी–जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है, काफ़ी का यह प्रकार सिंधी भाषा में लिखा गया है। सिंधी काफ़ी को **अब्दुल लतीफ व सचल समस्त** ने लिखा। एक विद्वानुसार - ''सिंध से कुछ गवैयों ने बाबा शेख़ फ़रीद की मज़लिस-ए-समां में वाइयाँ गाई थीं। यही वाइयाँ आगे चलकर काफ़ी कहलाई।8 सिंधी काफ़ी को कव्वाली व लोक-गीत के अंदाज़ में कलाकारों ने गाया है। बेगम आबीदा परवीन ने 'शाह जो रसालो' जिसमें अब्दुल लतीफ ने 30 सुरों (राग) में काफ़ियाँ लिखी उन्हें उसी राग में गाया है। बेगम आबीदा परवीन द्वारा गाई हुई व सचल समस्त द्वारा लिखी गई काफ़ी का उदाहरण प्रस्तुत है :-

माही यार दी घड़ोली
सोणे यार दी घड़ोली
हिक अल्लाह कनूँ मैं डरदी
हिक मौला कनूँ मैं डरदी
पीर पीरा हज़रत मीराँ
नाम दी गित्थे जे टुटीया ज़ंजीरा
हसन हुसैन अली दा जाया
बार उमत का सिर ते छाया
मैं बणी शाह ए डरदी
सचल सारा नूर ईलाही
अली वली दी हैं हम राही
मैं हर दम रब रब करदी
माही यार दी घड़ोली।

सिंधी काफ़ी को अधिकतर सूफ़ी कलाकारों ने ही गाया। इस गायन शैली को गाने के लिए भाषा ज्ञान भी आवश्यक है। कुछ कलाकारों ने सिंधी काफ़ी को ठुमरी के अंदाज़ से भी गाया।

श्री पूरणचंद वडाली (पंजाब) के अनुसार - ''काफ़ी मुश्किल गायकी है, इसके शब्द व उसका सुरों में रख-रखाव लज़ के मायने के अंदाज़ में होना चाहिए। इसके लिए रियाज़त, गले की तैय्यारी व आवाज़ में ज़ोर व दानेदार तान का होना आवश्यक है।''9

सूफ़ी गायिका **सैय्यदा बेगम** (पंजाब) के अनुसार - ''काफ़ी सूफ़ी कलाम है, इसे हम पीर-ओ-मुर्शद के सजदे में गाते हैं। यह गायकी मँझा हुआ कलाकार ही गा सकता है। हमने यह गायकी अपने बुजुर्गों को दरगाहों पे गाते हुए सुना व सीखा।''[10]

साँई ज़हूर साहब (पाकिस्तान) के अनुसार - ''काफ़ी को गाना कलाकार की सोच व आमद पर निर्भर करता है। इसमें राग की पाबंदी नहीं है, ख़ुदा के लिए गाई हुई काफ़ी में सच्चा सुर लगता है व वह धुन हो जाती है जिसे हम लोक-संगीत के अंदाज़ में गाते है।''[11]

श्री हंस राज हंस (पंजाब) के अनुसार - काफ़ी सूफ़ी कलाम है जिसे हम कव्वाली के अंदाज़ में गाते हैं।

उस्ताद हुसैन बख़्श गुल्लू (पाकिस्तान) के अनुसार - ''काफ़ी अन्य गायन शैलियों से भिन्न है व कुछ ही कलाकार है जिन्हें सैरायकी भाषा आती है। यह गायकी व भाषा दोनों ही मुश्किल है तथा काफ़ी में आवाज़ का लगाव अलग तरीके से है।''[12]

इस प्रकार शोधकर्त्ता ने कुछ काफ़ी कलाकारों का साक्षात्कार द्वारा काफ़ी के विषय में मत प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

काफ़ी गायन कलाकार व उनका योगदान

काफ़ी गायन विधा को हिन्दुस्तान पंजाब व पाकिस्तान पंजाब के कलाकारों ने गाया व प्रचलित किया। कुछ मुख्य कलाकारों का वर्णन इस प्रकार है :-

1. बाबा गणपति–बीसवीं शताब्दी के काफ़ी गायकों में बाबा गणपति का नाम बड़े मान-सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका जन्म 1884 के लगभग देवीदत्ता मेहरे के घर जगरावाँ नाम स्थान पर हुआ। आपके जन्म के उपरांत जीवन के 60 वर्ष मुल्तान में ही व्यतीत हुए। देश विभाजन के पश्चात् आपको अपने जन्म स्थान जगराओं वापस आना पड़ा और कोयले का व्यवसाय कर जीवन व्यतीत करना पड़ा।[13] 24 वर्ष की आयु में स्वामी नरौत्तम दास जी का गायन सुनकर आप अत्यन्त प्रभावित हुए और उनसे शिक्षा ग्रहण करने लगे। काफ़ी गायन आपने उनसे सीखा। बाबा गणपति काफ़ी गायन शैली के बादशाह माने गए हैं। मुल्तानी काफ़ी में आप एक कुशल गायक के रूप में सिद्ध हुए।

2. अलीबख़्श ज़हूर–आप पटियाला घराने के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। आपके उस्ताद बरकत अली खाँ 'गोटेवाल' थे जिनसे आपने मुल्तानी काफ़ी, सिंधी काफ़ी, पंजाबी लोकगीत, उर्दू गीत व ठुमरी की तालीम ली। काफ़ी गायन शैली को आपने गाया व प्रचलित किया। लाहौर के पंजाबी कार्यक्रमों में काफ़ी गायन शैली का उत्कृष्ट प्रदर्शन करते रहे व फिल्मों में भी अपना स्वर दिया, आपके गाये हुए फिल्मी गाने प्रचलित हुए उनमें लैला मजनू फिल्म के गाने उल्लेखनीय है।

3. आशिक अली खाँ–आप मियां फतेह अली (करनैल) के इकलौते पुत्र थे। आशिक अली खाँ के पिता की बाल्यकाल में ही मृत्यु हो गई थी जिस वजह से आपने संगीत की शिक्षा अल्ला दियाँ मेहरबान से प्राप्त की जो रिश्ते में आपके मामा थे। कतिपय लेखकों का मत है कि उस्ताद आशिक अली खाँ जैसी सिंधी भैरवी आज तक किसी ने नहीं गायी। पंजाब अंग की ठुमरी के निर्माता होने का श्रेय भी खाँ साहब को जाता है।[14] काफ़ी गायकी के आप मँझे हुए कलाकार थे। सिंधी भैरवी में आपके द्वारा गाई हुई प्रसिद्ध मुल्तानी काफ़ी के बोल इस प्रकार हैं :-

वे मैं हरदम तेरी गुलाम
तू भावें जान न जान
माए दा मातम दो दिन रहदा
इश्क़ दी रोज़ मकाण

4. नज़ाकत अली सलामत अली–आप दोनों भाई ज़िला होशियारपुर के शाम चौरासी घराने के प्रतिष्ठित गायक विलायत अहमद अली खाँ व विलायत अली खाँ की संतान थे। नज़ाकत अली का जन्म 1932 एवं सलामत अली का जन्म 1934 में हुआ। ध्रुपद गायकी व ख्याल गायकी में आप निपुण थे। 9 और 7 वर्ष की आयु में आप दोनों भाइयों ने हरिवल्लभ संगीत सम्मेलन में अपनी कला का प्रदर्शन किया। 1947 ई. में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान विभाजन उपरांत आप मुल्तान चले गए तथा लाहौर को अपना निवास स्थान बनाया। नज़ाकत अली व सलामत अली दोनों ही काफ़ी के मँझे हुए कलाकार थे। शोधकर्त्ता को नज़ाकत अली के सुपुत्र शफ़कत अली व सलामत अली के पुत्र रफ़ाकत अली से साक्षात्कार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके अनुसार काफ़ी को उनके वालिद साहब ने ठुमरी अंदाज़ से गाया वह यह तैयार गायकी थी जो आजकल कम देखने को मिलती है।

सलामत अली व नज़ाकत अली द्वारा प्रचलित काफ़ी का उदाहरण पेश है जो ख़्वाजा गुलाम फ़रीद जी द्वारा लिखी गई :-

तत्ती रो रो मैं बाट निहाराँ
साँवल मोड़ मोहाराँ
मन मन मनता पीर मनावाँ
मुल्ला कोलो तावीज़ बनावाँ
मैं ता करनीयाँ जतन हज़ाराँ
इत्त साँवल मोड़ मोहाराँ

5. आबीदा परवीन–आप मशहूर सूफ़ी गायिका है जिन्होंने सूफ़ी संतों के कलाम को बड़ी खूबसूरती से गाया है व कलाम को आम जन-जीवन तक पहुँचाया। आप ग़ज़ल गायकी व काफ़ी गायकी में निपुण हैं। आबीदा परवीन का जन्म लरकाना (सिंध प्रांत, पाकिस्तान) में हुआ। उन्होंने शुरूआती तालीम अपने पिता गुलाम हैदर से ली तथा उसके उपरांत उस्ताद सलामत अली खान से संगीत सीखा। शास्त्रीय संगीत में विधिवत शिक्षा लेने के बाद बेग़म आबीदा परवीन ने सूफ़ी संगीत का मार्ग चुना। सिंधी सूफ़ी कवि अब्दुल शाह लतीफ की रचनाओं को उन्होने 30 सुरों में गाया व रिकॉर्ड भी किया। 'शाह जो रसालो' नामक एलबम में लतीफ की काफ़ियाँ आबीदा जी की आवाज़ में सुनने को मिलती हैं। अन्य सूफ़ी संतों का कलाम जैसे अमीर खुसरो, बुल्ले शाह, शाह हुसैन, सचल सरमस्त, सुल्तान बाहु द्वारा लिखी हुई काफ़ियाँ उन्होंने गाईं व पूरे विश्व में उसका मंच-प्रदर्शन भी किया। काफ़ी गायकी में आबीदा परवीन का नाम उल्लेखनीय है तथा उनके द्वारा गाई हुई काफ़ियाँ श्रोताओं के लिए अनमोल भेंट है। **बाबा बुल्ले शाह** नामक एलबम में उनके द्वारा गाई हुई उनकी प्रचलित काफ़ी का उदाहरण पेश है :-

मेरी बुक्कल दे विच चोर नी
किस नूं कूक सुणावा नी
चोरी चोरी निकल गाया नी
जग विच पै गया शोर नी

6. वडाली बन्धु-पूरण चन्द वडाली, प्यारे लाल गुरु की वडाली - आप दोनों का जन्म पंजाब के जिला अमृतसर के गाँव 'गुरु की वडाली' में हुआ। अपनी प्रभावशाली गायकी के कारण दोनों भाइयों के जोड़े को 'वडाली बंधु' के नाम से जाना जाने लगा। आपके पिता श्री ठाकुर दास जी एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे व अपने संगीत की शिक्षा आप दोनों ने उनसे ली। कुछ समय पश्चात् अमृतसर के पंडित दुर्गादास जी से आपने आगे की शिक्षा ली। आपने अमृतसर के 'होली उत्सव', हरिवल्लभ संगीत सम्मेलनों जैसे बड़े सम्मेलनों में गाया। जालंधर दूरदर्शन पर भी आपके कई कार्यक्रम प्रसारित हुए। देश-विदेश में आपने सूफ़ी कलाम गाया व ख्याति प्राप्त की। आपकी कई एलबम रिलीज़ हुई जिसमें आपने आरफ़ाना कलाम 'काफ़ी' को बहुत ही मधुर व प्रभावशाली गायकी के रूप में गाया। मुल्तानी काफ़ी आपकी गायकी व अंदाज़ का एक अहम् हिस्सा है। सौभाग्य से शोधकर्त्ता को **पूरणचंद वडाली जी** के साथ साक्षात्कार करने का अवसर प्राप्त हुआ। आप के द्वारा गाई हुई कुछ प्रसिद्ध काफ़ियाँ है :- आ मिल यार प्यरिआ, घूँघट चक ओ सजण शरमां का नूँ रखियाँ वे आदि।

7. श्री बरकत सिद्धू–आपके बचपन का नाम 'बक्की' था व आपका जन्म शाहकोट के पास कनियाँ गाँव में हुआ। श्री बरकत सिद्धू का संबंध

मीर आलम (मिरासियों) के ख़ानदान से था। स्वयं को वह भाई मरदाना (रबाबी) का वंशज मानते हुए उनका पथानुगामी बनने की चेष्टा करने हुए यह बताते हैं। बाल्यकाल से ही आपकी संगीत में रूचि थी। अपनी सांगीतिक शिक्षा इन्होंने अपने मामा, श्री निरंजन दास जी से ली। वहीं इनका पालन-पोषण भी हुआ। अपनी आगे की संगीत की शिक्षा इन्होंने श्री केसर चंद जी से ली। बरकत सिद्धू ने अपनी कड़ी मेहनत से उच्चकोटि के कलाकारों की श्रेणी में ख़ुद को लाकर खड़ा कर दिया। पंजाब के विभिन्न कार्यक्रमों और जालंधर रेडियो व दूरदर्शन से कई कार्यक्रम उनके प्रसारित हुए। पंजाब के काफ़ी गायकों में उनका नाम आदर से लिया जाता है। श्री बरकत सिद्धू को यूँ तो अन्य गायन विधाओं में भी सक्षम थे किन्तु उनकी काफ़ी गायन में निपुणता थी। उनके द्वारा गाई हुई काफ़ियाँः-

1. *हल्थी ढ़िलक पई मेरे चरखे दी,*
   मेत्थों कतिआँ मूल न जावे
2. *मैं दिल नूं कि समझावाँ, माही दे*
   हत्थ डोर, आपे तूं लानॉ ऐ, कुँडियाँ वे माईआ
   आपै तूँ खिच्चणां ऐ डार
3. *देखो नी की कर गिआ माही,*
   लैंदा ही दिल हो गिआ राही

बरकत सिद्धू अधिकतर बाबा शेख़ फ़रीद तथा सुल्तान बाहु का कलाम महफ़िलों में गाते थे।

8. पूरन शाह कोटि–इनका जन्म 1950 ई. में शाहकोट में हुआ। पंजाब के गुणी गुरुओं में इनका नाम लिया जाता है। इनके पिता का नाम श्री निरंजन दास जी था। इनकी बोली पंजाबी है जिसे यह बड़ी ख़ूबसूरती से बोला करते हैं। इनके पिता ने इन्हें उस्ताद बाकिर हुसैन खाँ साहब से संगीत सिखवाया। आजीविका के लिए यह संघर्ष करते रहे, कभी किसी के साथ हारमोनियम और किसी के साथ ढ़ोलक बजाते। अपने पिता जी से सीखी हुई काफ़ी की रचनाऐं ''उट्ठ गए गवाँढ़ो यार, रब्बा हुण की करिए'', ''दो रोटीआँ इक गंडड़ा नी माए, पाली रक्खणै के नए'' इन्होंने पहली बार सरकारी मिडल स्कूल के मंच पर गाईं।'' रेडियो से इन्हें बी हाईग्रेड भी मिला। इनके विख्यात शार्गिदों में श्री हंसराज हंस, मास्टर सलीम का नाम उल्लेखनीय है। इनके अनुसार रचनाऐं अपनी परंपरागत धुनों में ही अच्छी लगती हैं। काफ़ी गायन शैली के विषय में श्री पूरनशाह कोटि जी को बहुत जानकारी है व इसे उन्होंने गाया व शार्गिदों को सिखाया भी संगीत जगत में उनका काफ़ी के प्रति कार्य सराहनीय है। आज के दौर में पंजाब में उनके कईं हज़ार शिष्य हैं जिनका वह मार्गदर्शन करते हैं।

निष्कर्ष

मेरे शोध पत्र में काफ़ी गायन विधा व उसके विशिष्ट कलाकारों के विषय में जानकारी प्राप्त हुई है। काफ़ी के विषय में विद्वानों के मत, गायन शैली के प्रकार व हिन्दुस्तान (पंजाब) व पाकिस्तान (पंजाब) के कलाकारों के बारे में बताया गया है। काफ़ी के विषय में साक्षात्कार द्वारा भी कुछ मत प्रस्तुत किए गए हैं व कलाकारों के योगदान पर विचार किया गया है। इस शोधकार्य में लुप्त होती काफ़ी गायन शैली जिसे केवल पंजाब के कुछ कलाकार ही गाते हैं उनके बारे में बताया गया है। काफ़ी का काव्य व गायन शैली पंजाब की मिट्टी व सूफ़ी संतों की देन है। इस शोध-पत्र के द्वारा काफ़ी से जुड़े तथ्यों व कलाकारों द्वारा काफ़ी गायन शैली में योगदान व कार्य को सामने लाने का प्रयास किया गया है।

पाद टिप्पणी

1. पंजाबी साहित्य कोश, भाषा विभाग पंजाब, भाग-1, पृ. 221-222.
2. भोगल प्यारा सिंह, साहित्यिक निबंध, पृ. 130.
3. हुसैन सैय्यद तसद्दुक, लुगाते-ए-किशवरी, पृ. 3.
4. लाजवन्ती रामाकृष्णा, पंजाबी सूफ़ी पॉइट्स, पृ. 11.
5. पद्म प्यारा सिंह, पंजाबी कविता परम्परा ते विकास, पृ. 23.
6. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, राग आसा, काफ़ी, महला-1, अँग-418.
7. उस्ताद मुबारक अली खाँ (पाकिस्तान) के साथ साक्षात्कार, 12 अगस्त 2018, शाम 8 बजे।
8. Dr. S.M. Jhangiani, Shah Abdul Latif and His Times, p. 56.

9. श्री पूरण चंद वडाली (पंजाब) के साथ साक्षात्कार, 09 नवम्बर 2019, शाम 8 बजे।
10. सैय्यदा बेगम (पंजाब) के साथ साक्षात्कार, 16 अगस्त 2018, दोपहर 3 बजे।
11. साँई ज़हूर (पाकिस्तान) के साथ साक्षात्कार, 26 सितम्बर 2021, शाम 5 बजे।
12. उस्ताद हुसैन बख़्श गुल्लू (पाकिस्तान) के साथ साक्षात्कार, 1 मई 2021, शाम 7.30 बजे।
13. पैन्टल डॉ. गीता, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ. 181.
14. वही, पृ. 212.

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पंजाबी साहित्य कोश (1971), भाषा विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पंजाब।
2. भोगल प्यारा सिंह (1970), साहित्यिक निबंध, हृदयजीत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, जालंधर।
3. तस्दुक हुसैन सैय्यद (1947), नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
4. रामाकृष्णा लाजवन्ती (1973), आशा जनक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. सिंह पद्म प्यारा (1957), लाहौर बुक शॉप, लुधियाना।
6. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, प्रकाशक भाई जवाहर सिंह, कृपाल सिंह एण्ड कम्पनी, अमृतसर।
7. खाँ उस्ताद मुबारक अली (पाकिस्तान), साक्षात्कार, 12 अगस्त 2018, शाम 8 बजे।
8. Jhangiani Dr. S.M. (1986), Shah Abdul Latif and His Times, University of Delhi.
9. वडाली श्री पूरणचंद (पंजाब), साक्षात्कार, 09 नवम्बर 2019, शाम 8 बजे।
10. बेगम सैय्यदा (पंजाब), साक्षात्कार, 16 अगस्त 2018, दोपहर 3 बजे।
11. ज़हूर साँईं (पाकिस्तान), साक्षात्कार, 26 सितम्बर 2021, शाम 5 बजे।
12. गुल्लू हुसैन बख़्श (पाकिस्तान), साक्षात्कार, 1 मई 2021, शाम 7.30 बजे।
13. पैंटल डॉ. गीता, (1988), पंजाब की संगीत परम्परा, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

काशी में वॉयलिन वादन की परम्परा

प्रशान्त मिश्र

सार :-

हिन्दुस्तानी संगीत के घरानों को अगर हम पृथक् रूप से पवित्र नदी के रूप में देखें तो निःसन्देह ''बनारस घराना'' समुद्र जैसा विशाल और गहरा दिखेगा। प्रत्येक घराने की अपनी निजी विशेषताएँ हैं तथा उस घराने के कलाकार विशेष शैली में गायन-वादन करते हैं। प्रत्येक घरानों में तकनीकी रूप से कुछ सीमितताएँ हैं तथा प्रत्येक घराने केवल गायन, वादन अथवा नृत्य के लिए प्रसिद्ध है। ठीक इसके विपरीत ''बनारस घराना'' सम्पूर्ण संगीत के लिए जाना जाता है।

प्राचीन काल से यहाँ ध्रुपद-धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा, होरी व कजरी गाया जाता रहा है। कथक नृत्य के साथ-साथ तबला वादन, सितार, सारंगी, शहनाई तथा 'वॉयलिन' के विश्व प्रसिद्ध कलाकारों ने बनारस घराने को विश्व में एक पहचान दी। प्रस्तुत लेख में काशी के विद्वान् वॉयलिन वादकों के बारे में, उनके व्यक्तित्व व कृतित्व की चर्चा की गई है।

सूचक शब्द :- वॉयलिन, परम्परा, विद्वान्, घराना, प्रसिद्ध।

विश्व प्रसिद्ध नगरी काशी में अनेक ऐसे विद्वान्, गायक एवं नर्तक हुए, जिन्होंने अपनी कला एवं साधना से अपार ख्याति अर्जित की एवं शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में काशी को विश्व में एक विशेष स्थान दिलाया।

काशी की अनूठी एवं मनमोहक संगीत परम्परा के अनेक विश्व प्रसिद्ध कलाकारों की पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही अविच्छिन्न श्रृंखला ने काशी नगरी के गौरव को विश्व में शीर्ष स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। गायन, वादन, नृत्य तथा संगीतशास्त्र के कई मूर्धन्य शीर्षस्थ कला-साधकों ने अपनी कला एवं विद्वता से संगीत जगत में अपार लोकप्रियता प्राप्त कर काशी के गौरव को बढ़ाया है।

काशी में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों विधाओं के अनेक प्रकांड विद्वान् हुए एवं अपनी कलाओं से 'बनारस घराना' को विश्व में प्रसिद्ध किया। बनारस घराना के तबला वादकों में पं. रामसहाय (प्रवर्तक), पं. भैरो सहाय, पं. बलदेव सहाय, पं. बिक्कू महाराज, पं. अनोखे लाल मिश्र, पं. गामा महाराज, पद्मविभूषण पं. किशन महाराज, पद्मभूषण पं. सामता प्रसाद, पं. रंगनाथ मिश्र, पं. शारदा सहाय आदि ने तबला वादन के क्षेत्र में अपने घराने को विश्व स्तर पर प्रसिद्ध किया।[1]

बनारस में ठुमरी गायन की शैली बहुत प्रचलित रही है। इस शैली में अनेक लोकप्रिय ठुमरी गायक-गायिकाओं का नाम अति प्रसिद्ध रहा है जिनमें विद्याधरी बाई, जद्दन बाई, पं. रामूजी, सिद्धेश्वरी देवी, पं. महादेव प्रसाद मिश्र एवं श्रीमती गिरिजा देवी आदि का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। नृत्य के क्षेत्र में बनारस घराने के प्रसिद्ध नर्तक पं. गोपी किशन, श्रीमती सितारा देवी आदि ने देश-विदेशों में ख्याति प्राप्त की। भारतरत्न उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ शहनाई के पर्याय माने गए।

बनारस में ख़्याल गायन की भी बड़ी लम्बी परम्परा रही है, जिनमें पं. बड़े रामदास जी कई शिष्य-प्रशिष्य ख्यातिलब्ध हुए। इसी श्रृंखला में पं.

* पूर्व छात्र, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

मिठाई लाल जी, पं. झूमक लाल जी, पं. श्रीचंद मिश्र, पं. अमरनाथ-पशुपति नाथ मिश्र आदि गायक हुए तथा बनारस की ख्याल को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठापित करने का पूरा श्रेय पद्मभूषण पं. राजन-साजन मिश्र को जाता है। इनके अतिरिक्त सारंगी एवं सितार के भी कई प्रमुख कलाकार हुए जिनमें पं. हनुमान प्रसाद मिश्र, पं. गोपाल मिश्र (सारंगी) उस्ताद मुश्ताक अली, पं. सुरेन्द्र मोहन मिश्र (सितार) आदि कलाकारों ने विश्व स्तर पर बनारस घराने का प्रचार-प्रसार किया।[2]

इसी क्रम में काशी के वॉयलिन वादकों ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। इन कलाकारों में से कुछ कलाकार काशी में ही जन्में और अपना जीवन संगीत को समर्पित किया तथा कुछ कलाकार काशी के बाहर से आकर यहाँ बस गए एवं काशी में ही संगीत की सेवा करते रहे। काशी के वॉयलिन वादकों में अनेक ऐसे विख्यात कलाकार हुए, जिनमें से कुछ प्रमुख जिनके बारे में कुछ विवरण इस प्रकार है :-

1. पं. गगन बाबू सुप्रसिद्ध वॉयलिन वादक अपने युग में इस वाद्य के जाने-माने कलाकार के रूप में विख्यात हुए। काशी के अनेक संगीत विद्वानों की सत संगति ने आपकी संगीत अभिरूचि को शनैः-शनैः अभिप्रेरित करने में उचित योगदान दिया। आपने इस विदेशी वाद्य पर भारतीय रागों की सफल प्रस्तुति कर अपनी वादन क्षमता में क्रमशः अद्भुत आकर्षण एवं प्रभाव उत्पन्न करते हुए अपनी अहर्निश साधना तथा कुशलता से शीघ्र ही देशव्यापी ख्याति अर्जित की।
2. पं. गोपीनाथ गोस्वामी का नाम विश्वप्रसिद्ध वॉयलिन वादकों में मुख्य रूप से लिया जाता है। आपका जन्म देश की सांस्कृतिक राजधानी पवित्र नगरी काशी में 7 जनवरी सन् 1911 को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री केदारनाथ गोस्वामी था। आप पं. गगन बाबू के वॉयलिन वादन से विशेष रूप से प्रभावित हुए, तत्पश्चात् सन् 1932 में आप काशी के मूर्धन्य संगीत विद्वान् तथा अनेक वाद्यों के वादन शैली के जानकार उस्ताद आशिक अली खाँ से वॉयलिन वादन की शिक्षा लेना आरम्भ किये। वॉयलिन वादन के क्षेत्र में आपका विशेष योगदान रहा। देश-विदेश में आपने कई प्रस्तुतियाँ दी तथा अनेक सम्मानों से सम्मानित किये गए।
3. पं. वी.के. वेंकटरामानुजम का जन्म सन् 1931 में एक प्रसिद्ध संगीत परिवार में हुआ। आपने वॉयलिन वादन की शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की। आप आकाशवाणी दिल्ली में कार्यरत थे। तदुपरान्त 24 अगस्त 1964 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, संगीत एवं मंच कला संकाय में कर्नाटक वॉयलिन वादक के पद पर अध्यापक के रूप में कार्यरत हुए तथा 1993 को सेवानिवृत्त हुए। आप वॉयलिन वादन के साथ-साथ उच्च कोटि के गायक भी थे। संगीत पद्धति के सुविख्यात वॉयलिन वादक पं. वी.के. वेंकटरामानुजम को काशी के संगीतज्ञों एवं संगीत प्रेमियों के मध्य व्यक्तिगत विद्वतापूर्ण वादन शैली के लिए विशेष लोकप्रियता प्राप्त थी। आपके सांगीतिक जीवन का समापन सन् 2005 में हुआ।[3]
4. पद्मभूषण डॉ. एन. राजम का जन्म सन् 1938 में एक संगीतज्ञ परिवार में हुआ। आपके पिता विद्वान् ए. नारायण अय्यर कर्नाटक संगीत के एक गुणी वॉयलिन वादक थे। अतः आपकी प्रारम्भिक शिक्षा तीन वर्ष के अल्पायु में ही पिता द्वारा प्रारम्भ हुई। तदुपरान्त आपको विख्यात कर्नाटक गायक विद्वान् मु.सु. अय्यर से भी सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्ष 1955 में आपने संगीत मार्तण्ड पं. ओंकारनाथ ठाकुर से हिन्दुस्तानी संगीत की शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ किया। आपने पण्डित जी की गायकी को अपनी कला से वॉयलिन वाद्य पर हुबहू दर्शाया। इस प्रकार वॉयलिन पर गायकी अंग की वादन शैली का पूर्ण श्रेय आपको जाता है। वर्ष 1959 में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत संकाय के वाद्य विभाग में वॉयलिन के प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति हुई। आपने कार्यकाल के दौरान आपने वाद्य विभाग की विभागाध्यक्षा एवं संकाय प्रमुख के रूप में भी

कार्य किया। ख़्याल गायकी के अलावा आपकी वॉयलिन पर काशी के ठुमरी सम्राट पं. महादेव प्रसाद मिश्र की गायकी भी झलकती है। आपके शिष्यों में आपकी पुत्री डॉ. संगीता शंकर, प्रो. वी. बालाजी, सुश्री रागिनी एवं नन्दिनी शंकर का नाम प्रसिद्ध है।4

5. श्री आर.वी. सोनटक्के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं मंच कला संकाय में 30 से अधिक वर्षों तक वॉयलिन शिक्षक के पद पर कार्यरत रहे। सोनटक्के जी गुणी वॉयलिन वादक एवं कुशल गायक रहे हैं। आपकी वॉयलिन वादन शैली एवं गायकी इतनी समरूप थी कि आपकी गायकी एवं वादन शैली में अंतर करना कभी-कभी कठिन प्रतीत होता था। आपने अनेक मंचों पर गायन-वादन की सफल प्रस्तुति दी है।
6. डॉ. रामू शास्त्री काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं मंच कला संकाय में वाद्य विभाग के प्रोफेसर रह चुके हैं। शास्त्री जी का नाम देश के सुप्रसिद्ध वॉयलिन वादकों में आता है। आपने संगीत की शिक्षा संगीत मनीषी पं. बड़े रामदास मिश्र जी से ग्रहण करने का अवसर प्राप्त किया। आपने देश के प्रमुख संगीत समारोह तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विशिष्ट कार्यक्रमों में अपने मनमोहक वादन से खूब ख्याति अर्जित की।5
7. प्रो. विष्णुचित्तन बालाजी का जन्म सगीत के घरानेदार परिवार में हुआ। आपने संगीत की शिक्षा सर्वप्रथम अपने पिता पं. वी.के. वेंकटरामानुजम तथा पद्मभूषण डॉ. एन. राजम जी से प्राप्त की। आप सुप्रसिद्ध वॉयलिन वादक एवं गायक है। वर्तमान में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं मंच कला संकाय में प्रोफेसर के पर पर कार्यरत हैं तथा संकाय के प्रमुख तथा वाद्य विभाग के अध्यक्ष पद पर भी रह चुके हैं। आपने देश एवं विदेशों में अनेक प्रस्तुतियाँ दी है।6

काशी के प्रसिद्ध वॉयलिन वादकों की श्रेणी में श्री जोई श्रीवास्तव, डॉ. उमा शंकर राय चौधरी, पं. कृष्ण विनायक भागवत, श्री पूर्णेन्दु भट्टाचार्या, डॉ. जयश्री राय, श्री सुखदेव प्रसाद मिश्र, स्व. डॉ. स्वर्णा खूंटिया आदि का नाम भी मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ :-

1. 'काशी के सितार वादक'-मिश्र, बिरेन्द्रनाथ (2012), प्रथम संस्करण, कला प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. अप
2. 'संगीत विशारद'- वसंत (2010), स ाईसवां संस्करण, संगीत कार्यालय प्रकाशन, हाथरस, पृ.सं. 398
3. 'काशी की संगीत परम्परा', मिश्र, कामेश्वरनाथ (1997), प्रथम संस्करण, भारत बुक सेन्टर प्रकाशन, लखनऊ, पृ.सं. 241-243
4. 'नेट संगीत'-टॉक, तेज सिंह (2010), द्वितीय संस्करण, लुमिनस् बुक्स प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 252
5. 'आलापिनी'-संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (2020), प्रथम संस्करण, लुमिनस् बुक्स प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 60-61
6. 'पं. ओंकारनाथ ठाकुर एवं उनकी शिष्य परम्परा', काव्या, लावण्य जी कीर्ति सिंह (1998), प्रथम संस्करण, शिवम् सांस्कृतिक मंच प्रकाशन, छपरा, पृ. सं. 237-239

Jyotirindranath:
In the World of Dramatic Songs

***Prof. Neera Chowdhury &**
****Sanjay Bhattacharya**

Abstract :

Jyotirindranath (1849-1925), the son of the Jorasanko Tagore family, was the great man who was able to sign his outstanding talent in almost every field of Bengali music. He was a writer, musician, playwright, painter and translator. Jyotirindranath has experimented with various aspects of Bengali music and in the creation of its melody and has applied it in his compositions. Among the musicians of the nineteenth century, he was a sophisticated, selective, French beauty lover.

The playwright Jyotirindranath is better known than the writer, lyricist, painter and translator Jyotirindranath. Although he came to the world of music as well as drama, he took a special place in the history of drama and theater because of his extraordinary talent.

Jyotirindranath's playwriting began with the composition of 'Comedy'. Jyotirindranath was particularly impressed by the farce of the famous French playwright Moliere and followed him in composing his own farce.

Although influenced by Moliere, Jyotirindranath maintained his uniqueness in his writings. Among his farces are pure humor. Jyotirindranath has given special importance to music in composing comedy and in that case he has used different melodies and rhythms of classical music.

In addition to comedy, he has written five original plays. Purubikram, Sarojini, Ashrumati, Sapnamayi, Nagananda. After the Hindu Mela, inspired by patriotism, he wrote the historical heroic drama "Purubikram" to awaken the affection and patriotism of the people of the country towards patriotism. He also wrote the nationalist romantic drama "Sarojini" with the same inspiration. Jyotirindranath has given important status to music in every one of his plays.

The lyric plays written by Jyotirindranath are: - Manmayi, Punarbasanta, Basantalila, Dhyanabhanga. Manmayi is said to be the first attempt to compose a lyric play and the credit for composing the first real lyric play in Bengal is given to Jyotirindranath. He has also mixed western melodies with Indian melodies in his lyric songs. Made by Italian Jhinjhit, Irish Belabal, Scotch Bhopali,

* Research Scholar, Deptt. Of Music, Patna University, Patna.

** Head, Deptt of Mousic, Patna University, Patna

Scotch Kedar, Spanish Bowl etc. Apart from his own works in comedy, drama and lyric drama, Jyotirindranath has given place to the works of Rabindranath, Akshay Chandra Chowdhury and has composed Bangla songs following many classical and kheyal songs prevalent in the nineteenth century.

***Key Word**: - Jyotirindranath, Rabindranath, Akshay Chandra Chowdhury, Comedy, Historical drama, western and provincial music, French drama, Jorasanko theater.*

From his adolescent period Jyotirindranath in a playful mood busied himself in the composition of dramatics. In this matter his companion was the son of Girindranath i.e. Gunendranath. On the verandah of 'thakurbari' everyday they engaged themselves in rendezvous and a few more persons joined this rendezvous. Here many ideas about drama were discussed. Jyotirindranath and Gunendranath formed a dramatic club in the 'thakurbari'. A committee of five members was formed for looking after the various activities of drama and it was named 'committee of five'. Its members were Krishnabehari Sen, Gunendranath Thakur, Jyotirindranath Thakur, Akshaychandra Chowdhury and Jadunath Mukhopadhyay. They formed "Jorasanko Natyoshala" in the year 1865. [1]

Jyotirindranath started composing drama with "farce". His threefarcial compositions are :[2]

1. **"Kinchit Jalojog"** (20th September, 1872)
2. **"Emon Kormo Ar Korbo Na"** (7th July,1877)
   In1900 it's changed name became**" Alikbabu".**
3. **"Hothath Nobab"** (20th April,1884)

His composed basic dramas number are five only :-

1. **"Puruvikram"** (9th July, 1874)
2. **"Sarojini"** (30th November, 1875)
3. **"Ashrumati"** (4th November, 1879)
4. **"Swapnomoyee"** (24th March, 1882)

His composed musical dramas are :-

1. **"Manmoyee"** (1880)
2. **"Punarbasanta"** (14th March, 1899)
3. **"Basantalila"** (29th March, 1900)
4. **"Dhyanbhanga"** (15th April, 1900)

His amusing playlets number only two :-

1. **"Hitey Biporit"** (7th May, 1896)
2. **"Daye Pore Dargroho"** (16th September, 1902)

Now let us go to the subject of "farce" and about the music of the "dramas". In most of the songs he used the "raag-raaginis and taals" of Hindustani classical music and it's tune. As for example [3]

"Kinchit Jalojog"	Sindhu-Bhairvi, Bhairvi
"Alikbabu"	Lalit/Adatheka, Purobi -Kaoali, Khamaj-Kaoli
"Hitey Biporit"	Khamaj-Adkhemta, Lalit-Adatheka
"Daye Pode Dargroho"	Sohini/Dadra, Jhinjhit-Khamaj /Khemta, etc.

Jyotirindranath's first historical drama was **"Puruvikram"**(1874). In the first edition of this drama Jyotirindranath used his elder brother Satyendranath's composition **"Miley Sobe Bharat Santan".**To rouse patriotism in the dramatis personae Rani Ailabila he used this patriotic song in the very beginning of the drama in the voice of Udasini to place the drama on granite stone.[4] Another song of this drama was:

1. **Ragini: Jongla-Jhinjhit.** Taal: Adatheka
   "Aage KoriaJaton, Keno Mojaile Mon"
2. Sindhu- Bhoirobi Taal: Adachoutal
   "Jabot Jeebon Robe Kare Bhalobasibo Na"

Another drama of Puruvikram class **"Sarojini" or "Chitor Akraman"** (1875) in the final scene at the time of Rajput women climbing the funeral pyre, Rabindranath at the age of fourteen composed

"Jwal Jwal Chita Dwigun Dwigun

Poran Sonpibey Bidhaba Bala", added a new flavour to the music of the drama. Jyotirindranath tuned the song on "Aham"raag in English style.[5]A few songs of "Sarajini"[6]

1. **"Samaro Tyago Ada Ko Zara Suno To Sahi"** Jhinjhit-Khambaj/ Kashmiri Khemta
2. **"Tarey Bhulibo Kemone"** Jhinjhit / Kaoali
3. **"Sakhi Se Ki Ta Janey"** Sindhu-Bhairvi /Adatheka
4. **"Jwal Jwal Chita Dwigun Dwigun"** English style tune in Aham raag.

After "Puruvikram", "Sarijini" Rabindranath composed **"Ashrumati"** (1879).Songs of this drama:[7]

In the third act of this drama in the first scene there is in the temple of Bhagabati in front of Durgadurgatinashini a prayer in chorus

- **"Agotir Tumi Goti Bishwamata Bhagawati"**: Ragini – Multan
  In the third act of third scene of the drama a song sung by Malina
- **"E Sukho Basantey Soi Keno Lo Emon Apon-hara Bibosha Aha-Mori"**: Behag / Kaoali
  The song was composed by Akshaychandra Chowdhury and Jyotirindranath set it to music. It's tune and the variety of poetical metre commands attention.
  In this drama in the third/fourth act of seventh scene Prithwiraj in prison sleeped in deep anxiety. At that time a song behind the scene was
- **"Cherede Cherede Amar Pakhi"** Sindhu-Bhairvi/ Madhyaman

In the fourth act , ninth scene when Malina came to know that Prithwiraj is eager to marry Ashrumati then her long cherished dream was smashed to pieces. The Prithwiraj whom Malina dedicated her heart, soul and life is no more hers – this realization makes her sing:

"Pranponey Pran Sonpilam Jarey / Sei Hontarak Praney" Bagesri/ Aratheka

In the fourth act, seventeenth scene Hamba and some Bheel youths holding hands together dancing in a circular manner sing:

"Kayse Kaharoa Jaal Binurey"

No notation of this song is found. Depending upon the description of the song it is guessed that it is tribal in nature.

In the final scene Ashrumati aiming Selim looking at him slowly leaves the place singing—

- **"Premer Kotha Ar Bolona"**: Italian Jhinjhit/ Kaoali.
  After this in 1880 Jyotirindranath composed **"Manmoyee"**- a musical drama. This music drama was composed by the interaction of Indian and Westernmusic[8].

A few ongs of this drama:

- **"Chile Kothay Bolo, Koto Ki Je Holo"**
- **"Shunlem Naki Nidarun Maney"**

- **"Sajani Lo Bol, E Ki Holo Amar"** etc.

After "Puruvikram", "Sarojini" and "Asrumati" in 1882 Jyotirindranath composed "Swapnomoyee". This was mainly a dialogue in prose and romantic music drama. The songs composed by Jyotirindranath are:[9]

- **"De Lo Sokhi De Poraiye Chuley"** Raag- Desh
- **"Sajani Lo Bol Keno E Pora Pran"** Raag – Sindhu
- **"Na Jani Ki Gun Dhorey Mukhani"** Ragini – Behag

In 1884 Jyotirindranath composed the satire **"Hothath Nobab".** Songs of this satire: [10]

- **"Je Obodhi Netroban Hanichho Kharotaro"**
- **"Priyo Torey Baroi Mishti Bhebechhilam Aage"**
- **"Prem Jara Kore, Shukaia More"**
- **"Sobe Mili Esho Bhai Sura Kori Paan"**

In the next satire**"Hitey Biporit"** (1896) with the help of sur and taal people of the theatre among themselves through fun and frolics the joker has produced undiluted humour. Few songs of this satire : [11]

- **"Tuktuke Tor Pa Dukhani/ Alta Porai Aay"**—Khamaj/Aadkhemta
- **"Bolo Bolo Priye Bolo, Aloor Aaj Bhao Ki"**—Lolit/Adatheka
- **"Bakso Bhora Lakso Taka Dekhte Ki Bahar"**— Sohini-Bahar/ Adkhemta
- **"Hah: Hah: Hah: Hah: Hah: Hah: Hah: Hah:/ Heshey Banchiney"**

In 1899 Jyotirindronath composed the musical drama **"Punarbasanta"** based on 'advut rass'. In it side by side was prosody. This was Manmoyee's re-creation. In this musical drama Jyotirindranath used Rabindranath's and Akshaychandra Chowdhury's songs also.

List of songs[12]

- **"**Sokhi **Sadhite Sadhate Koto Sukh"**
  (Rabindranath composed 'sthayee and antara' and Jyotirindranath composed 'sanchari and aabhog' ohf this song.
- **"Chhi Chhi Ah! Chhi Oki Kotha"** (Written by Akshaychandra Chowdhury, tuned by Jyotirindranath Tagore)
- **"Ghyanor Ghyanor Ghyanor Ghyanor Sei Je Kanduni"**
  (Composed by Jyotirindranath and Akshaychandra Chowdhury).
- **"Aaj Lo Preyashi Premeri Tarongey"**
- **"Sei To Soi Pastatey Holo"**
- **"Koyelia Matoara Anandey"**
- **"Dhirey Dhira Bayu Bohitechhey"**
- **"Koi Elo Koi Elo, Shey Aar Koi Elo"**
- **"Mlan Mukho Keno Bolo Priye Bolo".**

After the success of "Punarbasanta" for the acting in Bharat Sangeet Samaj in 1900 Jyotirindranath composed **"Basantalila".** Apart from his own composition Jyotirindranath used Rabindranath's four songs and Akshay Chowdhury's three songs in this music drama. Moreover he composed many Bengali songs in the style of dhrupad and kheyal currently in 19th century for this musical drama. [13]

List of few songs composed by Jyotirindranath Tagore:—

- **"(Aaji) Aailo Basanta Himritu"** — Bahar/ Tewra

- **"Ami Jai Jai, aar Phirey Chai"** — Sindhu/ Ektaal
- **"Aaha Ki Chandini Raat Hero Lo Sokhi" –** Bhupali/ Kawali
- **"Paaye Paaye Baaje Re" —** Emon/ Kawali
- **"Murali Ki Goon Jane Bhabi Tai Mone" –** Jogia/ Kawali
- **"Jeo Na Jeo Na Jamunaay" —** Mishra Khamaj/ Khemta
- **"Tora Aay Lo Aay" —** Multan / Khemta etc,

In 1877 Jyotirindranath composed the banter **"Emon Kormo Ar Korbo Na"**. In 1900 it's changed name became "Alikbabu". A few songs of this drama:[14]

In the first scene there is a song by Gadadhar

"Sudhu Dhoney Ki Korey

Jey Jarey Sompechhey Pran Shey Chay Tarey"

Through this song the artistes' Gadadhar Prasanna's exchange of mutual love and the mental condition of Jyotirindranath has been beautifully depicted.

- **"Ga Tolo Re Nishi Abosan Pran"** Lalit/Adatheka
- **"Ga Dhalo Re Nishi Aguan Pran" —**Purabi/Kaoali
- **"Chhili Jekhane Sekhane Ja Re"**—through this song Jyotirindranath's capacity for depicting mirth and comic has been brought out nicely.

In 1900 Jyotirindranath wrote one more musical drama named **"Dhyanbhanga".** The songs of this musical drama are :—[15]

- "Key Paarey Eratey Tabo Shar" — Mallar-Sarang/ Kawali
- "Jeo Na Jeo Na Nath Kori Go Baron" – Surat / Jhaptal
- "Phot Re Kushum Phot Re Tora" — Mishra Kalengra/ Aadkhemta
- "Bhabo Shiv Shankar Horo" — Bhairab / Surphank
- "Akale Basanta Aaha Kar Montrey" — Mishra Pilu / Aadkhemta
- "Namo Namo Mahadev, Namo Shiv-Shankar" – Bhairav/Jhamptal
- "Shiv Shankar Bom Bom Bhola" — Khamaj/ Kawali etc.

In 1902 Jyotirindranath composed a different Farcical playlet **"Daye Porey Dargroho".**In this farce music has been used beautifully. Through the songs Jyotirindranath has highlighted the then social order's infrastructure.[16]

List of songs:—

- "Eka Eka Eto Din Kete Galo"
- "Mora Bedini Lalona"
- "Hi Hi Hi Hi Hi Hi Kemon Moja"

Bibliography:

1. "Thakurbarir Kotha", Hiranmoy Bandyopadhyay, Publisher : Debajeet Dutta, Date Of Publication: September 1966, Kolkata, Page No. 106
2. "Prahasaner Swatantra Shilpi Jyotirindranath", Dr. Samir Samanta, Publishers : Narayan Chandra Ghosh, Akshar Prakashani,, Date of publication : January 2004, Page no: 22
3. –Do— Page No: 137-157
4. "Jyotirindranath Natok Samagr", Devajit Bandyopadhyay, Publisher :Shishu Sahitya Samsad, Date of publication : 2002, Page no : 21-22
5. "Jyotirindranather Jibon-Smriti", Basanta Kumar Chattapadhyay, page no. 147
6. "Jyotirindranath Natok Samagr", Devajit Bandyopadhyay, Publisher : Shishu Sahitya Samsad, Date of publication : 2002, Page no : 27
7. "Jyotirindranather Natyasangraha", Jyotirindranath Thakur, Visva-Bharati Granthan Bibhag, Page no.325-415
8. "Jyotirindranather Jibon-Smriti", Basanta Kumar Chattapadhyay, Page no. 157
9. "Jyotirindranather Natyasangraha",

Jyotirindranath Thakur, Visva-Bharati Granthan Bibhag, Page no.494-527

10. ”Prahasaner Swatantra Shilpi Jyotirindranath”, Dr. Samir Samanta, Publishers : Narayan Chandra Ghosh, Akshar Prakashani,, Date of publication : January 2004, Page no.144-146.
11. ”Jyotirindranather Natyasangraha”, Jyotirindranath Thakur, Visva-Bharati Granthan Bibhag, Page no.566-567
12. ”Jyotirindranath Natok Samagr”, Devajit Bandyopadhyay, Publisher : Shishu Sahitya Samsad, Date of publication : 2002, Page no : 49-50
13. “Jyotirindranath Thakurer Gaan : Aalochona O Sangeetlipi”, Amal Kumar Mitra, Date Of Publication : 1998, Kolkata, Page No: 118-161
14. ”Prahasaner Swatantra Shilpi Jyotirindranath”, Dr. Samir Samanta, Publishers : Narayan Chandra Ghosh, Akshar Prakashani,, Date of publication : January 2004, Kolkata,Page no.149-151.
15. “Jyotirindranather Natyasangraha”, Jyotirindranath Thakur, Visva-Bharati Granthan Bibhag, Page no.595-614
16. “Prahasaner Swatantra Shilpi Jyotirindranath”, Dr. Samir Samanta, Publishers : Narayan Chandra Ghosh, Akshar Prakashani,, Date of publication : January 2004, Kolkata, Page no.155-156.

Impact of Music and Yoga in Stress

Dr. Praveen Saini

Abstract

A healthy mind resides in a healthy body. But in today's fast paced life it is very difficult for a person to have a few moments of free time. The result is stress. Stress today is the most serious problems; hardly any person is untouched by it. Stress is the root of various physical, mental, practical and social problems. When a personal is highly stressed, then there is a lack of concentration and internal physical changes begin. As a result, hormones begin to secrete from the adrenal gland. Hormones are produced in the endocrine glands, there hormones originate from these glands and mix directly into the blood vessels and are responsible for various changes in the body. Physical and behavioral changes occur due to the effect of hormones. Adrenaline hormones increase the blood pressure by increasing the heart rate, that is, due to increase in adrenaline hormones, heart rate increase. The pancreas gland secretes insulin and when this secretion is not proper quantity then the person becomes diabetic, due to which the physical and mental debility, memory, thinking, and concentration begin to decline. The parathyroid gland controls the amount of calcium in the body and this affects a person's emotional behavior and calmness due to improper secretion.

Impact of Music and Yoga has immediate and long-term effect on reducing anxiety and helps in controlled response to ***any type of stress whether emotional or behavioural.*** *The observations state the such relaxation techniques decrease anxiety more in comparison to supine rest, thereby soothing one's nerves, developing tranquility with clear psychological understanding of human mind to approach life's situations affirmatively.*

The tradition of healing by music has been going on since ancient times, but today therapy has developed so much that if we call it synonymous with the medical world, then there will be no exaggeration. Based on the results coming from various researches, the basis of every problem of a person is stress and solution is music. While listening to music, a fluid called Neurotransmitter is heard in the brain, which makes the listener relaxed. Music therapy is completely beneficial on stress and despair. According to research, apart from eliminating stress and difficulty in breathing, music also controls low blood pressure. Actually, listening to slow music

Associate Professor, Music Instrument (Tabla), G.D.H.G. College, Moradabad

increase the amount of serotonin, a chemical that makes the body happy which, reduces depression and also improve sleep.

Every genre of music be it singing, playing or dancing is very beneficial in relieving stress. Some private companies are organizing dance classes for employee in their office campus. They argue that western dance forms like Salsa, Rumba and Chachacha reduce stress in a fun-filled style. Dance training is going on at HUL Lintas, Hinduja Hospital, Jet Airways, ICICI and Citibank. According to choreographer Sandeep Soparkar, the long hour of work and the stress of completing targets have a very bad effect on the health of the workers. According to him, half an hour to one hour of sessions fills new energy in the employess. They feel refreshed and start working with a new preservative. Tojo of Tojo Dance Academy says that dance reduces the stress of the employees and gives them a chance to have some fun. Apart from this, when colleagues of many departments meet on the dance floor at the same time their relationships also become lovable. According to psychiatrist

Jitendra Nagpal, "Dance is used extensively in diseases like depression of stress. Dance causes the secretion of endorphins chemicals in the body due to which the mood is good. Dance is used as a successful therapy to reduce the effects of stress and despair. Reebok fitness master Nisha Verma says, "Dance is a means of social interaction. During aerobics, the hormone called endorphins produced in the body its effects last for 24 hours. This hormone makes the person happy, they feel better. During dance, attention is diverted from the world and this time is enough to relieve you.

Music strengthens relationships. In a recent study in London, scientists found that people with a tendency towards music tend to give more importance to family and social relationships. Researchers discovered a gene that was responsible for both music and relationships. Scientists at Helsinki University studied the importance of music in life and its other aspects. Principal researcher Irma Jarvela said that she selected 19 such families for the study in which at least one person was a musician. She analyzed the understanding of tone, rhythm, tempo among these family members. They found that the musical qualities in these families were due to genetic reasons. It was found that AVPRIA gene is responsible for understanding music in person. Jarvela said that this is the same gene that is also responsible for love, attachment and altruism in a person.

A stressed person suffers from many mental and physical problems. 80% of our illness have mental causes at the root. The effect of which also affects our daily behavior. Under stress, a person also does a lot of criminal work; music can also help to get rid of these crimes.

In the city of New Zealand, the music of Mozart, a classical musician of the 18th century, is proving helpful for the police in tacking crime. According to the newspaper 'The Press', since the introduction of Mozart and other classical music player in a mall in Christchurch in June 2009, the number of crimes has also decreased. Statistics show that while in October of 2008, there were 77 cases per week against non-social activities, whereas in October this year only two such cases are reported per week. A senior police officer says that music definitely

has an impact. This creates an environment that encourages good people to behave well.

Music is fine art which excels in many respects the art architecture sculpture and paining. It appeals to the heart of human beings. It attracts and charms all the living beings of the world, irrespective of caste, creed and colour. It is recognized as the greatest and finest art that brings peace and solace to the human world. The basic element of music is sound, which is manifested in the form of tones and microtones. The musical sound is possessed of sweet tune which is considered as the flavor of pleasing sound, and it is impregnated with divine luster (Lavanya), aesthetic sentiment (rasa) and mood (bhava). The Indian psychologists and philosophers say that the psyche or soul of music is made up of sound with emotions. Charles Darwin was of the opinion that music evolved from the imitation of the cries and calls of the animals. Alfred Einstein also maintained similar views.

Since ages music has been used in our daily life as the most powerful energizing tool. It is helpful in breaking the monotony and fatigue of our life. Music has a powerful healing technique. Involvement in music may provide a distraction from pain, discomfort and anxiety after associated with some physical disabilities. Today, music as a therapy is playing a vital role in the treatment of physical and psychiatric disorders is human begins. There are so many Indian 'ragas' that are helpful in reducing physical and mental complications. The Raga Research Centre in Chennal is currently doing comprehensive study of Indian ragas and evaluating their therapeutic potential with the help of musicians, doctors and psychiatrists. It is believed that classical Indian ragas can benefit a whole lot of patients suffering from various disease and illness. To cite a few examples, Asavari helps in building confidence, Bageshri helps in curing insomnia, Bhimpalasi reduce anxiety and hypertension. In the same way, Brindabani Sarang helps in reducing depression and so on.

Yoga

The ancient spiritual discipline *yoga*, 1st mentioned in Rig Veda was designed to bring equilibrium and healthiness to the physical, mental, emotional, and spiritual dimensions of the individual. This popular long practice in India has now become increasingly more common in western society. Literally "Yoga" means "*Union*". Being in Yoga means that *everything in one's experience has become ONE*. This is its deepest aim and essence of yogic science.

Sadhguru Jaggi Vasudev's *Inner Engineering – A yogi's guide to Joy*, tells that Yoga is not practice. It's neither an exercise nor a technique. *"The science of yoga is quite simple the science of being in perfect alignment, in absolute harmony, in complete sync with existence*. The influence of fluctuations of the outside world on us creates fretfulness, worry, uneasiness or tension with us. *But yoga is the science of creating inner situations exactly the way we want them*. When we first tune with ourselves to such a point where everything functions beautifully within us, rolling within us, rolling with our naturally best abilities.

The ***Ashtanga*** *(eight branches of yoga)-"Yama, Niyama, Asana, Pranayama, Pratyahara, Dharana,*

Dhyana and Samadhi" together works as a process to take us gradually in steps and stages from known to unknown to unite "me" with "other".

Patanjali's Yoga is an experiential science instructing that mind has to be controlled – yogahs-chitta-vritti-nirodhah in order to balance our physical and mental conditions. Yoga can reduce the aging process caused mainly by autointoxication. *(Alleger, I. 2007)*. To get the maximum benefits, we need to combine the practice of yogasanas, pranayama and meditation.

With inner happiness and undisturbed mind we always function better. When Body and Mind are in relaxed state we are free from nagging ailments. Modern science expresses that all existence is just *energy* exhibiting, itself in different ways and forms functioning at different levels. It's the same energy that functions in the creation of roses in *one plant* and jasmine in *another*. Basically natural evolution is a similar phenomenon.

It is same with our inner energies. Yoga is technology of upgrading, activating and refining these inner energies for highest possibilities thereby allowing access to our level of brilliance that we could never imagine ordinarily.

Music is an indispensible part of our lives. It surrounds us. It is the gift of God which has the power to communicate with everybody. It forms the basis of social communication. This is evident from the moment when a child steps into the world. We know that the basic element of music is sound. Since birth, babies use a range of sounds to communicate with their mothers. In the same way, animals also use different kinds of sound to communicate with each other. Thus, music becomes a universal language for it can easily identify with the emotions and inner feelings of the human beings. Any celebration is incomplete without music. Even in the primitive times, all the rites relating to birth, marriage, hunting, war and death were permeated with musical elements. Among the funeral songs, the women's laments and songs which men sang in praise of the dead deserved special mention. Singing and dancing were closely related and they used to generate something which was more than the original movements themselves. Today, music is an indispensable part of any function, be it a family function or a function organized any other institution. Music is the best expression of happiness. Music is an excellent motive for aesthetic contemplation. There are musicians and singers who possess the ability to become immersed in their music. Often to the point of forgetting themselves, that explains their widespread and completing appeal. Vocalist like Pandit Bhimsen Joshi, Pandit Jasraj, etc. and instrumentalists like Pandit Ravi Shankar Ustad Bismilla Khan, Ustad Zakir Hussain, etc. have given new dimensions to Indian classical music. The stage performances of such great talents completely immerses the audience into the soothing musical world and refreshes the audience. Such stage performances including the music theatre in the West have become an important from of entertainment, Music theatre is a form of entertainment that is related to opera. Music as a fine art expresses a feeling or emotion. So does literature. They are closely connected. The medium of poetry is language or words. Language comes with imagination. Different civilizations have developed different languages.

Music is one order of languages, speech is another. Language is an expression of thought. The tonal values are a part of the language. In poetry the tonal values are pronounced. Poetry is abundantly drawn upon sculpture, painting and music. According to a critic, no play can rise to its sublimes level if it is written only in prose. Prose many be a fit medium for portraying everyday routine matters, but when we deal with a situation tragic intensity, or any such matter that is saturated with a high pitched intensity of emotions, we must turn to poetry. In common parlance we often speak of the musicality of verse. This musicality, however, is different from the melody in music. It actually means certain rhythmical effects in poetry. Elizabethan poems and librettos have often been described as musical. Shakespeare's Othello has become an unforgettable musical opera by Verdi. Shakespeare's comedy Twelfth Night starts with the life, "If music be the food or love, play on…."Music is an important source of inspiration. George Brinley says that Tennyson was inspired by" a musical impulse."

So, may plays various roles in our daily lives. It has an appeal to the core of the heart of human beings. It is the sweet and soothing sounds that vibrate and create an aesthetic feeling and beauty that overcome the feelings and beauties of nature. Apart from its various roles, the role of music as a therapy in stress in indeed commendable.

References

1- Amit Chaudhary – afternoon Raag 1993.
2- Swami Prajnanda – Historical Development of Indian Music 1973.
3- Sangeet Patrika – March 2010.
4- Dr. Vasudha Kulkarni – Bhartiya Sangeet Evam Manovigyan.
5- Bhagwat Sharan Sharma – Pashchatiya Sangeet Siksha 1990.

Understanding Gharana Tradition with Special Reference to the Musical Style of the Maihar Gharana

Dr. Supriya Shah

Abstract

It is only in classical music, that the gharana system is most deep-rooted and of paramount importance as compared to any other fine art. The gharana system in the classical music tradition of India is a result of the guru-shishya parampara which was predominantly an oral tradition where knowledge was transmitted in a continuous and unbroken tradition across generations. The Maihar Gharana is of great significance amongst the gharanas of Sitar and Sarod. It is thanks to the work of one man that the style and the School of Maihar have taken shape. Ustad Allauddin Khan, the famous sarod player had been taught mainly by musicians of the School of Rampur and created a unique style. He developed and taught his own instrumental style to many disciples most of whom are world renowned musicians.

This paper delves into the various aspects of the gharana tradition and also seeks to throw light on the stylistic specialties of the Maihar Gharana.

Key Words: *Gharana, Guru-Shishya Parampara, Maihar, Laraj-kharaj, Stroke-Patterns*

INTRODUCTION

The gharana system is most deep-rooted and of paramount importance in Indian Classical Music as compared to any other fine art.

One may find different schools or traditions in different fine arts, particularly in those of music, dance, painting and sculpting. One may come across different artists in say the field of painting who are inspire by a common tradition or follow a common style. Such a group can be said to be representing a particular gharana or school. However, according to Vamanrao H. Deshpande, 'gharanas' are not 'schools' per se. "Gharanas are more sectarian in their attitude and on the whole more akin to families of blood relations because of the rather marked 'family pride' that they exhibit1[2].

DEFINITION OF GHARANA

The term 'gharana' literally means "family tradition" and denotes a "school or centre of musical culture created by instructions from teacher to pupil, sometimes by members of one family through succeeding generations. The different gharanas have distinctive characteristics in musical presentation"[2].

*Assistant Professor, Department of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University

THE GURU-SHISHYA PARAMPARA: FOUNDATION OF THE GHARANA EDIFICE

The gharana system in the classical music tradition of India is a result of the guru-shishya parampara or the teacher-disciple tradition under which the musical knowledge was passed on from the Guru to the disciple in a continuous and unbroken tradition across generations. This was predominantly an oral tradition. This system has sustained and nurtured our music and has given it continuity.

The need for such a system of imparting musical knowledge arose from the fact that the mastery of swaras and subsequently the ragas is an extremely arduous task and is something that can be achieved by a process which may take several years. Not only this, such a mastery over swaras, cannot be achieved without an ardent devotion & a fanatic zeal on the part of the disciple for his/her guru or master and the music and a steadfast and continuous practice (riyaz). The student surrenders himself completely to the master and relies completely on the guidance of his guru in the first few years.

The guru is also required to impart training to his shishya with utmost sincerity and patience.

The guru-shishya relationship in our musical tradition is unique in that it brings about in many cases, a total transformation in the shishya so that at times it is not only the guru's musical skill but even his way of thinking and way of life begins to be reflected in the shishya.

This requires a very close personal relationship between the teacher and the taught and such a close and continuous contact between the two is a precondition for such a tradition.

Total surrender, utmost reverence for the guru and extreme hard work in terms of riyaz on the part of the student and a sincere training imparted with a lot of care and patience by the guru are the foundation of this system of transfer of the musical art from one generation to the next and it is this process of imparting taleem and its acquisition that is at the root of the gharana system.

For a musical tradition to acquire its own identity as a distinct 'gharana' the pre-condition is that it should exist for at least three generations[3].

Thus, unless there is at least one able artist for each of the three generations, (the founder, his disciple and the disciples' disciple) a musical tradition cannot be afforded the status of a 'gharana'. For example, the Kirana gharana which was founded by Ustad Abdul Karim Khan had renowned disciples like Sureshbabu Mane, Savai Gandharva, Hirabai Badodekar and so on who represent the second generation of this gharana and then Gangubai Hangal, Pt. Bhimsen Joshi and Feroze Dastur, all eminent musicians represent the third generation of musicians and in fact these artists have trained and prepared many great vocalists representing the fourth generation of the gharana. Similarly, amongst the instrumental gharanas, the Maihar gharana to which I feel privileged to belong, and on which I shall be elaborating later in this paper, was founded by one of the greatest musicians of recent times – Baba Alauddin Khan who trained Pt. Ravi Shankar, Ustad Ali Akbar Khan, Annapurna Devi, Pt. Nikhil Banerjee, Sharan Rani and many others, all doyens of this gharana and

representing its second generation. These great artists have in turn trained many a great instrumentalist like my revered gurus Late Pt. Satish Chandra, Late Pt. Uma Shankar Mishra and Padma Bhushan Pt. Vishwa Mohan Bhatt, as well other stalwarts like late Pt. Gopal Krishna, Pt. Hari Prasad Chaurasia, Ustad Shamim Ahmad and several other great performers who represent the third generation of musicians belonging to this gharana.

However, absence of continuity across generations does not necessarily imply that a particular style lacks musical distinctiveness and therefore this point should not be stressed upon beyond a limit in examining the musical aspects of a style.

From the musical point of view, two important features of the gharana system are as follows[4]

(1) Each gharana has an artistic discipline of its own in addition to the discipline common to all gharanas. In musical parlance, each gharana follows a certain Kayada (set of rules).
(2) Each gharana takes its origin from the quality of voice of its founder

The second point mentioned above pertains to the gharanas of vocal music. In case of gharanas of instrumental music, each originates in the style of playing of its founder. When the word gharana is mentioned in its more familiar sociological context, what comes to the mind is a household with its own code of conduct, etiquette, and a certain culture. Each member of that household is expected to conform to a certain type of way of life, and where such a restraint on behaviour or a code of conduct is absent, the household is not socially well accepted. In the context of music, a gharana denotes musical groups of teacher and students that have their own set of traditions, practices, and rules which they follow in their art and even in their day to day lives.

From the above discussion on gharana it is clear that all musicians belonging to a particular gharana should have the distinct stamp of that gharana in their musical renditions. This means that when a musician is giving a presentation, the distinctive features of the style of music of that gharana should be unmistakably reflected in it. Due to this rigorous discipline the recital immediately indicates to the trained ear the gharana to which a musician belongs. This can be easily recognized by the discerning listeners.

However, it is important to note at this point that this does not imply that a musician should be a mirror image of his guru. Every musician is supposed to develop the style he has acquired from his guru and enrich it with his own creative ability. Thus, a synthesis of what is learnt from the guru and what is independently created is required without compromising on the distinct features which set one gharana apart from the others.

A gharana can hope to perpetuate itself only if every artist belonging to it assimilates new musical ideas while not compromising the basic tradition. There is a need for a combination of innovation and tradition. This provides a touch of dynamism to the gharana which is at the risk of losing its sparkle and becoming stagnant if such a synthesis of tradition and new creation is not undertaken.

Despite the immense significance of the gharana system in context of perpetuation of our musical tradition,

recent trends have shown an alarming decline in its status. In the fast-moving materialistic age of electronics, in a boundary less world the life is becoming more mechanical,and the lifestyles have been undergoing profound changes. Cultural drift and crass populism as opposed to art has placed huge demands on the musicians the teacher-student relationship has also suffered a setback.

Many an institution has come up where music is taught like other academic subjects. Teachers belonging to different gharanas often teach students who come to these institutes to earn degrees to qualify them for securing jobs. However, this often leads to confusion on part of the students who are taught a multitude of styles and techniques and as a result can hardly master any one style.

Students these days also do not have the patience and perseverance to spend long hours in practice and training at the guru's feet. This is also becoming increasingly impossible given the demands of today's fast paced life. The students therefore try to speed up their training by listening to audios of different artists rather than learning the proper technique under one guru. This often leads to a compromising of the purity of ragas and the correctness of technique, gradual decline in the quality of performance and at the end, most unfortunately, it is our musical tradition that suffers.

MAIHAR GHARANA

Maihar is a small town in central India. It was here that Ustad Allauddin Khan, (fondly remembered as Baba by one and all), one of the greatest musicians and composers of the last century and the founder of the Maihar gharana spent his life in the service of the great art of music. The Maihar gharana is a relatively new instrumental gharana the beginnings of which can be found in the late 19th early 20th century, but it has had tremendous influence on the Hindustani instrumental music in the last fifty years. It is thanks to the work of one man that the style and the School of Maihar have taken shape. Allauddin Khan, the famous sarod player had been taught mainly by musicians of the School of Rampur and created a unique style. He developed and taught his musical style to many disciples most of whom are world renowned musicians.

SALIENT FEATURES OF THE MUSIC OF MAIHAR GHARANA[5]

The musicians of Maihar gharana lay very great emphasis on the purity of the ragas. Played on the classical structure of the raga, but with a preference for composite ragas, this music consists of a first part of pure improvisation, the alap, then of one or two compositions accompanied by the tabla. In the second part the musicians develop various forms of improvisation on the notes of the composition and on the tala (the division of the rhythm cycle).

Ustad Ali Akbar Khan prefers a leisurely alaap and a very selective use of ornamentation while playing the sarod. In this, he evokes his father's presentation. He would sometimes commence a gat with a sam rather than the traditional seventh or twelfth beats. Ustad Ali Akbar Khan has a distinctly instrumental style. Pandit Ravi Shankar would tune his sitar so that the range is far wider than that of other sitar players but at a lower pitch. The resonance of his sitar-playing is reminiscent of the notes of the veena. There is a further difference in the sound quality of notes

in his playing because all the strings are played almost equally (as opposed to the stress on the baj string by the Imdadkhani gharana). This trait brings Pandit Ravi Shankar's sitar-playing close to sarod playing (where all four melody strings are played). Ornamentation such as gamak, sparsh, zamzama is frequent leading to a staccato effect. The ati-kharaj string was invented by him.

Another feature of the music of the Maihar gharana is that the improvisation is very systematic. Thus, while improvising, care is taken not only to preserve the purity of the raga, so that its essence is easily conveyed to the listener, but also to develop the raga in a very organized way. The raga is unfolded gradually starting with a detailed alaap, madhya ang, jod-alaap and sometimes ending with the jhala After this fourfold alaap the musician goes on to present the vilambit gat and drut gat and finally concludes with the jhala.

It follows from this that the Maihar gharana musicians play in the dhrupad ang which is characterized by an elaborate fourfold alaap in the beginning of the performance in order to present the raga in its barest form and then proceeding to the slow and fast compositions and ending with the fast jhala.

Improvisation within the gats (gat-vistar) is also done in a very systematic and relaxed manner so that the various nuances of the raga are revealed very beautifully and at the same time the music does not appear to be scattered. One can therefore say that while on the one hand there is unlimited scope for improvisation and beautification, there is on the other hand compactness in the musical renditions of the Maihar gharana artists.

While there is no limit to their creative imagination it is always ensured that there is no compromise on the correctness of the raga. A shishya is supposed to learn the rigid grammar of music while undergoing training.

Maihar gharana is probably the only gharana in which a lot of ragas from the South Indian musical tradition have been assimilated into the North Indian repertoire of Ragas. Some of These ragas which have become very popular are Nat Bahirav, Hansdhwani, Charukeshi and so on.

Another noteworthy feature of the Maihar gharana is that the technique of playing any instrument is very highly developed and it includes all kinds of ornamentations such as the meend, gamak, khatka, murki, soot, ghasit, krintan, jamjama,sparsh and so on.

The taans played are phirat, dirdir and gamak style taans.

Another distinguishing feature of this gharana is that while elaboration is done in all the three octaves, lower, middle and higher (mandra, madhya and tar) and at times ati- mandra and ati- tar as well, the importance given to the mandra (lower) and ati-mandra octaves in this gharana is much more than in any other gharana. No other school of music gives so much importance to the bass register as does the Maihar gharana. In fact, the laraj-kharaj strings which one finds in the sitars of the Maihar gharana are used for developing the ragas in the lower registers. Thus, not only does one come across alaap being played by a particular musician, but one also gets to hear tanas which sometimes end on the kharaj. All the musicians belonging to this gharana have made modifications in their

respective instruments to enlarge the scope of the instrument and to include the bass register.

The compositions are very well knit internally so that the sthayi-antarâ twosome is preserved. The inner flow and continuity of the composition is given a lot of importance and care is taken to strike the right balance between melody and rhythm so that the compositions not only represent the real character and the mood of the raga but are also very beautifully entwined with the tala.

The artists of Maihar gharana lay great stress on the correctness of right-hand strokes and stroke patterns because the strokes help in bringing out the rhythmic aspect. Maihar gharana artists also play compositions set to different talas and sometimes very complicated rhythmic cycles like 5 ½, 9 ½, 10 ½ and so on as well. There are specific strokes for each tala and playing the strokes correctly helps the musician to freely move about within the composition without having to worry about going wrong. Strokes also help in establishing the flow and pace of the composition and thereby also have a role to play in the gats ability to bring out the character and essence of the raga because the pace and flow of the gat also help in expressing the mood of the raga.

The tabla is also considered very important in this gharana and the tabla artist is given an equal opportunity as the main artist to improvise during a performance.

The Maihar gharana is one of the few gharanas wherein the transition from one generation to the other has taken place not necessarily through the family members alone and has been in fact more through the guru-shishya parampara.

CONCLUSION

To conclude, the Gharana boundaries in today's context may seem blurred. However, the importance of learning the stylistic nuances of music and technique from a Guru representing a particular gharana is still paramount. Amongst the gharnas of Sitar and Sarod, the Maihar Gharana holds a very high status and has made huge contribution to the field of music. The artists of Maihar gharana can be appreciated for their ability to bring about a melodious unfolding of the richness of Indian classical Ragas and skilfully blending it with rhythm with the help of a highly developed imagination. Patterns and fast moving Taans employing Meend and Gamak and other techniques, as also complex Tantrakaris and Layakaris to match the excellence of the Gayaki Ang in a systematic revelation to cater the listeners with scintillating music which transports them into heights of ecstasy.

References

1. Indian Musical Traditions: An Aesthetic Study of the Gharanas in Hindustani Music, Deshpande, V.H,1987, Page 10, Popular Prakashan, Bombay
2. My Music My Life,Shankar, R., 1995: Page 155, Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
3. Indian Musical Traditions: An Aesthetic Study of the Gharanas in Hindustani Music, Deshpande, V.H,1987, Page 12, Popular Prakashan, Bombay
4. Indian Musical Traditions : An Aesthetic Study of the Gharanas in Hindustani Music, Deshpande, V.H,1987, Page 13, Popular Prakashan, Bombay
5. Personal communication with Late Pt. Uma Shankar Mishra and Dr. Suneera Kasliwal January, 2003, at Triveni Kala Sangam, Delhi

Theatre as the Voice of 'Voiceless' (An In-Depth Analysis of Mahesh Dattani's *Seven Steps Around the Fire)*

Dr. Neelam Bhardwaj

Abstract:

Mahesh Dattani is predominantly wrestling with the question of marginalized community. There isn't generally any classification of edges which doesn't get room in Dattani's oeuvre. The plight of marginalized communities in India has been drawn to perfection in most of his plays to present the ever- present threat of a clash where the marginalized community is often at the receiving end of the odium and hatred of the majority. This paper traverses the marginality, as reflected in Mahesh Dattani's radio play ***Seven Steps Around the Fire,*** *is initiated on the binary opposition of centre and periphery characters who are at fringe and try to engross a marginal or borderline position in Indian society. Being a 'Hijra', Kamala is denied justice materially and even biologically. The play is an example of Dattani's preoccupation with bringing to the centre stage what is referred to as 'voiceless' issues that remain on the periphery of social concerns.*

Keywords*: Theatre, Postmodernism, Marginalisation, Gender, Identity.*

We are living in 21st century - the age of technology. It is the phase in which we are gradually shifting from feudal agricultural society to modern industrial society-the transitional period in which every human being is running after materialistic gains and appraisals. History reveals that a transitional period is a period of great turbulence and turmoil as is clear from the history of Europe from 17th to 19th century (a period of transition in Europe). During this period there was great disturbance, wars, social churning, chaos, revolutions, intellectual commotion etc. in that continent. It was only after passing through this fire that modern society took shape there. India is presently passing through the same phase – a painful period full of confusions, agonized and aimless fluxes, apprehensions, doubts, fears and disturbances. The impact of this transition is being embossed on everyone, especially the marginalised. Being a creative artist, Dattani's approach and achievements are more diagnostic than therapeutic. His concern is what he thinks to be the erring attitudes and practices of Indian

* Associate Professor, P.G. Dept. of English, S.C.D. Govt. College, Ludhiana, Punjab, India, email: neelambhardwaj25@gmail.com

mainstream society vis-a-vis the margins or 'other'. But, as they say, right diagnosis is half the cure. His social activism is innovative in the theoretical sense.

Mahesh Dattani is rightly hailed as India's most authentic voice in the theatre. By fusingthe elements of pantomime, dance and song,he succeeds brilliantly in creating powerfulauditoryand visual images thatmakehisplaysvitallytheatrical. The plays of Dattani havebeen very successful on stageandarequite popularwith themiddle classaudience. Mahesh Dattani is the first English languageplay wright towin the Sahitya Akademi award for his *Final Solution and other Plays* in 1998. Mahesh Dattani has a strong passion for drama and the theatrical art. He has to his credit several full length plays, and most charismatic quality of his plays is the method he has adopted to make his plays stage worthy. He makes every possible effort to make his plays artistically meaningful and simultaneously entertaining to an audience that is accustomed to realistic effects of cinema and modern theatre. Dattani, as a free thinker, incorporates various modern techniques and styles of production that stir his dramatic requirements. Thus he presents to the modern day multi-layered Indian life and sensibility

Dattani's plays, in addition to being engrossingentertainmentwith satisfying plotdynamics, have substantial thematic content to keep. Dattani plays have a social purpose and theye mbodycrucialconcerns of Indian society. Ranging from many thorny issuesto majorpersistent taboos dealing with social,political and religious problems of contemporary society, the themes of his stage plays, such as *Where There's Will* (1988), *Dance Like a Man* (1989), *Tara* (1990), *Bravely Fought the Queen* (1991), *On a Muggy Nightin Bombay*(1998), *Seven Steps Around the Fire* (1999), *Thirty Days in September* (2001), as well as his radio dramas , have been movingly depictedin the twists and turnsof the plot. His plays are marked by social realism, the opulence of his scenes,situations and characters, his experimentations in technique, improvisation of his stagecraft and them as tery of hisdialogue. His unusual themes, technical experimentatio nandabove all his brilliant use of a variety of spoken English nevertried by any playwright on the English languagestage before- all these reasons make Dattaniand Bangalore, the centerofaction asfaras Indian Dramain English isconcerned.

Mahesh Dattani writes of the contemporary life and scene, and his characters are endowed with modern sensibilities. He takes his characters from the urban cosmopolitan setting of modern middle class in India. They are ordinary human beings, who reveal the crisis, meaninglessness, confusion, frustration, disintegration, bickering relationship and disillusionment of the twenty-first century.

Mahesh Dattani is certainly one of the fewest playwrights in India who have treated serious themes of transgenderism and homosexuality with considerable boldness and sincerity. These issues which are still considered taboo in the Indian society have been given prime treatment in his powerful plays - *Seven Steps Around the Fire, On a Muggy Night in Mumbai, Do the Needful,Bravely Fought the Queen and Night Queen.* The transsexuals and the homosexuals have been treated as the marginalised people who do not conform to the norms of the mainstream gender identity and sexuality.

In India, the marginalisation of such people further puts the issues of gay identity and transgender suppression under socio-political repression. Some of Dattani's plays deal with the treatment of the marginalized gender i.e. females, which is considered as the 'other' in the predominantly patriarchal Indian societies.

A peculiar trait of Dattani's art of characterisation is the creation of 'other' characters. These characters do not belong to either of the prototypes gender,but demand a space of their own in terms of sex and gender. They are gays,lesbians, bisexuals and eunuchs. They live dual life and to understand them thoroughly one has to peep into their psyche. The characters such as Alpesh, Trilok, Mali in, *Do the Needful*, Nitin, Praful and auto rickshaw driver in *Barvely Fought the Queen*, Kamlesh Ed/Prakash, Ranjit, Bunny, Sharad and the Guard in, *On a Maggi Night in Mumbai*, are homosexual. Anarkali, Champa, Kamala are eunuch characters in *Seven Steps Around the Fire*. It is an acknowledged fact that Dattani's characters play a bold commentary on social realism of his times but what is more appreciable is his craft in depicting such queer characters, making them boldly articulate their sexuality and win sympathy of an audience that is strongly prejudiced against them.

Dattani's radio play *Seven Steps Around the Fire*, broadcast for BBC Radio 4 on 9 July 1999 and also staged in 2004, deals with the issue of 'Hijra'identity in India and its crisis when it confronts the mainstream society. The play runs around Uma Rao, a research scholar who in her way to research on gender-based power implications, comes across the murder case of a beautiful 'Hijra'Kamala. Her investigations unveil a number of realities of 'Hijra' lives in the Indian society. Uma is the wife of Suresh Rao, the Superintendent of Police and the daughter-in-law of the Deputy Commissioner. She uses this influence in her research work and manages to talk to a 'Hijra'prisoner Anarkali who has been arrested as an accused of the murder. Anarkali, at first, refuses to talk to her but eventually pleads her to bail her out from the prison. She asserts that she did not kill Kamala because she loved her as her sister. Uma wants to help Anarkali but finds herself more helpless than her. She suggests Anarkali that she should tell the truth to her husband but Anarkali knows that this would put her into more trouble than the present one. So, she pleads for mercy on the part of Uma for letting her get out from jail so that she will run away to somewhere else. She clarifies that if she speaks the truth, they (murderers of Kamala) will kill her.

In spite of being aware of the killer of Kamala, Anarkali, however, doesn't set out to talk reality. She has confidence neither in police nor on Uma.If Uma wants to help her, she has to secretively arrange some money for her bail. Uma finds herself involved in this investigation now.The police, including Suresh Rao, is all basic about the 'Hijras' feeling that Kamala's homicide is only an aftereffect of some shared battle between the 'Hijras'. Both policeand SureshRao areapprehensive that Kamala might be murdered in some mutual interaction between the 'Hijras'. Constable Munswamy accompanies Uma in her research work and gives her some necessary information about the case. Kamala was burnt and drowned into a

pond near a temple. Her body was found by some passer-by four days after her death. Uma grows doubtful of the statements given by 'Hijras'and in the due course her interest in the gross truth behind the death of Kamala increases. She takes some money from her father saying that she wants to buy some gift for the Minister's son's wedding and goes to meet Champa, the 'Hijra'guru and Anarkali's friend. Here, she sees Salim about whom Anarkali had mentioned to her in prison:

ANARKALI. She was beautiful. Very beautiful... That's why Salim's wife put fire to her beautiful skin and burned her to the other world. (CP p. 15)

Salim is looking for some photo which Kamala had. Champa makes Uma aware that Salim is the bouncer of the Minister. He used to come for Kamala every day. He wants a photograph of Kamala and him together for which he drops in every now and then. Uma searches Kamala's trunk but finds no such photograph. She understands that Champa is beguiling her.She argues Champa and blames that she is sceptical whether she needed Kamala dead. Anarkali was the suitable candidate next to Kamala whom Champa has trapped in the murder case. Champa does not want to argue with her and asks her to leave. She is certain about her enormous affection for Kamala as she considers her his daughter. She directs Uma to move out of her house as Uma has absolutely no idea that Kamala was the apple of their eyes.Uma understands that it is no way possible for her to win the trust of 'Hijras'. Uma hasnow left with no option but to pursue herresearch without the help of 'Hijras'on her own.

Her investigation takes her to the Minister's house where she meets Salim. Here again, she takes Munswamy with her who is very much afraid of visiting the Minister's house during his duty hours. While Uma urges Salim to let her talk to his wife, the Minister intrudes in quite unexpectedly. Uma talks to the Minister about the case and Salim's involvement in it. The Minister's reaction to the case is very calm, he too speaks the same language as that of her husband and Munswamy. The meeting is abruptly called off when the Minister's son Subbu comes down. Subbu is reluctant to go ahead with his marriage and seems rather disturbed because of this. Uma wants to talk to him further but the Minister interrupts in between and asks Uma to leave.

When Uma comes to know that Anarkali has been released from the jail she immediately goes to see her. She finds her in a wretched state-brutally beaten and with a broken nose. Anarkali asks Uma not to put her position in danger because of them:

ANARKALI. One'Hijra'less in this world does not matter to your husband.

ANARKALI. Don't put your position in danger. Go home.

CHAMPA. Madam, do as she says. Go home to your husband. (CP p.35)

The 'Hijras'promise Uma to meet her at the Minister's son'swedding and surprisingly they do come after the ceremony is over. Uma persuades the Minister to let them perform as a good omen for the couple. The 'Hijras'move before the newlyweds i.e. Subbu and his better half. During the couple dance, Subbu begins feeling uncomfortable and

acts in an insane way. He grabs Suresh's gun and makes an endeavour to shoot himself. All at once, Anarkali draws close to him and gives him a photo. It is the photo which Salim was looking for a long time. The concerned photograph was clicked by Subbu and Kamala immediately after their marriage was solemnised in a temple. After seeing the photograph, Subbu starts crying and in this fit of anxiety shoots himself to death. With this, f Kamala's death mystery turns clear.When Uma asks Anarkali about why she did not tell her the truth, her answer is:

ANARKALI. Would you have believed me?... (CP p. 41)

She knew that Kamala was killed by the Minister's men but also knew that her voice would not be heard by anyone. Uma is quite confident when she exhorts that everyone of 'Hijra' community knows the murderer of Kamala. But being marginalised, nobody dares to speak. Not only this, the case was also closed and there was no report of the case in the newspapers too:

UMA. Champa was right. The police made no arrests. Subbu's suicide was written off as an accident. The photograph was destroyed… (CP p. 42)

The statement "They have no voice" sums up the play in a nutshell and thereby hints at the insignificance of 'Hijras'in the mainstream society. 'Hijras' are the marginalised inhabitants of the society who have no stand to claim their existence to the world. They are insulted, cursed, tortured, beaten and put to all kinds of extortions like stray animals. All the misfortune met to Kamala because she was a beautiful Hijra.

For 'Hijras', relationships are of great importance than power and money. Their mother-sister relationships may be seen as objects of ridicule by people like Suresh Rao and Munswamy but they mean a lot to them. Uma makes Anarkali her sister and goes to every extent in her attempts to save her. At once, this investigation puts her married life in trouble too when she goes against the reputation of her family and personally interacts with the 'Hijras'. Anarkali also keeps her sister relationship with Uma by asking Uma not to put her position in danger for them. She also gives her a locket with the blessings that she would become a mother soon and for this she does not ask for any money from her. She loved Kamala so much that in order to save her from the cruel hands of the society, she fought with her every day. She must have foreseen the serious results of her alliance with Subbu at its very beginning and so she made every attempt to keep Kamala away from Subbu. Although Kamala was going to become the next 'Hijra'guru after Champa and was thus a hindrance to Anarkali's way to the power position, Anarkali did not let her ambitions tamper her love-bound strong loyalty with Kamala. She is a far better human being than the Minister who cheats his own son and becomes the cause of his suicide. In order to save his reputation and avoid any embarrassing situation in the society, he kills his son's love thus making him an insane. He forces Subbu to marry a girl of his choice and hopes everything will be fine after his marriage. He tortures the 'Hijras' through Salim in order to get the only proof of Subbu's marriage. Even after losing his only son in the end, he does not realise his guilt and hushes up the

matter using his influence. Suresh Rao, who is demonstrated a cherishing, mindful and concerned spouse, has no an incentive for his significant other's difficult work and battle in offering equity to the 'Hijras'. Although Uma's husband, Suresh Rao, is described as an adoring, mindful and concerned person, has no recognition for his wife's endeavours in the direction of providing rights and justice for the 'Hijras'. He sells himself to the minister by destroying the evidences of the murder and keeping silence over his guilt.

In this way, the play touches some of the relevant issues of present Indian society- plight of 'Hijras'as the marginalised section of Indian society, class-gender based violence and its aftermaths. Being the people with ambiguous gender and sexual identity, 'Hijras'are taken as the objects of awe and disgust. Their social status in the society is still under questionas even being the minority community of India, they are not considered as a part of it. When Uma visits Champa, Champa makes a sorry figure and reuses anything to discuss as she thinks that Uma also is from that 'superior' society. Champa's question to Uma clearly indicates that 'Hijras'urge for a respectable recognition in the society.

The play is written keeping the linage of detective serial. Uma, a research scholar in Sociology, purposely embraced the topic of investigation 'The murder of Kamala, a eunuch'Inside the text of the play, Dattani attempts to uncover the situation of eunuchs in Indian culture. He asserts through Uma as his mouthpiece. Uma is of the opinion that there are transgender everywhere on the world, and India is no special case.This research only intends to highlight their due place in Indian society. They are seen as marginalised although they hanker after love and family throughout their lives.

As the examination continues, the dramatic tension brews on quick succession of events reproducing suspense and acknowledgment of the predicament of 'Hijras' in their social surroundings. Dattani uses a photograph as a tool tocreate suspense which is eventually disclosed. As a result,many hush up secrets are revealed-Kamala and Subbu's marriage, Minister's involvement in Kamala's murder and silence of'Hijras' because of their fear of being killed by the minister's men.

The play also presents some emotional situations that throw light on the condition of women in a patriarchal set up.The conversations betweenUma and Anarkali, in the police station, are suggestive of her position as female in her patriarchal family. Before this research, she was just the wife of Suresh Rao, the superintendent of Police and the daughter-in-law of the Deputy Commissioner of the city. Eventually, she explores many new relationships and discovers her identity too. Now she becomes Anarkali's sister, a socialist and a responsible citizen during the investigation of the case. She feels a sigh of relief that she has made herself freefrom the blame of her mom. Furthermore, by doing so,her infertile life will be fruitful by assisting the 'Hijras'in getting equity for Kamala.

The serious tone of the play is subsided by the element of comic to some level. Anarkali's conversation with Munswamy and Munswamy's uneasiness at Uma's bold attempts create humour in the play. Dattani also uses some

innovative techniques like thoughts and voice-over to present his mind to the listeners. Uma's rumination about the origin of 'Hijras' and their status in the society is presented through her thoughts. Also, her reactions to what Munswamy asserts of the 'Hijras'are depicted through her thoughts when she ruminates that no one appears to know anything about them. They are not aware of their significance. She questions if they'Hijras' resulted in these present circumstances of the nation with Islam, or are they part of our magnificent Hindu tradition? She says:

UMA. (thought). Is it true? Could it be true what my mother used to say about them? (CP p. 7)

From the view point of traditional element, the characters in Dattani's plays resemble the everyday human beings that we encounter in social plays of Sanskrit theatre such as *Prakarana,Prahasana* and *Bhama*. A faint streak of the classical 'Vidhushak' character may be noted in the character of Muniswamy, who plays the constable's role in *Seven Steps Around the Fire*, with gesticulation and witty remarks he provides some relief to a serious murder-mystery plot. He can be spotted accompanying and helping Uma Rao in her search to track down the real culprit behindKamala's murder. He resembles the classical clown, when he cautions Uma Rao, about the dangers involved in the chase and expresses his genuine concern for her safety and wellbeing. Thus, Dattani gives a fresh lease of life to the tradition of Indian drama by dexterously delineating male, female and 'other' characters from all walks of life that inhabit the modern Indian milieu.

To sum up, some ticklish and soul-searching questions are put by Mahesh Dattani in his radio play *Seven Steps Around the Fire* after a thorough analysis of the status of the marginalized communities in India ('Hijras' and women) and the socio-cultural paradigms:

- Is the minority always supposed to be in the wrong?
- Is it always subjected to oppression?
- Is the majority always right?

Dattani may not have answers to all these questions but he has stirred us to ponder over these questions and find out some possible or tentative, if not the 'Final Solutions'. Dattani's plea is for reason and mutual accommodation. He is not siding with either the majority or the minority.

References:

1. Aggarwal, Beena. (2011). Mahesh Dattani's Plays: A New Horizon in Indian Theatre. Jaipur: Book Enclave, p.34.
2. Chaudhuri, Asha Kuthari. (2005). Mahesh Dattani. New Delhi: Foundation Books Pvt. Ltd., p.105.
3. Das, Bijay Kumar. (2008). Form and Meaning in Mahesh Dattani's Plays. New Delhi: Atlantic, p. 17.
4. Dattani, Mahesh. (2005). "Seven Steps Around the Fire", *Collected Plays*I.New Delhi: Penguin Books.
5. George, Miruna. "Constructing the Self and the Other: Seven Steps Around the Fire and Bravely Fought the Queen." Mahesh Dattani's Plays: Critical Perspective Ed. AngelieMultani. New Delhi: Pencraft International, 2007. p.147.
6. Hawthorn, Jeremy. (2000). *A Glossary of Contemporary Literary Theory*. Fourth Edition. Oxford University Press.
7. Sengupta, Ashis.(2000). "Contemporary Indian Theatre and its Relevance", *Journal of Indian Writing in English*. India: Selected Periodical Publication.

The message of World Peace through Rabindra Sangeet – A Study

Dr. Rajesh G. Kelkar*
Bhumika Trivedi**

ABSTRACT

This study will present a comprehensive look at different modes of Rabindra Sangeet and its larger reverberation in world peace. The purpose is to traverse the musical calligraphy of cultures through the spiritual significance of Rabindra Sangeet by Guru Rabindranath Tagore. The objective of the research is to explore different parjaays of Rabindra Sangeet with peace at different levels: peace at the global level, peace within society, peace between human beings, peace with nature and peace within self.Rabindra Sangeet can transcend communities, cultures, and creeds. It also continues to inspire spiritual expression as sound reflects and affects faith and values. Beliefs and perceptions will transcend the very nature of music and lyrics. spirituality is an essential part of who we are, and it forms the framework of our world. Community, culture, and creed all offer insights into the connection between music and spirituality. Rabindra Sangeet cultivates community, as sound creates communication and unity. Cultivation is a constant process that develops, encourages, and nurtures. Rabindra Sangeet assists in creating culture, characterized by a community of people, representing their customs, ethnicity, history, philosophy, and traditions. The language and speech of spirituality is as varied as the sounds of the Earth. It presents cultures with a refreshed relevance in people's lives, and provides a way for individuals to relate to other cultures. Exploring the musical calligraphy of cultures throughout the world is a wonderful way to explore the spiritual significance of Rabindra Sangeet.

Keywords:

World Peace, spirituality, different parjaays in Rabindra sangeet, faith and values.

Introduction

Guru Rabindranath Tagore is one of the best poet in the world. As a teenager, he wrote "Vanusinghe's verses" following the footsteps of Vaishnava poets, and devote himself to literary work till the last day of his life. His innumerable literary creations are an invaluable resource of India and the world. Talent is

*Dean of "Faculty of performing arts" and HOD of Department of music (vocal), Vadodara (Gujarat)

**Research Scholar, Faculty of Performing arts.

perhaps a formidable force that can't be stopped by a bolt that makes its own way on its own. That is why we see so many great thinkers in this world who have worldly nobility.

Rabindra sangeet makes the moment of the mind smootherand the mind suddenly becomes overwhelmed with an unknown joy. Behind the creation of music, the poet has his deep personal thoughts and a deep affection for the world and nature. This idea brings the poet to his great music world. The poet has united man and nature and the scope of love is there. His love is not isolated from nature.(Dutta)

In the world of music Guru Rabindranath Tagore is like a great sage. He has written numerous Essays, science fiction, novels, short stories, poems, plays, dance plays. His music is popular today and is known as "Rabindra Sangeet". The most amazing aspect of Rabindra sangeet is the depth of the lyrics and theabstraction in most of the Tagore songs. we call Rabindranath Tagore as 'nibhrito pran er debota' ie God for the lonely soul, friend of the lonely soul. Rabindra sangeet is also very near to spirituality as its one of the important prajay is "Pooja Parjaay". List of different parjaays inTagore's songs are as follows: - (Geetabitan.com)

- Puja (21 upa–parjaays)
- Swadesh
- Prem (2 upa-parjaay)
- Prakriti (7 upa-parjaay)
- Bichitro
- Anushthanik
- Geetinatya O Nrityanatya (6 upa-prajaay)
- Bhanusingha Thakurer Padabali
- Natyageeti
- Jatiya Sangeet
- Puja O Prarthana
- Anushthanik sangeet
- Prem O Prakriti
- Nrityanatya Maayar Khela

Influence of western music in Rabindra Sangeet

In the musical climate in which Rabindranath Tagore became a man in his childhood, both eastern and the western music genres flowed equally. Therefore, just as he took the help of country music to increase his musical repertoire, he has tried to enrich the Bengali music by preserving his individuality by following the music of west where he has been attracted.

If we understand the creation of bengali songs following the western song created by the poet, it can be seen that these songs were written in the early life of the poet. So, the songs written at that time were influenced by western tunes. In particular, the lyric drama "Kalmrigaya" and "Balmiki Pratibhaya" are rich in the songs of the forest goddesses and the many songs of Kalmrigaya arerich in western, scotch, Iris and English melodies. His poetry is able to take people far above this world, one of the purest and most beautiful people. So, the main purpose of his song is to express the juice through the melody. As a result, rhythm is essential in this music, but the melody of music was considered to be the first and main preoccupation. Since, Rabindra Sangeet is a combination of melody, the place of rhythm goes there with the rhythm of the poem. According to Rabindranath Tagore "The work of rhythm in the poetry is the work of rhythm in song. Therefore, the rhythm is the same as the rhythm in the poem, the song will follow the same rules."Tagore's ideology

and aesthetics wasan excellent blend of Indian classical, Bengali and Western musical characteristics with a superior writing pattern. (Herath)

The solitary path to spirituality through Rabindra Sangeet

In the warm presence of the Maharishi, Rabindranath Tagore was rejuvenated in a spiritual atmosphere. Therefore, there is a direct and indirect spiritual effect in his entire poetry and in the pursuit of life. After all, he was not only a poet, he was a creator, he was a sage. The influence of Vedas-Upanishads, Ramayana, Mahabharata etc. played a revolutionary role in shaping his mind. The spiritual realization of Rabindranath Tagore is reflected in his literary work, especially in music. He is the bearer and carrier of the eternal truth of India-soul and the spiritual meditative concept of the sage of India and his mature spiritual thought and intense feeling is a signature in his creation of Rabindra sangeet. (Ghosh)

Pooja means offering. Hence all these songs are directed towards the Almighty.There are six hundred and seventeen songs under puja parjaay. **All these songs are further sub-classified or sub-classes into twenty-one upa-parjaays.** They are Gaan, Bondhu, Prarthana, Biraha, Saadhana O Sankalpa, Dukkha, Aashwas, Antarmukhe, Aatmabodhan, Jaagoron, Nihshanshay, Sadhak, Utsab, Aanondo, Bishwa, Bibidha, Sundar, Baul, Poth, Shesh and Porinoy.

The concept of God, the Almighty, as well as Tagore's quintessential celebration of spirituality is expressed with new, enriched dimensions, meanings and nuances in all the lyrics of his songs in the *'Pooja parjaay'* of Geetabitan. God, his eternal playmate, his beloved and friend and his dear confidante, is a mystical, inspirational entity with whom he celebrates his overflowing love, while also trudging the path of natural oneness with the divine.

Ritual and tradition are also tightly tuned to musical expressions in culture. In this sense, Rabindra sangeet shapes culture. Culture cannot be owned by any individual; culture is collectively shared. Culture is the meeting point for many core values, where people and nations are united by the human spirit. Rabindra sangeet is one way we can record and reflect the history of humanity. Culture is the flavour that spices our recordings and reflections. Cultures have received a spiritual inheritance by adopting music throughout the generations, and cherished their expressions of musical styles identified by their nationhood. Rabindra sangeet can define and identify the sound identity of a culture. It points to the ways in which different faith communities respond to their creeds. Understanding creeds is crucial as religious beliefs will always affect the reality of people's lives and thoughts concerning music. The spiritual climate of the world is governed by individual beliefs. Faith is foundational to any creed held dearly in the hearts and minds of people. Faith frameworks have a spiritual territory observed in places of spiritual significance. For example, places of worship, whether church, synagogue, or temple have spiritual significance to the faith framework they represent. The existence of Rabindra sangeet and spirituality enables our collective consciousness to become increasing more socially and spiritually attuned.

Rabindra sangeet can also be described as being blessed by an abundance of bliss, bringing a state of spiritual joy. Experiencing its songs delivers a delightful feeling of extraordinary happiness and excitement. An ecstatic moment of pure elation can create spiritual fulfilment as the sound of Rabindra sangeet serenades our soul. This euphoric feeling is a complete surrendering of the soul. It sings lullabies that surround us. The sound and sensation are one and have the ability to take us to new heights where the spirit soars. It also shares whispers while it ministers to our spirit in these powerful moments of peaceful solitude.

Something spiritual happens when you download a song into your spirit. Experiencing ecstasy tastes the sweet nectar of spiritual intoxication. Rabindra sangeet is a method of worship. Worship is a state of spirit. Worship begins in the heart and creates a heart connection. Worship is a key to experiencing ecstasy. Ecstasy embraces bliss. It expresses audible emotion and paints a picture evoking an extensive range of human emotions. It is a collective and emotive expression of the heart, body, soul, and mind. Your body knows the music that you love, your mind knows the knowledge that you love, and your spirit knows the values that you love. Peace, love, and unity through body, mind, and soul is a powerful mix. Emotional expressions are distinct from spiritual experiences, being powerful energies delivered through anger, crying, laughter, and love. A spiritual experience is like a fountain of music sourced from the living water well of the soul. Emotional expressions pass through life, whereas spiritual experiences are profound to life. Spiritual songs can stir our soul to consider eternity and everlasting love. Spirituality can inspire lyrics which have the power to establish themselves as spiritual values in daily living. Lyrics are emotive poetry. Only then can we truly taste the exquisite essence of song with spirit, experienced and expressed as one. The effect is a purely spiritual sound, delivering a supernatural delight.

The new spirituality retains the old magic of the Sufi mystics, the Sikh gurus and Sri Chaitanya, that is, the eternal emotion, love. In a way, Tagore's Gitanjali is also spiritual poetry within its mystic form, as he has identified the Divine in the material universe, the Divine whose love would have been meaningless without the human individual. (Ghosal)

World peace through Rabindra Sangeet

Rabindranath Tagore firmly believe that unless large and powerful nations, aided by their own superiority and vast technological advancement, their desire for territorial expansion, control over smaller nationswould cease, world peace could never be achieved. According to the poet, peace can be achieved only when diverse castes and nations develop in their own distinct characteristics. Be free, while all will be connected through the bonds of love to the stem of humanity. He firmly believed that world peace could be achieved only when both East and West met on an equal basis and of equal fellowship. Where knowledge flows in two streams – from the East and from the West and recognized unity of truth. (Kundu)

Rabindra Sangeet is efficient for improving happiness, peace, health and concentration. It evokes the mood of

Individual contemplation of a universal pathos and seeks the resolution of the problem of human alienation in philosophical/spiritual fulfilment through the process of travelling from sound to silence, from loneliness to harmony, from restlessness to peace. Therefore, unity become one. It is a essential sense of human loneliness that serves as the main motive of Tagore's myriad of songs on that is Rabindra Sangeet. (Dasthakur)

Rabindra Sangeet calms the mood helping to bring a calm feeling. The filth of daily life washes away the blackness of the mind and gives the mind an indescribable innocent aesthetic world. The unspoken irritation of the mind can only be alleviated through Rabindra Sangeet. Because, it is a special art emanating from the deepest province of the mind, i.e. the language of the deepest feelings of the mind in music.

Rabindra Sangeet includes songs composed on the occasion of nature, love of country, puja and various ceremonies, as well as innumerable songs suitable for the establishments of the essence of poetry and drama. Rabindra sangeet also spread the message of peace all over the world with the help of its different parjaays mainly puja Parjaay. Rabindranath Tagore realized this divine power of music and added it into teaching of life and the formation of life.

The ups and downs of the ongoing life of the poet, the special feeling and feeling that the footsteps of the Father of the Universe felt in himself, is an everlasting achievement in the terms of various ideas, language and melody. It is known as the puja stage songs of Rabindranath Tagore that this puja is not just a dry cover of devotional worship, it is not a dedication to the world of kalpa for self- improvement, it is not involved in any web of sectarianism or formality. This worship is for the great philosopher's own Life-God, in various colors dedicated to the Supreme Being of humanity. (Dutta Choudhury)

Conclusion

It is a result of Rabindranath Tagore's penance that Rabindra Sangeet has the power of different prajaays, songs with beautiful meanings, emotions and feelings, festival songs, Baul, Kirtan and spirituality through which the message of peace spreads in the whole world. Rabindranath Tagore has also introduced several new rhythms suitable for his songs. Rabindra Sangeet is flowing like a slow-moving stream to meet the ocean of world music.

References

Dasthakur, Saurav. "Rabindrasangeet Today: a sociological Apporach." *Rupkatha Journal on Interdisciplinary Studies in Humanities* (2013).

Dutta Choudhury, Smita. "Rabindra Sangeeter Patabhumi Ekti Bishleshan." (2016).

Dutta, Debabrata. *Sangeet Tatta- Rabindra Prasanga (Bengali)*. Kolkata: Brati Prakashani, Kolkata, 2013. Bengali.

Geetabitan.com. 2008.

Ghosal, Goutam. *The Rainbow Bridge (A Comparative Study of Tagore And Sri Aurobindo)*. D.K. Print World PVT. LTD., 2007. English.

Ghosh, Shambhunath. *Rabindra Sangiter Itibritta in Bengali (Part II)*. Meera Nath, 2016. Bengali.

Herath, H. M. U. T. K. ""The Impact of Rabindra Sangeet on Sri Lankan Music"." (2011).

Kundu, Kalyan. *"Rabindranath Tagore and World Peace.* Asiatic: IIUM Journal of English Language and Literature 4.1 (2010): 77-86., 2010.

Dasa Ragamalika Varnam–Composition of Sri Gali Penchala Narasimha Rao – A Study

Mrs.E. Sreelakshmi,
Dr. J. Sankar Ganesh

ABSTRACT

Indian Music has got significance globally due to its divinity, perfect structural system, and gamaka-s etc. It is very soothing that melts the hearts. Indian music has got its history from Vedic age, which is an ancient valuable heritage passed from generation to generation and existing still. With the passing times, Indian music has been divided into 3 types based on diversified cultures and languages followed by the people. These are 1. Carnatic Music, 2. Hindustani Music, and 3. Rabindra Sangeet. Among these Carnatic music is followed by the southern parts of India, Srilanka, Singapore, Malaysia, Indonesia and other few countries.

Date back from 4th Century many treatises like Natya Sasthra, Brihaddesi, Maanasollasa, Sangithasamayasaram, Sangita Ratnakaram, Swaramela Kalanidhi, Chaturdandi Prakasika, Sangitha Sampradaya Pradarsinietc explained the stage wise developments in Carnatic Music and are having lot of information on origin of Swara, Nada, Sruthi, Grama, Moorchana, Laya, Thalam and Raga etc. The 18th Century, Trinity period is known as Golden era for Carnatic music which got explored and flourished like anything. Many followers and disciples were formed and the music has been propagated to great extent and also print and electronic media further aided its development and reached to nook and corner. By 20th Century post trinity composers further enriched the music world with their new innovations. Concert system has been established and a singing order for stage performance has been set, and followed by all music lovers. That gave a clear picture to the learners.

One among such post trinity composers is Sri Gali Penchala Narasimha Rao, who has done an enormous musical works and wide variety of compositions such as Varnams, Kritis, Padam, Javali, Thillana, geetham, Thathvams, Patriotic songs and light music songs. He is also one of the first generation music directors for Telugu Cinema Field. After retiring from cine

* Research Scholar (Full- Time)

** Dept of Performing Arts, S.V.University, Tirupati, Email: sreelakkshmi.emmidi@gmail.com, *Mobile : 88857 28882*

industry he has completely devoted to classical music.

***Aim** - This paper is focussed to analyse and bring one of his master piece in Tanavarnam-s, "Dasaragamalika Varnam" into limelight to exhibit his wide range of knowledge on raga-s, swara-s and language skillsas well.*

***Key Words** – Gali Penchala Narasimha Rao, Dasa Ragamalika Varnam, Narayani, Gouda Malhar, Gaula, Bhupalam and Begadaetc*

Introduction

For any music lover, in order to become a singer, learning of classical music and having that basic knowledge is a compulsory requirement. Learning of Carnatic music has to be pass through two phases called Abhyasaganam (learning phase) and Sabhaganam (performing phase). Abhyasaganam covers the Kalpitha Sangeetham such as SaraleeSwaram, Hechhu (high pitch) and Mandrasthayi (Low pitch) swaram, Jantaswaram, Dhatuswaram, Janta Dhatuswaram, Alankaram, Pillarigeetham, Sancharigeetham, Lakshanageetham, Swarajathi, Jathiswaram and Varnam to achieve an accurate and polished tone. It also helps in gaining swara and Tala knowledge. Sabhaganam part includes both Kalpitha and Manodhrama Sangeetham which covers Varnam, Kirtana, Kriti, Javali, Padam, Thillana and Ragam-Tanam-Pallavi with Ragalapana, Neraval and Swara Kalpana. Hence varnam belongs to both Abhyasa and Sabhagana item

Varnam–Varnam is a kind of special musical form that could be seen only in Carnatic music and nowhere else in other music in the world. This is a lengthy musical form which could be defined as a dictionary for raga and treasure of all possible swara phrases for a particular raga in which it has been composed, such as Raga ranjaka Prayoga-s, catchy swara tunes, Janta – Dhatuprayogas-s, Graha, Amsa, Jeeva, Nyasa, Vadi, Samvadi and Nyasa swara-s are arranged systematically by following its technicalities and with melodic structures. Varnam lets the learner to improve his knowledge on Raga that helps in improving the knowledge of Manodharma.

Varnams have been divided into several classifications depends on its size, type of tala, and based on its structure. They are 1. Thana Varnam 2. Pada Varnam and 3.Ragamalika Varnam.

Dasa Ragamalika Varnam

One of the notable works among the the compositions of Sri Gali Penchala Narasimha Rao is Dasa Ragamalika Varnam

Brief life history of Sri Gali Penchala Narasimha Rao (1903-1964)

Sri Galipenchala Narasimha Raowas bornon 8-Oct-1903 in a village called Thopugunta Agraharam, near Ongole in Prakasam Dt, in erstwhile Madras Presidency which is now in Andhra Pradesh state. His parents are to Sri Gali Kotayya and Sri Gali Buchchamma. He started music at very young age along with harmonium, from his Guru-s Sri Kotilingam (Bejawada Kotilingam) and his brother Sri hanumaddas (Chinna Hanumanthu) of present Vijayawada. He used "Narahari" as his mudra in all of his compositionswith a devotion towards their kuladaivam (family god) Lord Lakshmi Nrisimha. Most of his compositions are in Telugu and few are in Sanskrit.

At the beginning of his career he used to compose music for Dramas and got many appreciations and was offered with a cine music direction by Vel pictures in 1934. His first movie was "Sita Kalyanam" and continued his profession forworking about 12 movies in Teluguand was given with a title of "Sangita Mahamahopadyaya" for his services in cine field. Later he took retirement from music direction in cinema field and completely focussed on classical music.

He has composed almost all kinds of musical formssuch as varnam-s, krithi-s,Geetham, Swarajathi, Thathvam-s, Thillana, Ragamalika-s, Padam-s, javali-s,light music songs, folk songs and patriotic song, etc.He has created many new ragas and talas for example Bahurupini, Sailavihari, Rasollasini, Kalpanadharini, Sarangatharangini, Sudha Varshini, Sidheswari, Madhusravanthi, and sasikaladhari and more. In his Varnams, he has used wide variety of talas using different combinations, taking from 35 Tala system such as Khanda Triputa, Tisra Rupaka, Misra Rupaka, Khanda Rupaka, Misra Triputa and Chaturasra Jhampe. He has also created **two new talas** namely **"Chitravichitra-gathitalam" and "Samatalam".** These kritis composed in these two talas could be seen in one of his published books of kritis. He has composed around 200 varnams and more than 500 other compositions.

The compositions of Sri Galipenchala Narasimha Rao were brought to the use of mankind in December 2017 by his only son "Sri G.M Shobhanath" who is a retired bank employee but a music freak by genes. In his words, his father's last wish was to get his compositions published and seeing that the music lovers could see some new dimensions in music on listening and learning his style of compositions.

Story behind the composition of Dasa Ragamalika Varnam

An interesting incident lies behind composing this Dasa Ragamalika Varnam is that, the composer Sri Gali Penchala Narasimha Raowas happened to question by his wife that why do the Ragamali kavarnams were restricted to 9 ragas, when he was teaching her the classical music. With that, he took initiation in composing this Dasa Ragamalika Varnam having 10 raga. This varnam is composed in praise of n Lord Ganesha (Vinayaka) also suits as an excellent item to begin the concert.

Suddha Sahityam (Lyrics)

Pallavi – Akhilanda Koti Sarva Phalasiddhivinayakamoorthaye

Anupallavi – Nikhilalokasamsevithapram-adhaganaprakirthaye

Charana Pallavi – Prakatithanaraharisann-uthamoorthaye

Meaning – Oh Lord Vinayaka you are the reason for the good things to happen for the living beings in the universe covering crores of planets. You are the one who is worshipped and appreciated by the people of many different worlds (lower level layers under the earth towards the bottom. Ex - Athala, Vithala, Suthala, Talaathhala, Rasaathala, Mahathalaand Paathaala) also by Pramadagana-s (Lord Siva's attendants and servants mainly including Nandi, Bhringi, Chandikeswarain kailash, the place where the Lord Siva stays). You are the only one who is treated as presiding deity by Narahari (incarnation

of Vishnu) and other deities and is the dearest one to all.

Rhetorical beauties and special features

The lyrics are containing both Dwiteeyaksharaprasa and Anthya Prasa.

1. Dwiteeyaksharaprasa- "Kha/ka' could be seen as the common second syllable in the beginning words of each line 'akhila, nikhila and prakatitha".
2. AnthyaPrasa (ending syllable) – "ye" could be seen as the ending syllable in all lines "Murthaye, Prakirthaye, murthaye" in a rhyming manner.
3. Also CharanaPallavi is containing the vaggeyakara mudra "Narahari"

Raga-s and Tala handled in this Varnam

This Thana Varnam has been set in AdiTalam. There are totally 10 number of raga-s used by the composer in this Varnam. They are namely

1. Naata (Pallavi)
2. Gaula (Anupallavi) Purvangam
3. Malayamarutham
4. Narayani (MukthayiSwaram)
5. Gouda Malhar (Charana Pallavi /Ethugada Pallavi)
6. Bilahari (Ethugada Swaram 1)
7. Begada (Ethugada Swaram 2)
8. Arabhi (Ethugada Swaram 3) Uttarangam
9. Sriragam (Ethugasaswaram 4)
10. Bhoopalam ((Ethugada Swaram 5)

Raga Analysis of Dasa RagamalikaVarnam

Pallavi

Raga – Naata
36thMelakartha Chalanaata Janyam

Arohana – S R3 G3 M1 P D3 N3 Ṡ
Avarohana - Ṡ N3 P M1 R3 S

P , p	n p p m-	r g m r	s ṇ s r	S , ṇ	p̣ ṇ s r	m R m	P n Ṡ
Ni - khi	- la -	lo - - -	-ka - -	sam– se	- - - -	vi – tha	- - -

ṙ ṡ ṙ ṁ	ġ ṁ ṙ ṡ	ṡ n p m	p n ṙ ṡ	, n p m	g M r	s ṇ s r	, m p n
pra- - ma	- - da -	ga - - na	- - pra -	- - - -	ki - -	- - rtha -	- ye - -

Raga Gaula in an ancient ragam which is considered as forerunner for Mayamalava Gaula but currently it is classified as Janya (derivation) of Mayamalavagaula raga. The Rishabham used here is considered as Ekasruthi Rishabham or Gaula Rishabham. Daivatham is omitted both in Arohana and Avarohanawhrein the Gandharam is omitted in only Arohana.

'r g m r s', ' r m p n ṡ' are ranjakaprayoga and gives the shade of the raga. Gaula is one of the Ghana raga-s

Mukthayiswaram

Mukthayiswaram comprises of 2 ragas Malayamarutham and Narayani.

Raga – Malayamarutham — Arohana – S R1 G3 P D2 N2 Ṡ

16th Melakartha Chakravakam Janyam Avarohana – Ṡ N2 D2 P G3 R1 S

Ṡ , n	d n p d	, n d p	g p g r	S , ṇ	ḍ ṇ s r	g P n	d p d n
ṡ ṙ ġ ṗ	ġ ṙ ṡ ṙ	ġ ṙ ṡ n	d n ṡ ṙ	ṡ N d	n p d n	g p d n	Ṡ ;

Malayamarutham is a shadava – shadava raga by omitting Madhyamam. This is one of the morning raga and also a rakthi raga. **'g p g r s', 'd n s r s '** are ranjaka and raga chayaprayoga-s.

Raga – Narayani — Arohana – S R2M1 P D2 Ṡ

28th Melakartha Hari Kambhoji Janyam Avarohana – Ṡ N2 D2 P M1 R2 S

n d p m	, r s r	m P m	r s ṇ ḍ	s r s m	r p m d	p n d m	p d Ṡ
n d ṡ ṙ	ṁ ṙ ṁ ṡ	ṙ ṡ n d	p d ṙ ṡ	, n d p	d P m	r s r m	, p d ṙ

Narayani raga is an Audava- shadava raga. Gandharam has been omitted in both Arohana and Avarohana and Nishadham is omitted in only Arohana. This is a rakthi raga. Composer has followed Tyagaraja by taking this raga as Janya of Hari Kambhoji rather mentioning it from Sankarabharanam as done by Dikshitar. **'m p d ṡ ' , 's r m r s'** are the ranjakaprayoga-s.

Charana Pallavi

Raga – Gauda Malhar — Arohana – S R2 M1 P D2 Ṡ

29th Melakartha Dheera Sankarabharanam Janyam Avarohana – Ṡ N3 D2 M1 G3 R2 S

Ṡ , ṡ	n n d m	p d m g	r s r g	S , ṅ	ḍ s r m	g R s	r m p d
Pra – ka	-ti - -	tha – na -	-ra - ha	Ri - san	- nu - tha	mu - rtha	- ye - -

Raga Gauda Malhar is creation of Harikeshanallur Muthaiah Bhagavathar. This is an Audava- Shadava raga omitting Gandharam and Nishadham in Arohana and Panchamam in Avarohana. **'d m p d' 'p d m'** are important phrases, Janta, Aahatha and prathyahathaprayogas like **'ṡ ṡ nndd mm' 'ṡ n – nd – dm – mg – gr – rs'** are attractive phrases and adds beauty to the raga. Gauda Malhar raga exists with the same name in Hindustani music too but with some differences and belongs to Kafi/Kamaj Thaat.

Ethugada Swaram 1

Raga – Bilahari — Arohana – S R2 G3 P D2 Ṡ

29th Melakartha Dheera Sankarabharanam Janyam Avarohana – Ṡ N3 D2 P M1 G3 R2 S

The first Ethugadaswaram spread over in one Avartham, having long notes completely and has been composed in Raga Bilahari. This is an Audava – Sampurnaragamand Bhashanga raga as well having "Kaisiki Nishdham" as foreign note.

Ethugada Swaram 2

Raga – Begada Arohana – S G3 R2 G3 M1 P D2 P Ṡ

29th Melakartha Dheera Sankarabharanam Janyam Avarohana – Ṡ N3 D2 P M1 G3 R2 S

ṡ N d	p g m d	p M g	r s ṇ ḍ	p ḍ p s	ṇ s g r	g m p d	P ;
n d p ṡ	, ṡ ġ ṙ	ġ Ṁ ġ	ṙ ṡ ṙ n	, d p m	d M g	r s g m	, p d p

Raga Begadais related as ‘Meegada’ in Teugu language which does mean that cream of milk, because of its smoothness while singing. This is a Vakra Shadava - Sampurnaragam being Nishadham is absent in Arohana. ‘Kaisiki Nishadham’ is a foreign note used occasionally. Suddha Madhyamam in this raga has to be sung in an elevated tonal level which is called prathyanthara Madhyamam or Begada Madhyamam.

‘dpM’ , ‘pdpṡ’, ‘sgrgm’ ‘mmgrS’ are ranjakaprayoga-s. Here the composer has used the phrase ‘sgrgm’ in high pitch which elevates the beauty of raga.

Ethugada Swaram 3

Raga – Arabhi Arohana – S R2 M1 P D2 Ṡ

29th Melakartha Dheera Sankarabharanam Janyam Avarohana – Ṡ N3 D2 P M1 G3 R2 S

P , d	p m g r	s ṇ ḍ r	s m r p	m d p ṡ	n d P	m g r s	r m p d
ṡ ṙ Ṁ	ġ ṙ ṡ ṙ	ṡ n d p	m p d ṡ	Ṙ , d	; R	, d s	r m p d

Arabhi is an Audava - Sampurna raga by omitting Gandharam and Nishadham in Arohana. This is one of the Ghana raga and was found in Sarangadeva’s Sangitha Ratnakara in 13th century and also has been found in Sangraha-chudamani. ‘s d r s’ , ‘s r m p d’ ‘snD’ ‘mgrsrm’ are attractive phrases of the raga. Dhatuprayoga-s like ‘dò r – s m- r p – md – p s ” has been beautifully used by the composer.

EthugadaSwaram 4

Raga – Sri Arohana – S R2 M1 P N2 Ṡ

22th Melakartha Kharahara Priya Janyam Avarohana – Ṡ N2 P D2 N2 P M1 R2 G2 R2 S

This Ethugadaswaram is in 4 avarthams.

Ṡ , ṙ	ṡ n p ṡ	n p m r	g r s ṇ	P̣ , ṇ	s r g r	S , s	r m p n
ṡ Ṙ ṡ	n n p m	r G r	s ṇ p̣ ṅ	s ṙ ṡ n	p ṡ n p	m r m p	n ṡ Ṙ
n ġ ṙ n	ṙ ṁ ṙ n	p d n p	m r g r	s r sm	r p m n	p ṡ n p	m p N
ṡ ṙ ṁ n	ṡ ṙ p n	ṡ m p n	r m p ṇ	s r ṡ n	p m ṡ n	p m r s	r m p n

Sriragam is an Audava – vakrasampurnaragam by omitting gandharaam and daivatham in Arohana. This is one of the Ghana ragam, rakthiragam and mangala (auspicious) ragam. The phrases **‘pdnpm’ ‘rmpn’, ‘rgrs’** gives the shade of the raga. ‘**srm – nsr – pns – mpn – rmp- nsr**’ is a ranjakaprayoga used by the composer.

Ethugada Swaram 5

Raga – Bhoopalam
8thMelakartha Hanumathodi Janyam
This Ethugadaswaram is in 4 avarthams

Arohana – S R1G2 P D1 S
Avarohana – S D1 P G2 R1 S

Ṡ , ṙ	ṡ n p ṡ	n p m r	g r s ṇ	Ṗ , ṇ	s r g r	S , s	r m p n
Ṡ , r	s d p g	P, g	d p g r	S , ḍ	s r g s	r g p d	p g d p
s Ṙ d	s p d g	p g r s	r g p d	ṡ d p d	p g r s	r g p ṡ	D , p
d ṡ ġ ṙ	p g ṙ ṡ	ṙ d ṡ p	d g p r	g p d g	p d ṡ d	ṡ ṙ ġ ṡ	r d ṡ p
d ṡ g p	d ṡ r g	p d ṡ ṙ	, Ṡ d	p g Ṡ	D p g	r S r	, g p d

Bhoopalam is an Audava-audavaragam by omitting Madhyamam and Nishadham totally. This is a very ancient morning raga. 'dpgrs', 'srgpd' 'rgpds' 'pds – gpds – rgpds' are ranjakaprayoga-s in this raga and giving the raga shade.

Conclusion

1. It is found that the composer has brought a new tradition by using Bhoopalam as the concluding raga instead of using traditional concluding ragas-s like Madhyamavathi, Sriragam and Surati.
2. In this composition the composer has used 4 Ghana ragas out of 5, which are Naata, Gaula, Arabhi, Sriragam, wherein Varaali has not been used.
3. Two morning Raga-s have been used namely Malayamarutham and Bhoopalam.
4. Gaudamalhar and Bilahari are existing with few differences
5. Begada and Bilahari are bhashanga raga-s.
6. This Dasa Ragamalikavarnam is very useful for learning to all.

References

1. G M Shobhanath (Dec 2017)- Sangeetha Kalanidhi – Book - 1 (Varnams) by Gali Penchala Narasimha Rao–Compiled & Published by G M Shobhanath, First edition, printed in COMPUPRINT, Gopala Puram, Chennai 600 086. Pp–v- 4.
2. G M Shobhanath (Dec 2017) - Sangeetha Kalanidhi – Book - 2 (Kruthis) by Gali Penchala Narasimha Rao – Compiled & Published by G M Shobhanath, printed in COMPUPRINT, Gopala Puram, Chennai 600 086, Pp – v-xii.
3. Prof.S.R.Janakiraman (2002)- Raga-s at a glance, Published by 'Srishti's Carnatica Pvt Ltd, 10/4, Krishna Enclave, 16th Cross Street, Indira Nagar, Chennai – 600020, Pp11, 14, 15, 17, 34, 81, 113
4. Prof.N.S.Ramachandran (Feb 1938) – The Ragas of Karnatic Music, Second Edition (Oct 2003), - Printed by Sekar Offset Printers, 168, Big Street, Chennai – 600006, Pp70, 82,176, 186, 195, 196.
5. https://www.facebook.com/100276691389434/posts/rare-raga-series-gowda-malhar-janya-of-mela-29-ragam-sankarabharanam-a-raga-whic/139769610773475/ retrieved on 15-Nov-2021
6. https://www.thehindu.com/features/metroplus/full-of-surprises/article5901743.ece retrieved on 15-Nov- 2021

Direct interview with Sri G M Shobhanath, Son of Late Sri GaliPenchalaNarasimhaRao, Besant Nagar, Chennai, Tamilnadu – 600090, on 23-Sep-2021

Sharfuddin Ahmad Yahya Maneri — His Life and Spiritual Journey

Shakir Tasnim

Abstract:

This paper is an endeavor to delve deeper into the life, achievements and catharsis of the soul associated with Sharfuddin Ahmad Yahya Maneri, who went on successfully to have established his stature of a great sufi saint of ***Firdausia silsila*** (order), notwithstanding the fact that the four major ***salasil*** (pl. of silsila) i.e. ***Chishti***, ***Suhrawardi***, ***Qadri*** and ***Naqshbandi***) of India were much in the reckoning at the same time. Sharfuddin Maneri's popularity and reverence he enjoyed can be assessed from the fact that he was lovingly addressed as 'Makhdoom-e-Jahan' (Master of the world), 'Makhdoom-ul-Mulk Bihari' and 'Makhdoom Saheb'. Sharfuddin Maneri, from this aspect did not attain the prominence that he richly deserved, and to some extent was much ignored one in pan-Indian set up. This is an attempt to bring out the inherent and intrinsic traits of a sufi saint, who despite being engrossed in unravelling the divinity and mystic power beyond contemplation, carried out the service to the mankind with a zeal and burning desire that was incomparable and second to none.

Keywords: Sufism, Philanthropy, Bihar Sharif, Piety, Catharsis

Introduction

India has been home to a large number of sages, saints and sufis. Bihar in particular has been very fertile land for such pious souls. The presence of Sharfuddin Maneri at Bihar Sharif can be seen as iconic symbol of unity in diversity. This fact gets vindicated with the emergence of Jainas and Buddhists monasteries co-existing within the range of twenty five kilometers from Bihar Sharif. The suffix 'Sharif' seems to have been coined after the death of Sharfuddin Ahmad Maneri especially as a mark of respect and reverence. Even though he was not the founder of the *Firdausia silsila* but the architect who was instrumental in taking the *silsila* to the pinnacle of glory. With the help of his *maktubat* (letters) and *malfuzat* (discourses), he proved to be the one who disseminated love and compassion to his followers till he was alive. The more interesting fact is it that the people irrespective of caste, creed, religion and gender are still finding succour from him even after his union with God.

Let us now discuss about the life of this great sufi who was given the chance by Almighty to spend a life undergoing various trials and tribulations, experiences

Assistant Professor Department of Performing Arts, Central University of Jharkhand, Cheri - Manatu, P.O. - Kamre, Ranchi - 835222 email: tasnimsrc@yahoo.com

and experimentations in this physical and ethereal world during the journey of self realisation, purification of soul andmysticism. His life and accomplishment can be dealt in the following phases:

Birth and Upbringing:

Thereare some contradictions found with regard to the date of birth of Makhdoom-e Jahan. In the inscriptions on the walls of his shrine his date of birth is mentioned to be 1263 A.D., where as Paul Jackson - the man who worked extensively on the life of Makhdoom-e-Jahan and produced highly acclaimed translated versions of his several works including *"The hundred Letters",* mentions his date of birth as 1290 A.D. He has also adduced various sources of evidence regarding it. On the basis of historical evidences in support of Makhdoom-e-Jahan's life and mission, we can augment the different phases of Makhdoom-e-Jahan's life, work and spiritual journey. Makhdoom-e-Jahan was born in Maner - a place 25 kilometer west of Patna in Bihar - which was under the reign of Sultan Nasiruddin Mahmud (r. 1287-90) of Bengal.

His Sojourn with Sonargaon:

After attaining the age of fourteen in the year 1304, he ventured into Sonargaon (Bangladesh) from Maner to receive his formal education under the tutelage of Abu Tawama, a distinguished scholar of Islamic teaching was known for his extensive and over reaching knowledge not in the field of Islamic literature but chemistry, other scientific subjects and beyond. Theologians from almost all parts of the world would flocked to him for receiving insight and wisdom. Spending after almost twenty years, he returned to Maner in 1324 A.D. after completion of his education under Abu Tawama. The devotion and commitment in furtherance of his learning took at all on his health and he fell severely sick. After consultation with local physician, he was advised to enter into wedlock to get rid of his ill health. Following this he tied the nuptial knot and sired a son named Zakiuddin. He visited Maner taking his son Zakiuddin and offered him to his mother and asking for permission to go into the pursuit of spiritual quest, and from now on consider Zakiuddin as your son thinking me as non existent. (Jackson, "Bihar Sharif: Dargah of Shaykh Sharafuddin Maneri" 68).

Before departing Sonargaon, Makhdoom-e-Jahan entrusted his wife Bahu Badam and his two daughters - namely Bibi Zahra and Bibi Fatima - to his father-in-law Abu Tawama and reached Maner taking only his eldest son Zakiuddin. As he left only his son to Maner, there is no mention of his wife and two daughter anywhere, however Arshad Firdausi (the translator of many books of Makhdoom-e-Jahan) gives this information that he has seen the graves of his wife and two daughter at Sonargaon in Bangladesh indicating that they have never been to Bihar. (Asdaq 82-83).

In Quest of Truth

When he set out for Delhi to seek the guidance from a spiritual mentor in the year 1324, he was accompanied by his elder brother Khaliluddin. First he meets Hazrat Nizamuddin Auliya, a famous Chishti sufi, and expressed his willingness to be a disciple. Hazrat Nizamuddin Auliya though greeted him with all warmth and felicity but refused him to take Makhdoom-e-Jahan under his wings.

He was offered beetle leaves before Sharfuddin Maneri saying that though this bird is exceptional but is not destined to be groomed under me. In sufi traditon, offering beetle leaves are symbolic of biding adieu. Next he approached the much revered sufi Boo Ali Qalandar at Panipat, unfortunately here too he met the same fate. Basically Boo Ali Qalandar used to be under the influence of trance and was not able to extend his mentorship to anyone. Dejected, Sharfuddin Maneri said that if this is the signs of being a sheikh then I too am a sheikh. (Munemi 11).

His brother consoled him and encouraged him when Sharfuddin Maneri made up his mind to go back to Maner. On his brother's insistence, he agreed to meet another eminent sufi sheikh Najibuddin Firdausi who accepted him soon, saying that he had already written the *ijazat nama* (letter of permission) much in advance twelve years ago. Highly obliged Sharfuddin Maneri asked Najibuddin Firdausi as to how I will be able to repay the debt of such magnanimity. In reply to Makhdoom-e-Jahan, Najibuddin Firdausi had to say that your letter of permission has been prepared under the command of Prophet Muhammad (P.B.U.H) and you need not bother. Biding them farewell Khwaja Najibuddin Firdausi advised Sharfuddin Maneri not to pay attention to anything en route his journey. Halfway during his journey when he had not crossed the Delhi boundary he learnt that his spiritual mentor has left for his heavenly abode. But following his advice he did not halt his journey and proceeded to Maner. (Shoaib 267). Sheikh Najibuddin Firdausi passed away in October 1332 A.D. (Jackson "Sufism's Enduring Impact: The Legacy of Sharafuddin Maneri" 190).

Exploring the Uncharted Territory

While crossing through the dense forest of *Bihiya*, he was overtaken by grief and deep anguish, listening to the deeply penetrating sound of a peacock that left him pensive and drew him towards the communion of God. Even before people around him could anticipate, Sharfuddin Maneri rushed inside the forest and disappeared before their sight. Elder brother and others searched him tirelessly but to no avail. Finally his brother returned to Maner and offered his mother *tabarruk* the sacred offerings, apprising her of Sharfuddin disappearance. Her mother being a God fearing and pious lady kept patience and entrusted the loved son in the refuge of God. (Munemi 16). Wondering in the forest of Bihiya for a year or so he finally found solace in the caves at the foothills of Rajgir. (Jackson, "Sufism's Enduring Impact: The Legacy of Sharafuddin Maneri" 190). Feeling secluded after the demise of sheikh Najibuddin Firdausi there was no one left for him to impart secret knowledge of divinity, hence he wanted a place full of serenity, tranquility and seclusion to receive further insights only from the one and all mighty God, who was now his hope only to provide the basic tenets and essence of divinity. This very reason made him to make a foray into the dense forest of Bihiya where he could be in communion with God without any worldly hindrance. It was already given to his knowledge by Najibuddin Firdausi that as he was given the *ijazatnama* by none other than the benefactor of humanity Prophet Muhammad (P.B.U.H.), thus he was the blessed one to receive patronage from the Almighty God. This ultimately led him to make his sojourn to Rajgir to fill his divine thirst.

The Life at Rajgir and Bihar Sharif

Initially Sharfuddin Maneri was sort of a recluse who was not interested in revealing his presence at Rajgir. He was constantly in search of unravelling the mystic power of divinity. But he was spotted by some people, which happened after a good period of time. When Nizamuddin Maula (disciple of Hazrat Naizamuddin Auliya) came to know of his revered presence, he too expressed his desire to see him and get his blessings. Nizam Maula and his companions continued their search in the mountains, valleys and caves where there was any probability of having a glimpse of Sharfuddin Maneri.At that time Nizam Maula was in Bihar and this information spread like wild fire and other disciples of Nizamuddin Auliya also expressed their willingness to meet him. At last Sharfuddin Maneri started welcoming people and this continued. Overwhelmed by the commitment, devotion and reverence of the people who came all he way from far off places crossing the dense forest, Sharfuddin Maneri conveyed them the message that crossing the forest may endanger their lives as there are the chances of encountering beasts and man eaters there. He expressed his worries regarding their torturous journey and advised them to stay in the city itself where he will be offering *juma* prayer (Friday prayer) and they can have easy access with him. Nizam Maula and his companions gladly acquiesced to this idea and since then Sharfuddin Maneri regularly offered the *juma* prayer in the city mosque where Nizam Maula and others would be present to offer their services to Sharfuddin Maneri. This norm of offering Friday prayer, meeting the people and going back to Rajgir continued for some time.

It was unanimously decided by followers that as Sharfuddin Maneri goes back soon after the Friday prayer, hence a place should be constructed where he could have some time to take rest after the Friday prayer. Thus emerged the construction of *do chhapri* (small tiled mud hut) away from the hustle bustle of the city. So from then on, it became a routine of Makhdoom-e-Jahan to take rest there for some time after the Friday prayer and at times he stayed there for a day or two. (Shoaib 268-69).This is a place where stand the present *khanqah* of Sharfuddin Maneri which is popularly known as *khanqah Muazzam*.

When the company of Sheikh Maneri began to benefit all the spiritual seekers, Maulana Nizamuddin thought that it would be even more beneficial for all of us to be in contact with such kind of spiritual personality forever. By keeping this in mind, Maulana expressed his intention to Majd-ul-Mulk, *Muqta-i-Bihar* (the then governor of Bihar) and said that I have some *paak maal* (legal wealth) I wish I could build a suitable house for Sheikh Maneri from this money. The governor agreed and a building was erected on the site of the hut. After the construction of the building, a common feast was organised. Disciples of Sheikh Nizamuddin Auliya were also present along with the people of surrounding. All of them requested to the Revered *Sheikh* to sit on the prayer rug. After the end of this incidence, Sheikh Maneri paid attention towards Maulana Nizam and the disciples of Sheikh Nizamuddin Auliya and told “O my friends, your companionship with me has brought me to this level, amounting to installing me

in an idol-temple." (Jackson,"The Way of a Sufi" 73-74).

Muhammad bin Tughlaque's Good-will Gesture

When Muhammad bin Tughlaq, Sultan of Delhi, received the news that Sheikh Sharfuddin Maneri, who had spent several years in the forest of *Bihiya*and had lived a secluded life there, now returned to the city and keep in touch with the people. The Sultan wrote to Majd-ul-Mulk, the governor of Bihar : " a hospiceis to be constructed for the sheikh and handed over to him, and Rajgir is to be endowed as the means of livelihood of those living in the hospice." The sultan offered a '*Bulgarian prayer-carpet'* as a token of love and also wrote in the edict that if he i.e. sheikh Maneri denies, make use of power.

As soon as the governor got the order of Sultan, he immediately went to see Sheikh Sharfuddin Maneri along with the gift i.e. '*Bulgarian prayer-carpet'* and said "I have no choice but to abide by the order.If you do not accept the gift, it will be considered as my fault. And then what the king will do to me is not hidden from anyone. God Alone knows what will happen to me." After hearing the request of governor of Bihar, Sheikh Maneri accepted the gift reluctantly. Finally Makhdoom-e-Jahan returned back the village to Sultan Firoz, who sat on the throne after the death of Muhammad Tughlaq. (Shoaib 269-270).

Union with God:

His services to mankind spanning more than forty years in the *khanqah* of Bihar speak volume of his greatness, love to mankind and refinement of soul. This seems to be the reason for him to be called *'Makhdoom'* (deserves to be served). He left this mortal world to be in union with his God on 2nd January 1381. His tomb lies in the dargah, commonly known as the *Badi Dargah,* where on every 5th*shawwal* to 10th*shawwal* an '*urs'* (death anniversary) in his reverence and commemoration is celebrated.

Conclusion:

Makhdoom-e-Jahan's charismatic personality unfolds the different layers of his tryst with life and its relationship with the creator. It brings to the fore the sublime qualities of a saint par excellence. The essence of his detachment from the physical world and attachment with the creator and His creatures gets beautifully manifested when an attempt is made to assess his quest to reach the Almighty and service to mankind respectively.

Works Cited

1. Shoaib, Shah. *Manaqib-ul-Asfiya.* Maktaba-e-Sharaf Bait-ush-Sharaf, 2001.
2. Munemi, Syed Shah Shamimuddin. *Makhdoom-e-Jahan Sheikh Sharafuddin Ahmad YahyaManeri : Jeevan Aur Sandesh.* Makab-e-Sharaf, 1998.
3. Jackson, Paul. "Bihar Sharif: Dargah of Shaykh Sharafuddin Maneri." *Dargahs: Abodes of the Saints,* edited by Mumtaz Currim and George Michell, Marg Foundation 2011, pp- 66-79.
4. Jackson, Paul.*The Way of a Sufi Sharafuddin Maneri.* Idarah-i- Adabiyat-Delhi, 1987.
5. Jackson, Paul."Sufism's Enduring Impact: The Legacy of Sharafuddin Maneri." *The Islamic Path: Sufism, Society and Politics in India,* edited by Zaheer Husain Jafri & Helmut Reifeld, Rainbow Publishers, 2006, pp- 184-199.
6. Asdaq, Ruknuddin. *Aina-e-Makhdoom-e-Jahan.* Madrasa Asdaqya Makhdoom Sharaf, 2012.

Creativity in Khayal

Vilina Patra
Dr. Pournima Dhumale

ABSTRACT

Indian Classical music has showcased the heights of musical creativity for decades. The stalwarts and scholars of this field have been constantly contributing in keeping the art alive with rigorous training and discipline and also by exploring and creating something new with their musical skills.Undoubtedly, Hindustani Classical music has defined itself as a powerful and exquisite artform through the continuous processof imagination, improvisation,creativity and experimentation. In the Khayal, there has been tremendous fruitful experiments, creative ideas, new inventions, new discoveries and new understandings and knowledge for years and are still going on. This paper throws light on the creativity and experiments done particularly in the' Khayal form' of Indian Classical Music.

KEYWORDS : Creativity, khayal, experiments, creative skills

OBJECTIVES

1. To define creativity
2. To discuss how tradition and creativity go hand in hand
3. To find out techniques used by maestros for creativity in sur, laya and bandish
4. To discuss the creativity andexperiments in Khayal.
5. To help in giving a wider vision and scope of the subject.

INTRODUCTION

In today's world, creative thinking is needed more than ever. Creativity can be considered as one of the key elements of any craft. It speaks about the unlimited and striking potential which the art inherits within itself. Creativity comes with the desire to imagine what has never been imagined,eagerness to create what has not been created and to see the unseen and explore somethingnew. Without creativity or exploration, the art will be lifeless and predictable. It will lose the sense of freshness, wonder, surprise and enjoyment. Talking about the Khayal form, we all are aware of the fact that it is a subject of disciplined learning as well as experiential learning. Due to which it has a lot of creativity scope and spontaneity also. There are innumerable musicians and scholars who have carved a distinct niche for being creative exclusively.

Creativity is derived from the word **'Create'** which means to evolve from

Research Scholar, Department of Music, S.N.D.T Women's University, Karve Road, Pune.
Email – vilinapatra@gmail.com

one's own thought or imagination, as a work of art or an invention.[1] **Creative** refers to activities which involve inventingandmakingnew kinds of things.[2] **Creativity** means the ability to invent and develop original ideas, using skill or imagination.[3]In Khayal, creativity holds a major role in expansion of the vision of a musician and his musicianship. Although governed by the parameters of raga and tala, khayal musicoffers the artiste infinite scope to imagine, interpret and improvise. In the present times it also provides the capacity to deal with the opportunities and challenges that are becoming a part of the complex and fast-changing requirements in the field. This paper includes some creative efforts made and new thoughts explored.

CREATIVITY IN KHAYAL GAYAN

Historical Background of Khayal

Looking into the history, Khayal has evolved from Dhrupad. The formation of khayal is itself a big creativity in the field of Indian classical music. After Dhrupad and Dhamar, there was a demand for a new form because of the lack of freedom and scope for creativity in these forms. This gave rise to the formation of khayal. Khayal became a genre of greater freedom as compared to the more restrictive, grammarian structure of Dhrupad. It was not that Dhrupad did not have inventiveness, but comparatively, Khayal provided more scope for innovation,more freedom to experiment and find newness within the limits of the raga. This form encouraged a musician more to display his individual aesthetic capacities or skills. Creativity in Khayal has gone through challenges equally as creativity has to take place within the environs of the Raga, it has to conserve the traditional heritage and also it has to show a particular style of gharana. Creativity has to happen considering all these points.

As it is known, Khayal gayaki has three major components which are Sur, Laya, and *Pada*(Lyrics). There has been numerous creative thoughts and improvisation in each of the component.

1. Creativity in Sur

1.1.Arrangements of swar

1.1.1- Paltas or alankars –A student of Indian classical music always begins with learning Paltas. Palta means singing the notes with different combinations. It is a vocal exercise which involves several combinations of swaras in a pattern and have both ascending and descending sequences of notes .These are exercises based on scales and rhythm.Palta is an essential part of one 's voice training and a prerequisite to improvising a Raga. Practice of different patterns and more complex exercises of Palta helps in developing a sense of spontaneity and evokes creativity in a vocalist.

'A Palta builds a powerful cognitive link between Voice and Creativeness that pays off in future fluency and expressiveness."[4]

Aroh	SaReSaGa	ReGaReMa	GaMaGaPa	MaPaMaDha	PaDhaPaNi	DhaNiDhaSa
Avaroh	SaNiSaDha	NiDhaNiPa	DhaPaDhaMa	PaMaPaGa	MaGaMaRe	GaReGaSa

1.1.2'Khandmeru" or 'Merukhand"- Merukhandis an old technique, which involves systematic permutation of Swaras. The basic concept

of Merukhand practice, is to take a set of swaras, and sing all different combinations of these Swaras, in a particular order. Each pattern is distinct, and the Swaras cannot be repeated. In foundation level it improves the sense of pitching, helps in developing concentration and visualizing new patterns. In advanced level, its wise application considering the raga chalan and prakriti results in effortless creativity. It takes years of practice to absorb the technique which later comes spontaneously while performing and gives a wider vision of creative elaboration. Bhindi Bazar Gharana is well known for use of Merukhand.

The table below shows how 5040 unique combinations can be made with a seven swaras.

Number of swaras	Number of unique combinations
1	1x1
2	2x1=2
3	3x2x1=6
4	4x3x2x1=24
5	5x4x3x2x1=120
6	6x5x4x3x2x1=720
7	7x6x5x4x3x2x1=5040

1.1.3 Moorchana - Moorchana refers to the shifting of the Adhara swar and creation of a new scale. Pt. Jasraj, Ajay Pohankar are well known for using moorchana technique for creativity. For example, if we shift the adhaar swar, the rest of the notes shift with respect to the it and creates a new saptak.

Sa ReGa Ma Pa DhaNi Sa Re'Ga'Ma'Pa' Dha' Ni'Sa'

Sa ReGa Ma Pa Dha Ni Sa' Re' Ga' Ma' Pa'Dha' Ni' Sa'

Sa Re Ga Ma Pa Dha Ni Sa Re' Ga' Ma' Pa' Dha' Ni' Sa'

1.1.4 Other creative thoughts related to sur are Avirbhav Tirobhav, In present times, speedy, spritely and electrifyinguse of sargams creates a grandeurin performance, combination of sargam and aakaar in rendition of tana, etc are others creative applications. Pt. Ajoy Chakravarty and Kaushiki Chakrobortyhavea mastery on this.

1.2 Ornamentation of swar – Ornamentation is what is added to the Swaras to make them more appealing. It is used according to the personality of raga and has a major role in enhancing it. There are many different kinds of ornaments in Indian classical music. Like kan swar, meend, khatka, aandolan, ghaseet, gamak, murki etc." These ornamentsact as embellishments and are essential as they enhance the aesthetic potentialities of the raga."[5] These are a kind of voice modulation. Many scholar musicians have been using these ornaments in a more effective way which made a special mark in their gayaki. For eg. Vidushi Praveen Sultana uses kaakueffectively in her gayaki to create a special effect of eco voice with this. Other maestros like Ustad Faiyaz Khan, Omkarnath Thakur, Kumar Gandharvwere also well known for voice modulations.

The conclusion drawn in creativity in sur is that even if the same raga is sung by different vocalists of the same style it creates a different mood, a

different expression, interpretation and diverse shades of the same notes of the raga . These techniques have given a wider vision to explore and develop individual creative skills in a musician.

2. Creativity in laya

After years of riyaz, a highly skilled musician is able to develop agreat sense of laya and tala.Laya is in every component of khayal, from alaap and vistaar to tanas. For the creativity to happen both purposefully or spontaneously, one needs to have a big vision and experience of illustrating the beauty of thelaya. More the creativity of layamore it enhances the musical experience of both the performer and the listener. For an effortless creativity of laya tohappen, a vocalist needs a deep understanding, training and years of experience. The scope of creativity in this section has been shown widely in khayal.

2.1- Laykari-This is the most important technique which develops creativity of Laya."Laykari comprises of giving an experience of the compound effect of different laya and increasing the expectation of sam."[6] A disciplined taalim and rigorous practice of this technique in early stage is the first step towards creativity. Later with experience and knowledge, an extempore application of laykari takes the creativity to a higher level. There are different laykari and rhythmic variations like 1 2-1 2 3, 1 2 3-1 2 3 4, 1 2-1 2-1 2 3, etc. The same technique is also applied in creating tanas by adding swaras like 1 2 – 1 2 3 is Sa Re – Sa Re Ga, 1 1 2 –12 – 12 – Sa Sa Re- Sa Re -Sa Re

2.2Ateet and Anagat – When an artist intentionally changes the placement of sam for the sake of creativity, then it is called as Ateet and Anagat . When the sam comes before then it is called as Anagat and when it comes after , it is called as Ateet .

2.3 Tihayi– Tihayi is repeating a rhythmic piece identically three times with equal intervals.After years of painstaking riyaz, a highly skilled performer is so developed in his sense of laya and tala that he is able to execute a perfect tihaispontaneously in a performance.

2.4 Other creative ideas which many musicians have applied is different use different laykari in mukhada and coming to the sam and also use of different laykari in banishes is also a part of creativity in laya.

3. Creativity in Bandishes

3.1. Pada (Lyrics) - Now, coming to the lyrics of the Bandishes which is called '*pada*'. This is one of the most important part of khayal. As we take a look on traditional and old bandishes, lyrics are mostly based either on the love-stories of Radha Krishna, various gods or some religious themes, varsha ritu, gurubhakti, shringaarik themes, saans – nanad (familial squabbles) duo or the sound of the payaletc. The lyricists of these bandishes never went beyond these fixed subjects.And also they were limited to few languages like braj, avadhi, Rajasthani etc..The interesting part here is though some of these themes do not connect to the present times but still these bandishes are taught , treasured and performed vastly in every gharana. Not many new themes have been used majorly in mainstream khayal gayaki till now. The reason behind this is that the motive of khayalis not to communicate the society matters. For that there are other vocal

forms like povada, folk songs, patriotic songs, sanskargeet, prayers etc. which reflect society and culture.

On a creative side of *Pada,* few contemporary khayal singers and composers havemade their own bandishes. They have made attempts where the lyrics contain a different theme such as bandishes on Deshbhakti and Shruti mala in Raga Darbari kanhada by Rajiv Kumar Mallik Eg.Raga yaman – Jane janejaneman,Bharatdesh mere vatan,Jab taklahurahe,tujhpekurbanhai "rajnain" tan, bandish on Corona in Raag PuriyaDhanashree by Sandeep Ranade , a bandish on Mahatma Gandhi in Raga Gandhi Malhar-Tum mein sab roopekahi path ekahi mantra samtasaakar. a vibhtsaras bandish in Raga Madhusuraja by Pt. Kumar Gandharvaetc.

On creative side, some traditional bandishes are found having a very long text and some with very short text .

3.2Structure of Bandish :– Bandishes and compositions have been a key element of khayal to visualize the creativity skills of the music scholars. So many Different compositions by different rachnakars (composers) have given an insight of the level of creativity in their minds.

3.2.1 Mukhada in a bandish- In a Bandish it is important to experience the beauty of the placing of sam . This experience is called Mukhada which is the soul or essence of a bandish and also of a raga. There has been numerous creative ideas explored in the Mukhada of the bandishes.

3.2.1a Span of Mukhda - Some mukhdas are short mostly of 3-4 matras , some are very short of one or two matras also. For eg . a tarana composed by Pt. Babanrao Haldankar in ragatodi has mukhda of one matra. Some mukhdas are very long of more than 8 matras also.

3.2.1b mukhdas of 'taan ang"- There are some bandishes which have taana in Mukhda .eg – maivarivarij-aunbandish in Raga Yaman .

3.2.1.c Every new thought behind creating an unusual Mukhada involves a lot of experience, intelligence and deep thought process.The newness in Mukhada makes the Bandish par excellence. In Gwalior and Agra gharanas , the uniqueness of a bandish is that almost every line of the bandish can be used as a Mukhada showing a new angle of the raga and increasing the scope for more elaboration and creativity.

3.2.2 Unique phrases - There have been several compositions made by the scholars where the bandish has a unique structure or a unique phrase which is different from the other bandishes found in the raga. They have explored new phrases or melody , placed the sam on a different note , which gives a completely new dimension to the raga and shows a new face and creates a different mood . Another concept of creativity here is, some bandishes include tanas, different kinds of laykari, or have a difficult structure.

3.2.3 Bandishes of different shades in the same raga – Many compositions have been created where the mood and the theme is completely different from other bandish though composed in the same raga. We can find bandishes in a particular raga having different mood and depicting a different rasa which shows variety of shades of that raga.

3.3.4 Taal on which bandish is composed- Some attempts have been made where the bandishes are set to rare talas like matta taal, Ada Chautal etc. Dr.

Ashwini Bhide Despandesings a bandish in 7 ½ matra in raga bhupeshwari. A few composition have been made on the double laya of the taal. Eg – Pt. Ramashrey Jha ji'starana in Raga basantmukhari is composed in dugun of jhaptaal and the bol of tarana is going in thah laya.

3.2.5 Expression of the bandish – ' Bandish kaikehan" is a big area of creativity and skill. To express the same phrase of the bandish in so many different ways, giving it a different flavour each time, enhancing the mood of raga and justifying a bandish is an art . It needs a creative soul to render.

4. Creation of New ragas

It is believed that Hindustani Classical Music has enough space for the creation of new ragas through interpretations of different moods and emotions. But the creation of a raga has to be correct in its technique, notes and grammar and it has to be original to be considered as a new raga. Raga creation or Nav Raga Nirmiti has been going through years and still going on. New ragas have been created by the following ways -

4.1Using two ragas–"Jod Ragas" were created using two ragas like Basant Bahar, Nat Bihag, hindolbahar etc

4.2 Adding or removing particular Swaras from a raga–Pt. Ravi Shankarcreated Raga Janasammohiniby adding Shuddha Rishabh in avroh of raga kalavati, Kumar Gandharvacreated Raag ChaitiBhupwith a finessed induction of shuddhamadhyam in Bhupali .

4.3 Ragas created for a purpose-In 2018, Pandit Tarun Bhattacharya had composed Raga Ganga, a tribute to the holy river in the nation. The maestro has also composed a new raga, Raga Triveni, which is a tribute to the three rivers of the nation–Ganga, Yamuna and Narmada. Notes and the new raga is influenced by Raga Jogeswari, Raga Lalit and Raga Rageshree keeping a completely original scale. All his creations are dedicated to his master Pandit Ravi Shankar.

4.4 Ragas created as a dedication to a Guru or an eminent personality

4.4.1 Some musicians have given musical homage to Mahatma Gandhi in the form of a new raag. Raga Mohankaunsby sitar maestro Pt. Ravi Shankar was composed as a tribute to Mahatma Gandhi . Pt. Kumar Gandharva created Raga Gandhi Malhar as a dedication to him. All through the 60 years of his creative life, Gandhi Malhar had a special significance for lasting impression of Mahatma Gandhi on his mind and heart.

4.4.2 Acclaimed Indian musician Pandit Ajoy Chakrabarty has created a new raga titled 'Maitree' as a tribute to Bangabandhu Sheikh Mujibur Rahman on the birth centenary of Bangladesh's founding father. In front of the prime ministers of India and Bangladesh , Pt. Ajay Chakraborty presented his creation.

4.4.3 Ustaad Amjad Ali Khan also created a Raga named Priyadarshini as a tribute to Indira Gandhi.

4.5 Other Ragas created - Many other legendary musicians created new ragas .

Dr. Prabha Atre	Madhurkauns, Apurva Kalyan, Darbari Kauns, Patdeep Malhar, Shiv Kali, Tilang-bhairav, Ravi Bhairav.
Vidushi Kishori Amonkar	Lalatvibhas.
Dr. Ashwini Bhide Deshpande	Vibhavati, Manikauns

Pt. Ravi Shankar	Parameshwari, Jogeshwari, Kaushik Todi, Bairagi Todi,Bhawani Bhairav, Sanjh Kalyan, Shailangi, Suranjani
Pt.S.NRatanjankar	Basant Mukhari

5. Other experiments in the field of khayal gayaki

As the time moved on there has been many experiments and new concepts to introduce something extraordinary in the field. Some were created spontaneously and some because of the present demand for a broader outlook towards Classical Music.

5.1 Duets or Jugalbandis – It was not often that the two artists performed together, making a jugalbandi.Later came the concept of ' duet or sahgayan ' where two soloists stood on an equal footing. "When two different people with different voice textures , sometimes with different styles or different instruments come together and reach out to listeners as one voice or performance ." it is Jugalbandi. There have been several jugalbandis in khayal .. Over a career spanning more than five decades, Pt. Rajan and Sajan Mishra crafted a unique form of sahgayan, something which went beyond jugalbandi that truly represented a confluence. The brothers Ustaad Nazakat and Salamat Ali Khan of Sham Chaurasi Gharana are known for exceptional vocal duets. In recent times, Apoorva Gokhale and Pallavi Joshi, Prabhakar Diwakar Kashyap, Ritesh Rajnish Mishra are well known Jugalbandi duos.

"When the mutual appreciation and love reaches its zenith, we emerge as one soul." – Pt. Rajan Mishra.

5.2 The Jasrangi Jugalbandi- This form was developed by Sangeet Martand Pt. Jasraj, it involves two vocalists — a male and a female, singing two individual ragas together. The male and the female voices are naturally half an octave apart, and the Jasrangi was developed to protect the tonal quality of both the male and female vocalists in a duet. This form of Jugalbandi is based on the ancient melodic principle of Moorchhana — where the Shadja (Sa) of a Raga is shifted and all the other swaras (notes) of the Raga shift accordingly. There are a number of Raga combinations that can be sung in a Jasrangi Jugalbandi like Nat Bhairav with Madhuvanti and Abhogi with Kalavati.

5.3 Fusion of the bandishes– In present times, the demand for a broader outlook has created a lot of challengesfor the Indian performing art and the performing artists. Musicians need to introduce something extraordinary and new for the listeners. "Our traditional Indian classical music has accepted and incorporated many new learning and performances."[7] Some experiments and fusions have been done in this area. examples–traditional bandish of raga Tilakkamod' neerbharankaisejaun has been introduced with visualization and dance, Vidushi Kala Ramnath has played in a fusion project with Bikram Ghosh, many bandishes are recreated with adding symphony, an album named "Classical Unwind"[8] has banishes in a contemporary touch by adding guitar , keyboards and visualization .

Conclusion –

Khayal style of singing needs seamless elements of unpredictability to make itself absolutely riveting and memorable. The maestros in this field have put a lot of efforts and have uniquely contributed to

this form with their artistic creativity.The conclusions of this paper are –

- Khayal is a form which gives a lot of scope for individual creative experiments.
- Creativity in Khayal has been classified into creativity of sur , laya and *pada* .
- Creativity of sur includes arrangements and ornamentation of swar.
- Creativity of laya includes laykari, ateetanagat, tihayi etc.
- Creativity of *pada* includes new themes in lyrics of bandishes and creativity in structure of bandish .
- Other creativity are creation of new ragas, Jugalbandis , fusions etc.

References

1. www.thesaurus.com
2. https://www.collinsdictionary.com/
3. https://www.collinsdictionary.com/
4. http://www.warrensenders.com , journal, thinking-about-palta-exercises
5. Tradition of Hindustani Music by Manorama Sharma, Vol-1, Page - 13
6. Aesthetics of bandish By Dr. Shubhangi Bahulikar, first edition, diamond publishers, page-60
7. Article on Indian Classical Music in a globalized world – sangeet galaxy, vol-5, issue 1,2016
8. https://youtu.be/smURJcbCsIU